

संकाय पत्रिका-२

श्रमणविद्या



सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

SANKĀYA PATRIKĀ-2

ŚRAMAṆVIDYĀ

[Vol. II]

Board of Editors

Prof. Ramshankar Tripathi Prof. Laxmi Narayan Tiwari
Dr. Phool Chandra Jain Dr. Purusottam Pathak

Edited by

Dr. GOKUL CHANDRA JAIN
Head, Department of Prakrit & Jaināgama



Supervisor : Dr. Bhāgīrath Prasād Tripāthī 'Vāgīśa Śāstri'
Director, Research Institute

Publication Officer : Dr. Hariś Chandra Maṇī Tripāthī

SAMPURNANAND SANSKRIT VISHVAVIDYALAYA, VARANASI
1988

**Research Publication Supervisor
Director, Research Institute,
Sampurnanand Sanskrit Vishvavidyalaya
Varanasi-221 002**

**Published by
Dr. Harish Chandra Mani Tripathi
Publication Officer,
Sampurnanand Sanskrit Vishvavidyalaya
Varanasi—221 002**

**Available at
Sales Department,
Sampurnanand Sanskrit Vishvavidyalaya
Varanasi—221 002**

**First Edition—500 copies.
Price—Rs. 45.00**

**Printed at
Tara Printing Works
Varanasi**

संकाय पात्रिका-२

श्रमणविद्या

[भाग २]

सम्पादक मण्डल

प्रो० रामशङ्कर त्रिपाठी

प्रो० लक्ष्मीनारायण तिवारी

डॉ० फूलचन्द्र जैन

डॉ० पुरुषोत्तम पाठक

सम्पादक

डॉ० गोकुलचन्द्र जैन

अध्यक्ष, प्राकृत एवं जैनागम विभाग



पर्यवेक्षक : डॉ० भागीरथप्रसाद त्रिपाठी 'वागीश शास्त्री'

निदेशक, अनुसन्धान संस्थान

प्रकाशनाधिकारी : डॉ० हरिश्चन्द्रमणि त्रिपाठी

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

१९८८

अनुसन्धान प्रकाशन पर्यवेक्षक
निदेशक, अनुसन्धान संस्थान
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी-२२१००२

प्रकाशक

डॉ० हरिश्चन्द्रमणि त्रिपाठी
प्रकाशनाधिकारी
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी-२२१००२.

प्रातिस्थान

विक्रय विभाग
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी-२२१००२

प्रथम संस्करण—५०० प्रतियाँ
मूल्य ४५-००

मुद्रक

तारा प्रिंटिंग वर्क्स
कमच्छा, वाराणसी ।

सम्पादकीय

संकाय पत्रिका २, प्राच्यविद्या विषयक उच्चानुशीलन की दिशा में एक अग्रिम चरण है। रजत जयन्ती विशेषांक के सातत्य में श्रमणविद्या भाग दो के रूप में इसे पाठकों के हाथों में सौंपते हुए हादिक प्रसन्नता है। पिछले भाग की तरह इस भाग में एक विशेष निबन्ध, देवनागरी लिपि में प्रथम बार तीन दुर्लभ पालि लघु ग्रन्थ, एक प्राचीन प्राकृत जैनागम तथा सर्वथा अप्रकाशित संस्कृत टीका के साथ एक प्राकृत प्रकरण ग्रन्थ समाहित हैं। इस सामग्री की अपनी निजी विशेषता है। भारतीय सांस्कृतिक इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से इसकी विशेष उपादेयता है।

‘श्रमण परम्परा में संवर’ शीर्षक डॉ. कमलेश जैन का निबन्ध पिछले भाग में प्रकाशित ‘अहिंसा : अध्ययन की एक दिशा’ शीर्षक निबन्ध की तरह प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक चिन्तन के एक ऐसे विशिष्ट पक्ष को उद्घाटित करता है, जिसने सहस्रों वर्षों तक दार्शनिक और धार्मिक क्षेत्र में क्रान्ति की ऊर्जा को उद्बलित किया। श्रमण परम्परा की जैन और बौद्ध दोनों मुख्य धाराओं में ‘संवर’ का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। ‘संवर’ की साधना जीवन के श्रेष्ठतम विकास की ओर दोहरी यात्रा है। एक यात्रा वह जो अन्तरंग की समग्रता में अविराम चलती है, और दूसरी वह जो जीवन के बाह्य आचरण में प्रतिबिम्बित और प्रतिफलित होती है। ‘संवर’ का विज्ञान भारतीय मनीषा का वह अद्भुत आविष्कार है, जिसकी चरम निष्पत्ति अमृतत्व, मोक्ष या निर्वाण के रूप में निश्चयसं में होती है। प्रस्तुत निबन्ध उन सम्भावनाओं को उजागर करता है, जो भारतीय विद्याओं के समग्रता में अनुशीलन का पाथेय बन सकती हैं।

पालि गद्य में निबद्ध ‘सीमा-विवाद-विनिच्छय कथा’ देवनागरी लिपि में यहाँ प्रथम बार प्रस्तुत है। सिंहली लिपि में उपलब्ध एक मात्र प्रति से सम्पादित यह लघु ग्रन्थ रोमन लिपि में १८८७ में पाली टेक्स्ट सोसायटी, लन्दन के जर्नल में प्रकाशित हुआ था। डॉ. ब्रह्मदेवनारायण शर्मा ने परिश्रम और सावधानी पूर्वक इसका देवनागरीकरण किया है। इस कृति में बौद्ध विनय के नव इतिहास विषयक कतिपय ऐसे तथ्य उपलब्ध हैं, जो पालि साहित्य के अध्येताओं के लिए रोचक सिद्ध होंगे।

‘जातिदुःखविभागो’ पालि गाथाओं में निबद्ध एक प्रकरण ग्रन्थ है। भदन्त डी. सोमरतन थेरो ने सिंहली लिपि से अत्यन्त परिश्रम पूर्वक प्रथम बार इसका देवनागरीकरण किया है। जातिदुःख का विभाजन एवं शून्यता प्रतिसंयुक्त धर्मों का वर्णन बौद्ध दर्शन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है। प्रव्रजित और गृहस्थ

दोनों के लिए उपयोगी होने से इस ग्रन्थ का विशेष महत्त्व है। अनुसन्धान की दृष्टि से भी यह अत्यधिक उपादेय है।

‘नामरूपसमाप्ति’ पालि गद्य-पद्य में रचित लघु ग्रन्थ है। १९१५-१६ में पालि टेक्स्ट सोसायटी, लन्दन के जर्नल में रोमन लिपि में इसका प्रकाशन हुआ था। बर्मी और सिंहली लिपियों में भी इसका प्रकाशन हुआ है। बौद्ध अभिधर्म में पञ्चस्कन्ध ‘नाम’ और ‘रूप’ पदों से अभिहित हैं। दार्शनिक दृष्टि से इनके विवेचन का विशेष महत्त्व है। इस ग्रन्थ को प्रोफेसर रामशङ्कर त्रिपाठी ने देवनागरी में उपलब्ध कराकर जिज्ञासु विद्वानों एवं शोधार्थियों का पथ प्रशस्त किया है।

‘कसायपाहुडसुत्त’ प्राकृत गाथाओं में निबद्ध कर्मसिद्धान्त विषयक एक प्राचीन प्राकृत आगम ग्रन्थ है। वर्तमान में संसार भर में इसकी मात्र एक प्रति उपलब्ध है जो ताड़पत्रों पर प्राचीन कन्नड लिपि में लिखी गयी है। यह एक बृहत्काय पाण्डुलिपि है, जिसमें कसायपाहुड के ‘गाहासुत्त’ यतिवृषभकृत प्राकृत ‘चुण्णिसुत्त’ तथा मणिप्रवाल शैली में रचित प्राकृत-संस्कृत मिश्रित विस्तृत जयधवला नामक टीका समाहित है। कसायपाहुड की मान्यता जैन श्रमण परम्परा में उस सुदूर अत त से रही है, जब इसमें सम्प्रदाय भेद नहीं हुए थे। देवनागरी लिपि में प्रस्तुत संस्करण डॉ. गोकुलचन्द्र जैन तथा डॉ. श्रीमती सुनीता जैन ने ऐसी अनुसन्धान सामग्री के रूप में उपलब्ध कराया है, जिससे कर्मसिद्धान्त विषयक अनुसन्धान के लिए नवीन और व्यापक दृष्टि प्राप्त होगी।

‘द्ववसंगहो’ प्राकृत गाथाओं में निबद्ध एक लोकप्रिय लघु कृति है। इस पर अब तक सर्वथा अप्रकाशित ‘अवचूरि’ नामक संस्कृत टीका उपलब्ध हुई है, जिसे यहाँ प्रथम बार प्रकाशित किया गया है। जैन दर्शन में षड् द्रव्यों का विवेचन विशेष महत्त्व रखता है। पञ्चास्तिकाय और षड्द्रव्य के सिद्धान्त द्वारा जैन दर्शन में जीव और जगत् विषयक विविध बिन्दुओं पर जो चिन्तन प्रस्तुत किया गया है, उसका अध्ययन भारतीय सृष्टिविद्या के सन्दर्भ में किया जाना चाहिए। डॉ. गोकुलचन्द्र जैन तथा श्री ऋषभचन्द्र जैन द्वारा प्रस्तुत इस संस्करण से ऐसे अध्ययन को बल मिलेगा।

श्रमणविद्या भाग दो में प्रकाशित उपर्युक्त सामग्री प्राच्य विद्याओं के अनुशीलन में कितनी महनीय और उपयोगी सिद्ध होती है, यह इस क्षेत्र में कार्यरत विद्वानों एवं नवीन अनुसन्धत्सुओं के प्रयत्नों पर निर्भर करेगा। विगत वर्षों में हमने जो उपक्रम प्रारम्भ किये थे, उनमें से एक का यह अग्रिम चरण है। अन्य उपक्रमों में व्यक्तिगत और सामूहिक अध्ययन-अनुसन्धान, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक एवं सांस्कृतिक सम्पर्क तथा भारत के सीमावर्ती क्षेत्रों को मुख्य धारा से जोड़ने की दिशा में हमने जितना गन्तव्य तय किया था, उससे आगे बढ़ने के प्रयत्न किये हैं। अनेक प्रकार की परिसीमाओं और झंझावातों के बावजूद हम आगे बढ़े हैं।

संकाय पत्रिका—२

हिमालय के एक छोर लेह-लद्दाख, लाहुल-स्फीति और किन्नौर के बाद दूसरे शिखर सिक्किम में बौद्ध अध्ययन विधिवत् आरम्भ हुआ है। राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर आयोजित सम्मेलनों, संगोष्ठियों, परिचर्चाओं में संकाय के सदस्यों की सहभागिता से हमारे अकादमिक सम्पर्कों का नैरन्तर्य दृढ़ हुआ है। सागर पार के देशों की यात्रा से हमारे शैक्षिक-सांस्कृतिक सम्बन्ध और अधिक व्यापक हुये हैं। श्रमण-विद्या संकाय में 'भारतीयविद्या, संस्कृति एवं संस्कृत प्रमाणपत्रीय, अनुभाग को पूर्ण विभाग का दर्जा प्राप्त होने से विदेशी छात्रों के आकर्षण में वृद्धि हुई है। संकाय के अनुसन्धाताओं और अध्यापकों ने महत्त्वपूर्ण विषयों पर निबन्ध और शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किये हैं। प्राचीन ग्रन्थों के सम्पादन कार्य को आगे बढ़ाया है तथा विश्व-विद्यालय अनुदान आयोग के सहयोग से राष्ट्रीय स्तर के आयोजनों का क्रम जारी रखा है। इस सबका विस्तृत लेखा-जोखा यहाँ प्रस्तुत करना अभीष्ट नहीं है। यह सहयोगी प्रयासों की ओर एक इंगित मात्र है।

इस पूरी अकादमिक यात्रा में प्रोफेसर जगन्नाथ उपाध्याय के अभाव की हमें गहराई से अनुभूति होती रही है। वे इन सभी प्रवृत्तियों के पुरोधा और प्रेरणास्रोत थे। उनका स्मरण हमें कार्य करने की प्रेरक ऊर्जा प्रदान करता रहे, यह कामना है। हमारा हर अगला कदम उनके प्रति हार्दिक श्रद्धाञ्जलि है।

श्रमणविद्या संकाय के इस एक और सामूहिक प्रयत्न की प्रस्तुति पारस्परिक सौहार्द और सहयोग की एक सुखद अनुभूति है। इस भाग के सम्पादक मंडल तथा लेखन-सम्पादन सहयोग के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। विश्वविद्यालय के कुलपति प्रोफेसर व्ही. वेङ्कटाचलम के सौजन्य और मार्गदर्शन से कार्यों को आगे बढ़ाने में बल मिला है। उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। प्रकाशनाधिकारी डॉ. हरिश्चन्द्रमणि त्रिपाठी के हम विशेष आभारी हैं, जिनका सहयोग हमें हर प्रकाशन कार्यक्रम में उपलब्ध होता रहा है। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अन्य जिनका भी सहयोग रहा है, उन सबके प्रति हम कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। सभी प्रकार की सावधानी रखने के बाद भी त्रुटियाँ सम्भव हैं। कुछ का हमें स्वयं बोध है। विज्ञ जन उनके परिमार्जन पूर्वक इसे स्वीकार करेंगे, ऐसा विश्वास है।

गोकुलचन्द्र जैन

संकाय पत्रिका-२

अनुक्रम

सम्पादकीय

डॉ० गोकुलचन्द्र जैन		
श्रमण परम्परा में संवर		
डॉ० कमलेश जैन	...	३-२४
सीमा-विवाद-विनिच्छय-कथा		
डॉ० ब्रह्मदेवनारायण शर्मा	...	२५-४२
जातिदुक्खविभागो		
भदन्त डी० सोमरतन थेरो	...	४३-७२
नामरूपसमासो		
प्रो० रामशङ्कर त्रिपाठी	७३-९६
कसायपाहुडसुत्तं		
डॉ० गोकुलचन्द्र जैन		
डॉ० श्रीमती सुनीता जैन	९७-१८६
दव्वसंगहो		
डॉ० गोकुलचन्द्र जैन		
श्री ऋषभचन्द्र जैन	१८७-२४०

संकाय पत्रिका : २

श्रमणविद्या

[भाग २]

हंघियच्छिद्दसहस्से जलजाणे जह जलं तु णासवदि ।
मिच्छत्ताइअभावे तह जीवे संवरो होइ ॥

—समणसुत्तं, गाथा ६०६/

—जैसे जलयान के हजारों छेद बन्द कर देने पर उसमें जल प्रवेश नहीं करता, वैसे ही मिथ्यात्व आदि के दूर हो जाने पर जीव में संवर होता है ।

कायेन संवरो साधु साधु वाचाय संवरो ।
मनसा संवरो साधु साधु सब्बथ संवरो ।
सब्बत्थ संवुतो भिवखु सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥

—घस्मपद, गाथा ३६१/

—शरीर का संवर भला है, वचन का संवर भला है, मन का संवर भला है और सर्वत्र (इन्द्रियों) का संवर भला है । सर्वत्र संवर-युक्त भिक्षु समस्त दुखों से मुक्त हो जाता है ।

श्रमण परम्परा में 'संवर'

श्री कमलेश जैन

संवर शब्द का प्रयोग प्राचीन भारतीय वाङ्मय में एक विशिष्ट अर्थ में हुआ है। प्राचीन भारतीय साहित्य के अनुशीलन से संवर शब्द के विश्लेषण पर महत्त्वपूर्ण एवं रोचक प्रकाश पड़ता है। प्राचीन भारतीय श्रमण परम्परा में संवर शब्द संभवतया समानरूप से प्रयुक्त होता था। बाद में जैन और बौद्ध श्रमण परम्पराओं में इसे विशेष रूप से अपनाया गया। इसके अर्थ का विकास धार्मिक एवं दार्शनिक सन्दर्भों में विशेष रूप से किया गया।

संवर का सामान्य अर्थ निग्रह, नियन्त्रण या नियमन है। इन्द्रियों की प्रवृत्तियों का नियमन योग का आवश्यक अंग है। इसी अर्थ में संवर शब्द का प्रयोग मन, वचन और काय की प्रवृत्ति का नियमन किया गया है।

जैन परम्परा के २३वें तीर्थंकर पार्श्व 'चाउज्जामसंवर' के उपदेष्टा माने जाते हैं। जैन और बौद्ध साहित्य में इसका समान रूप से विवरण मिलता है।

प्राकृत आगमों में पार्श्व के 'चाउज्जाम' का स्पष्ट वर्णन प्राप्त होता है। पालि त्रिपिटक में भी निगण्ठनातपुत्त को 'चातुयामसंवरसंवृतो' कहा गया है। बुद्ध अपने उपदेशों में भिक्षुओं को विभिन्न प्रकार के संवर का उपदेश देते हैं।

संस्कृत साहित्य प्रायः अपने पूर्ववर्ती प्राकृत या पालि साहित्य के सन्दर्भ में संवर की व्याख्या करता है, तथापि इसके अर्थ विश्लेषण को विस्तार एवं सूक्ष्मतर स्तर तक पहुँचाता है।

यहाँ प्राकृत, पालि और संस्कृत साहित्य के मूल सन्दर्भों में 'संवर' का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया जायेगा।

ठाणाङ्ग नामक प्राकृत आगम में संवर के चार प्रकारों का स्पष्ट निर्देश किया गया है।^१ उत्तराध्ययन में पार्श्व की परम्परा के वयोवृद्ध श्रमण केशी तथा महावीर के प्रधान शिष्य गौतम के वार्तालाप का विवरण मिलता है। केशी गौतम

१. सव्वाओ पाणातिवायाओ वेरमणं। सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं।
सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं। सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं।

—ठाणाङ्ग ४:१३६।

संकाय पत्रिका-२

से पार्श्व के 'चाउज्जामधम्म' और महावीर के 'पंचसिक्खियधम्म' के विषय में चर्चा करते हैं।^२ पालि सामञ्जसफलसुत्त में निगण्ठनातपुत्तको 'चातुयामसंवरसंबुतो' कहा गया है।^३ यहाँ संवर के जो चार प्रकार बताये गये हैं, वे ठाणाङ्ग से भिन्न प्रकार के हैं। पालिग्रन्थों में प्राप्त संवर के अन्य विवरण से भी वे अलग प्रतीत होते हैं। सामञ्जसफल पूँछने पर निगण्ठनातपुत्त ने अजातशत्रु से कहा कि निगण्ठ 'चातुयामसंवरसंबुत' होता है। वह चातुयामसंवर इस प्रकार है^४—

१. सब्बवारिवारितो ।
२. सब्बवारियुतो ।
३. सब्बवारिधुतो ।
४. सब्बवारिफुटो ।

एक अन्य प्रसंग में गौतम बुद्ध ने निग्रोध को सम्बोधित करते हुए जो चार संवर बताये हैं^५ वे ठाणाङ्ग से प्रायः मेल खाते हैं।

संवर की गणना शौरसेनी तथा अर्धमागधी प्राकृत आगम परम्पराओं में सात तत्त्वों या नौ पदार्थों में की गई है।^६ आगे चलकर संस्कृत ग्रन्थकारों ने भी आगमों का अनुसरण किया।

जैन और बौद्ध परम्परा में संवर शब्द के अर्थविकास का अवलोकन उनके साहित्य के आलोक में करने पर विशेष जानकारी प्राप्त होती है। कुन्दकुन्द ने पंचत्थिकायपाहुडसुत्त में कहा है कि जो भलीभाँति मार्ग में रहकर इन्द्रिय, कषाय, और संज्ञाओं का जितना निग्रह करता है, उसका उतना पाप-आस्रव का छिद्र बन्द

२. उत्तराध्ययन, अध्ययन २३।
३. दीघनिकाय, १।२।
४. वही, १।२।

५. इध, निग्रोध तपस्वी चातुयामसंवरसंबुतो होति । कथं च, निग्रोध, तपस्वी चातुयाम-संवर-संबुतो होति ? इध, निग्रोध, तपस्वी न पाणं अतिपातयेति, न पाणं अतिपातयति, न पाणमतिपातयतो समनुञ्जो होति; न अदिन्नं आदियति, न अदिन्नं आदियापेति, न अदिन्नं आदियतो समनुञ्जो होति, न मुसा भणति, न मुसाभणापेति, न मुसा भणतो समनुञ्जो होति, न भावितमासीसति, न भावितमासीसापेति, न भावितमासीसतो समनुञ्जो होति । एवं खो, निग्रोध, तपस्वी चातुयामसंवरसंबुतो होति । —दीघनि०, ३।२।

६. पंचत्थिकाय० २।१०८, द्रव्यसंग्रह २८, ठाणाङ्ग ९।६, उत्तराध्ययन २८।१४, तत्त्वार्थसूत्र १।४।

संकाय पत्रिका-२

होता है।^{१०} आगे लिखा है कि जिस संयत के मन, वचन, काय के व्यापार स्वरूप योग में जब न शुभ परिणाम रूप पुण्य रहता है और न अशुभ परिणाम रूप पाप रहता है, तब उसके शुभाशुभ रूप कर्मों का संवर होता है।^{११} अन्यत्र कहा है कि मिथ्य त्व, अज्ञान, अविरति भाव और योग इन हेतुओं का अभाव होने के कारण नियम से ज्ञानी जीव के आस्रवका निरोध होता है।^{१२}

भगवती आराधनाकार ने संवर के स्वरूप को निर्देशित करते हुए लिखा है कि जिन सम्यग्दर्शनादि परिणामों से अथवा गुप्ति, समिति आदि परिणामों से मिथ्यादर्शनादि परिणाम रोके जाते हैं, वे रोकने वाले परिणाम संवर कहे जाते हैं।^{१३}

नयचक्र में कहा गया है कि जैसे नाव के छिद्र रुंध जाने पर उसमें जल प्रवेश नहीं करता, उसी प्रकार मिथ्यात्वादि परिणामों का अभाव हो जाने पर जीव में कर्मों का संवर होता है, अर्थात् नवीन कर्मास्रव नहीं होता।^{१४}

तत्त्वार्थसूत्रकार ने लिखा है कि आस्रव का रुकना संवर है।^{१५} संवर की इस परिभाषा को देखने से आस्रव की परिभाषा जानने की बात सामने आ जाती है। शरीर, वचन और मन की प्रवृत्ति अर्थात् क्रिया को आस्रव कहा गया है। इस प्रवृत्ति का रुकना या रोकना संवर है।^{१६}

७. इंदियकसायसण्णा णिग्गहिदो जेहि सुट्टु मग्गम्मि ।

जावत्तावत्तेहि पिहियं पावासवच्छिद्दं ॥

—पंचत्थिकायपाहुडसुत्त, गा० १४१ ।

८. जस्स जदा खलु पुण्णं जोगे पावं च णत्थि विरदस्स ।

संवरणं तस्स तदा सुहासुहकदस्स कम्मस्स ॥

—वही, गा० १४३ ।

९. मिच्छत्तं अण्णणं अविरयभावो य जोगो य ।

हेउ अभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो ॥

—समयपाहुडसुत्त, संवराधिकार गा० १९०-१९१ ।

१०. भगवती आराधना, गा० ३८ ।

११. रुंधिय छिद्दसहस्से जलजाणे जहं जलं तु णासवदि ।

मिच्छत्ताइअभावे तह जीवे संवरो होई ॥—बृहद् नयचक्र, १५६ गा० ।

१२. आस्रवनिरोधः संवरः ।—तत्त्वार्थसूत्र ९/१ ।

१३. कायवाङ्मनःकर्म योगः । स आस्रवः ।—वही ६/१, २ ।

संकाय पत्रिका-२

तत्त्वार्थसूत्र के वार्तिककार भट्ट अकलंक ने संवर को स्पष्ट करते हुए दूसरे शब्दों में कहा है कि जिसके द्वारा रोका जाये वह संवर है, अथवा रुकने की क्रियामात्र संवर है अर्थात् रुकना संवर है।^{१४} इसी को उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हुए आगे लिखा है कि जिस प्रकार किसी नगर के द्वार अच्छी तरह बन्द हों तो वह नगर शत्रुओं को अगम्य होता है, उसी प्रकार गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चरित्र से सुसंवृत कर लिया है इन्द्रिय, कषाय तथा योग जिसने ऐसी आत्मा के नये कर्मों का द्वार बन्द हो जाना संवर है।^{१५} अन्यत्र लिखा है कि कर्मों के आगमन के निमित्तों का अप्रादुर्भाव आस्रव का निरोध है। उस आस्रव का निरोध होने पर तत्पूर्वक कर्मों का ग्रहण नहीं होना संवर है। मिथ्यादर्शनादि प्रत्ययों का निरोध होने पर उनसे आने वाले कर्मों का रुकना संवर है।

संवर को विश्लेषित करने में उसके भेदों से भी पर्याप्त सहायता मिलती है। इन भेदों को सामान्यतया दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

१. आध्यात्मिक व्याख्या करने वाले।
२. सामान्य या आचारपक्षीय व्याख्या करने वाले।

यद्यपि ये दो प्रकार परस्पर सर्वथा असम्बद्ध नहीं हैं, तथापि दोनों में मौलिक अन्तर है।

संवर के द्रव्य और भाव ये दो भेद शौरसेनी तथा अर्धमागधी दोनों ही परम्पराओं में प्राप्त होते हैं। निश्चय और व्यवहार संवर के रूप में भी दो भेद किये जाते हैं। इससे संवर के आभ्यन्तर तथा बाह्य स्वरूप और उसके कारणों पर प्रकाश पड़ता है। निश्चय संवर के विवेचन में शास्त्रकारों ने उस अध्यात्ममार्ग का निरूपण किया है, जिससे शुभ-अशुभ अथवा पुण्य-पाप रूप कर्मों के आने का निरोध होता है। व्यवहार संवर के विवेचन में उस आचार मार्ग का वर्णन किया है, जिससे कर्मों का आगमन रुकता है।

कुन्दकुन्द ने समयपाहुडसुत्त में आस्रव और संवर नामक दो प्रकरणों में इनकी स्वतन्त्र रूप से आध्यात्मिक व्याख्या की है।^{१६}

१४. संत्रियतेऽनेन संवरणमात्रं वा संवरः।—तत्त्वार्थवार्तिक १/४।

१५. वही, ९/१।

१६. समयपाहुडसुत्त, आस्रवाधिकार, गाथा १६४-१८०, संवराधिकार, गाथा १८१-१९२।

तत्त्वार्थसूत्र के वृत्तिकार देवनन्दि पूज्यपाद ने लिखा है कि वह संवर द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार का है। संसार की निमित्त भूत क्रिया की निवृत्ति होना भावसंवर तथा उस क्रिया का निरोध होने पर तत्पूर्वक होनेवाले कर्मपुद्गलों के ग्रहण का विच्छेद द्रव्यसंवर है।^{१७} द्रव्यसंग्रहकारने दो गाथाओं द्वारा संवर के इन्हीं दो भेदों को विश्लेषित करते हुए लिखा है कि आत्मा के जो परिणाम कर्म के आस्रव को रोकने में कारण हैं, उन्हें भावसंवर और जो द्रव्यास्रव को रोकने में कारण हैं वह द्रव्यसंवर हैं। भावसंवर को स्पष्ट करते हुए आगे लिखा है कि व्रत समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय तथा अनेक प्रकार का चारित्र, ये सब भावसंवर के विशेष जानना चाहिए।^{१८} टीकाकार ने इन परिभाषाओं की दूसरे शब्दों में व्याख्या करते हुए लिखा है—आस्रवरहित सहजस्वभाव होने से समस्त कर्मों के रोकने में कारण, जो शुद्ध परमात्मतत्त्व है, उसका स्वभाव से उत्पन्न शुद्ध चेतन परिणाम भावसंवर है। और कारणभूत भावसंवर से उत्पन्न हुआ कार्यरूप नये-नये द्रव्यकर्मों के आगमन का अभाव, द्रव्यसंवर है।^{१९} पंचत्थिकाय के वृत्तिकारों ने लिखा है कि राग-द्वेष तथा मोह परिणामों का निरोध भावसंवर है और उसी भावसंवर के निमित्त से योगद्वारोंसे शुभाशुभ कर्म-पुद्गलों का निरोध द्रव्यसंवर है।^{२०} शुभ और अशुभ कर्मों के निरोध करने में समर्थ शुद्धोपयोग भाव-संवर तथा भावसंवर के आधार से नवीनतम कर्मों का निरोध द्रव्यसंवर है।^{२१}

कुन्दकुन्दाचार्य ने समयपाहुडमुत्त में शुद्धात्मा की उपलब्धि ही संवर कैसे, इस प्रश्न के उत्तर में कहा है कि शुद्धात्मा को जानता हुआ, अनुभव करता हुआ जीव शुद्धात्मा को ही प्राप्त करता है और अशुद्धात्माको जानता हुआ जीव अशुद्धात्मा

१७. स द्विविधो भावसंवरो द्रव्यसंवरश्चेति । तत्र संसारनिमित्तक्रियानिवृत्ति-
भावसंवरः । तन्निरोधे तत्पूर्वककर्मपुद्गलादानविच्छेदो द्रव्यसंवरः ।

—सर्वार्थसिद्धिः, ९/१ ।

१८. चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेद्दु ।
सो भावसंवरो खलु दव्वासवरोहणे अण्णो ॥
वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपेहा परीसहजओ य ।
चारित्तं बहुभेया णायव्वा भावसंवरविसेसा ॥

—द्रव्यसंग्रह, गा० ३४-३५ ।

१९. द्रव्यसंग्रह टीका, गा० ३४ ।

२०. पंचत्थिकाय, २/१४२ अमृतचंद्राचार्यवृत्तिः ।

२१. वही, जयसेनाचार्यवृत्तिः ।

संकाय पत्रिका-२

को ही प्राप्त करता है।^{२२} इसी को विश्लेषित करते हुए आगे लिखा है—आत्मा को आत्मा के द्वारा जो पुण्य-पापरूपी शुभाशुभ योगों को रोककर दर्शन-ज्ञान में स्थित; अन्य वस्तु की इच्छा से विरत, जो आत्मा सर्वसंग से रहित, अपने आत्मा को आत्मा के द्वारा ध्याता है, तथा कर्म और नोकर्म को नहीं ध्याता, एकत्व चैतन्य का ही चिन्तन करता है, वह आत्माको ध्याता हुआ दर्शन-ज्ञानमय और अनन्यमय होता हुआ अल्पकाल में ही कर्मों से रहित आत्मा को प्राप्त करता है।^{२३}

अन्यत्र कहा गया है कि जिसे सर्व द्रव्यों के प्रति राग, द्वेष या मोह नहीं है, उस समसुख-दुःख भिक्षुको शुभ और अशुभ-कर्म आस्रवित नहीं होते।^{२४} जब जिस विरत व्यक्ति के पुण्य और पाप में से कोई भी योग नहीं होता, तब उसे शुभाशुभ भाव कृत कर्म का संवर होता है।^{२५}

बारस अनुवेक्खा में लिखा है कि मन, वचन, काय की शुभ प्रवृत्तियों से अशुभयोग का संवर होता है और शुद्धोपयोग से शुभयोग का भी संवर हो जाता है।^{२६}

समयपाहुडसुत्त आत्मख्याति में अमृतचन्द्र ने लिखा है—भेद विज्ञान से शुद्धात्मा की उपलब्धि होती है और शुद्धात्मा की उपलब्धि से राग-द्वेष मोह का अभाव रूप संवर होता है।^{२७}

द्रव्यसंग्रह के टीकाकार ने लिखा है कि कर्मों के आस्रव को रोकने में समर्थ स्वानुभव में परिणत जीव के शुभ तथा अशुभ कर्मों के आने का निरोध संवर है।^{२८}

कुन्दकुन्द ने बारस अणुवेक्खा में लिखा है कि पाँच महाव्रतों से नियम-

२२. समयपाहुडसुत्त, गा० १८६ ।

२३. वही, गा० १८७-१८९ ।

२४. जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोही व सव्वदव्वेसु ।

णासवदि सुहं असुहं समसुहदुक्खस्स भिक्खुस्स ॥

—पंचत्थिकायपाहुडसुत्त, गा० १४२ ।

२५. वही, गा० १४३ ।

२६. सुहजोगेसु पवित्ति संवरणं कुणदि असुहजोगस्स ।

सुहजोगस्स णिरोहो सुद्धुवजोगेण संभवदि ॥

—बारस अणुवेक्खा, गा० ६३ ।

२७. समयपाहुडसुत्त, आत्मख्याति, गा० २८३ ।

२८. द्रव्यसंग्रह टीका, गा० २८ ।

संकाय पत्रिका-२

पूर्वक अविरतिरूप परिणामों का निरोध होता है और कषायरहित परिणामों से क्रोधादिरूप आस्रवों के द्वार बन्द हो जाते हैं ।^{२९}

धवलाकार ने कहा है कि मिथ्यात्व, अविरति के समान, कषाय और योग—मन, वचन, काय की प्रवृत्ति भी कर्मों के आस्रव हैं । अर्थात् इनसे विपरीत, सम्यक्त्व, विरति, अकषाय और योगनिरोध ये संवर हैं ।^{३०} कार्तिकेयानुप्रेक्षा में कहा गया है कि सम्यक्त्व, देशव्रत, महाव्रत, कषायों का जीतना तथा योगों का अभाव ये सब संवर के नाम हैं । एक अन्य स्थल पर लिखा है कि जो मुनि विषयों से विरक्त होकर, मनको हरनेवाले इन्द्रियविषयों से अपने को सदा दूर रखता है, उसी के निश्चय से संवर होता है ।^{३१}

तत्त्वार्थसूत्रकार ने लिखा है—वह संवर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषहजय और चारित्र से होता है ।^{३२}

सर्वार्थसिद्धिकार ने संवर के इन कारणों को विश्लेषित करते हुए लिखा है कि काय आदि योगों का निरोध होने पर योग निमित्तक कर्म का आस्रव नहीं होता है, इसलिए गुप्ति से संवर की सिद्धि जान लेना चाहिए । समितियों रूप प्रवृत्ति करने वाले के असंयम रूप परिणामों के निमित्त से होनेवाले कर्मों के आस्रव का संवर होता है । जीवन में उतारे गये स्वगुण तथा प्रतिपक्षभूत दोषों के सद्भाव में यह लाभ और यह हानि है, इस तरह की भावना से प्राप्त उत्तम क्षमादिक धर्म संवर के कारण हैं । अनित्यादि अनुप्रेक्षाओं का सान्निध्य मिलने पर उत्तमक्षमादि के धारण करने से महान् संवर होता है । जो संकल्प के विना उपस्थित हुए परिषहों को सहन करता है, और जिसका चित्त संक्लेश रहित है, उसके रागादि परिणामों के आस्रव का निरोध होने से महान् संवर होता है ।^{३३}

२९. पंचमहव्यमणसा अविरमण्णिरोहणं हवे णियमा ।

कोहादि आसवाणं दाराणि कसायरहियपल्लगेहि ॥

—बारस अणुवेक्खा, गा० ६२ ।

३०. धवलाटीका ७।२ ।

३१. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गा० ९५, १०१ ।

३२. स गुप्तिसमितिधमनुप्रेक्षापरिषहजयचारित्रं ।

—तत्त्वार्थसूत्र ९।२ ।

३३. सर्वार्थसिद्धि, ९।४ ।

संकाय पत्रिका-२

वार्तिककार ने चारित्र्य रूप कारण का महत्त्व बताते हुए लिखा है—यह सामायिकादि भेद रूप चारित्र्य पूर्व आस्रवों के निरोध रूप होने से परम-संवर का कारण है।^{३४}

द्रव्यसंग्रह के टीकाकार ने लिखा है कि व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय तथा अनेक प्रकार का चारित्र्य ये सब भावसंवर के विशेष जानने चाहिए। टीकाकार ने विश्लेषण करते हुए लिखा है कि निरास्रव शुद्धात्म तत्त्व की परिणति रूप संवर की कारणभूत बारह अनुप्रेक्षा हैं। अर्थात् शुद्धात्मानुभूति तो संवर में कारण है, और अनुप्रेक्षा तथा अन्य समिति, गुप्ति आदि संवर के उस कारण के भी कारण हैं।^{३५} आगे टीकाकार ने लिखा है कि भावसंवर के कारणभूत व्रत, समिति, गुप्ति धर्म, द्वादशानुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र्य इनमें निश्चय रत्नत्रय को साधनेवाला जो व्यवहार रत्नत्रय रूप शुभोपयोग है, उसका निरूपण करनेवाले जो वाक्य हैं, वे पापास्रव के संवर में कारण जानना चाहिए। और जो व्यवहार रत्नत्रय से साध्य शुद्धोपयोग रूप निश्चय रत्नत्रय के प्रतिपादक वाक्य हैं, वे पुण्य और पाप दोनों आस्रवों के संवर के कारण होते हैं।^{३६}

अर्धमागधी प्राकृत आगमों में संवर शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम आचारचूला में एक बार हुआ है। परन्तु यहाँ संवर को परिभाषित नहीं किया गया है। महावीर के विहार के मन्दभं में कहा गया है कि श्रमण भगवान् महावीर शरीर के प्रति ममत्व त्यागकर अनुत्तर आलय, अनुत्तर विहार, अनुत्तर संयम, अनुत्तर प्रग्रह, अनुत्तर संवर, अनुत्तर तप, अनुत्तर ब्रह्मचर्यवास, अनुत्तर क्षमा, अनुत्तर अनासक्ति, अनुत्तर तुष्टि, अनुत्तर समिति, अनुत्तर गुप्ति, अनुत्तर स्थान, अनुत्तर कार्य, अनुत्तर सुचरित के फलस्वरूप निर्वाण और मुक्ति मार्ग से आत्मा को भावित करते हुए विहार करते थे।^{३७}

सूत्रकृताङ्ग में संवर शब्द का उल्लेख सात प्रसंगों में हुआ है। जगत्कर्तृत्व के विषय में विभिन्नमतों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि जो दुःख और

३४. तत्त्वार्थवार्तिक, ९।४।

३५. द्रव्यसंग्रह टीका, ३५।

३६. वही, टीका ३५।

३७. तओ णं समणे भगवं महावीरे वोसट्ठचत्तदेहे अणुत्तरेण आलएणं, अणुत्तरेणं विहारेणं, अणुत्तरेणं संजमेणं, अणुत्तरेणं पग्गहेण, अणुत्तरेणं संवरेणं,अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

—आचारचूला १५।३६।

दुःख समुत्पाद को ही नहीं जानता, वह दुःखनिरोध-संवर का कथन कैसे कर सकता है।^{३८} एक अन्य प्रसंग में कहा गया है कि साधु को पंच संवरसंवृत समिति में सर्वदा सावधान रहकर, आसक्तों में अनासक्त होकर मोक्षपर्यन्त परिव्रजित रहना चाहिए।^{३९} अन्य स्थल पर सम्यक् क्रियावाद के प्ररूपक एवं अनुगामी साधक की अर्हताएँ बताते हुए कहा गया है कि क्रियावाद को वही बता सकता है जो जीवों की नाना प्रकार की पीड़ा को जानता है, आस्रव और संवर को जानता है तथा दुःख और निर्जरा को जानता है।^{४०}

क्रिया स्थानों के वर्णन प्रसंग में हिंसादण्ड नामक तृतीय स्थान के अधिकारी के स्वरूप एवं वृत्ति का कथन करते हुए कहा गया है कि वे यथानाम श्रमणोपासक होते हैं, जिन्होंने जीव-अजीव के स्वरूप को जान लिया है, पुण्य-पाप के विवेक को प्राप्त कर लिया है, जो आस्रव, संवर, वेदना, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, बन्ध और मोक्ष के ज्ञान में कुशल हैं और इसप्रकार आत्मलीन हो विचरण करते हैं।^{४१} इसी प्रकार का विवरण नालन्दा के लेप गाथापति के वर्णन में (सूत्र० २।२।७२) तथा भगवद् में तुंगिका के श्रमणोपासकों के वर्णन में प्राप्त होता है (भग० २।९४)।

अन्यत्र कहा गया है कि लोक-अलोक, जीव-अजीव आदि की तरह आस्रव और संवर का भी अस्तित्व है, ऐसा श्रद्धान करना चाहिए।^{४२}

गोशालक के आक्षेपों के उत्तर में आर्द्रकमुनि कहते हैं कि पांच महाव्रत और अणुव्रतों की तरह पूर्ण श्रामण्य के लिए पांच आस्रव तथा संवर का प्रतिपादन किया गया है।^{४३}

ठाणाङ्ग में संवर शब्द चौदह प्रसंगों में प्रयुक्त हुआ है। यहां पर अपेक्षा दृष्टि से क्रमशः एक से लेकर दस संख्याओं तक संवर के भेद गिनाये गये हैं। प्रथम स्थान में कहा गया है कि एक आत्मा, एक अनात्मा आदि की तरह अस्तित्व या तात्त्विक दृष्टि से संवर भी एक है।^{४४} दूसरे स्थान में कहा है कि लोक में जो कुछ है

३८. सूत्रकृताङ्ग १।१।६९।

३९. वही, १।१।८८।

४०. वही, १।१२।२१।

४१. वही, २।२।७२, २।७।४।

४२. वही, २/४/१७।

४३. महव्वए पंच अणुव्वए य तहेव पंचासव संवरे य।

विरइं इह ससमणियम्मि पण्णे लवावसक्की समणे त्ति वेमि ॥ —वही, २/६/६

४४. एगे संवरे । —ठाणाङ्ग १/१४।

वह सब दो प्रकार का है “जदत्थिणं लोगे तं सर्व्वं दुपओआरं” । जैसे जीव-अजीव, त्रस-स्थावर, सयोनिक-अयोनिक, धर्म-अधर्म पुण्य-पाप, बन्ध-मोक्ष, आस्रव संवर, वेदना-निर्जरा इत्यादि।^{४५} आगे कहा गया है कि आरम्भ और परिग्रह इन दो स्थानों को जाने और छोड़े बिना आत्मा सम्पूर्ण संवर से संवृत नहीं होता।^{४६} अन्यत्र लिखा है कि इन ही दो स्थानों को जानकर और त्यागकर आत्मा सम्पूर्ण संवर संवृत होता है।^{४७} सुनने और जानने—इन दो स्थानों से आत्मा सम्पूर्ण संवर से संवृत होता है।^{४८} आगे कहा गया है कि क्षय और उपशम दो स्थानों से आत्मा सम्पूर्ण संवर से संवृत होता है।^{४९}

तृतीय स्थान में प्रथम, मध्यम तथा पश्चिम तीन यामों में आत्मा का सम्पूर्ण संवर से संवृत होना बतलाया गया है।^{५०} आगे लिखा है कि वय तीन हैं—प्रथम मध्यम तथा पश्चिम। इन तीनों वयों में आत्मा केवल सम्पूर्ण संवर से संवृत होता है।^{५१}

चतुर्थ स्थान में चार अन्तक्रियाओं का वर्णन करते हुए कहा है कि कोई पुरुष अल्पकर्मों के साथ मनुष्य जन्म को प्राप्त होता है, वह मुंडित होकर, घर छोड़कर, अनगार रूप में पत्रजित हो, संयम-बहुल, संवर-बहुल और समाधि-बहुल होता हुआ अन्त में सब दुःखों का अन्त करता है, यह प्रथम अन्तक्रिया है। इसी प्रकार अन्य तीन अन्तक्रियाओं का स्वरूप बतलाया गया है।^{५२}

पंचम स्थान में संवर पांच प्रकार का कहा गया है—श्रोतेन्द्रिय संवर, चक्षु-रिन्द्रियसंवर, घ्राणेन्द्रियसंवर, रसनेन्द्रियसंवर, स्पर्शनेन्द्रियसंवर।^{५३} अन्यत्र सम्यक्त्व,

४५. वही, २/१।

४६. वही, २/४६।

४७. वही, २/५७।

४८. वही, २/६८।

४९. वही, २/४०४।

५०. वही, ३/१६७।

५१. वही, ३/१७५।

५२. चत्तारि अंतक्रियाओ पणत्ताओ, तं जहा—अप्पकम्मपच्चायते यावि भवति । से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए संजमबहुले संवरबहुले समाहिबहुले... ।—ठाणाङ्ग ४/१।

५३. वही, ५/१३७।

संकाय पत्रिका-२

विरति, अप्रमाद, अकषायिता तथा अयोगिता, इन संवर के पांच द्वारों का उल्लेख किया गया है।^{५४} आगे छठे स्थान में पंचेन्द्रिय के साथ नोइन्द्रिय मिलाकर छह संवर^{५५}, आठवें स्थान में पंचेन्द्रिय सहित मन, वचन और काय को मिलाकर आठ संवर,^{५६} तथा दसवें स्थान में पंचेन्द्रिय, मन, वचन, काय, उपकरण, एवं सूची कुशाग्र, यह दस प्रकार का संवर कहा गया है।^{५७}

समवायाङ्ग में संवर शब्द का प्रयोग दो बार किया गया है। ठाणाङ्ग की तरह यहाँ भी समवायों में संख्याओं के क्रम से विवेचन किया गया है। प्रथम स्थानक में कहा गया है कि एक आत्मा, एक अनात्मा, एक लोक, एक अलोक की भाँति तात्त्विक दृष्टि से संवर भी एक है।^{५८} एक अन्य स्थल पर बत्तीस योग संग्रहों का उल्लेख करते हुए उनके अन्तर्गत संवर का भी परिगणन किया गया है।^{५९}

भगवद् (व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्राङ्ग) में संवर शब्द का प्रयोग ग्यारह प्रसंगों में हुआ है। पार्श्वपत्तीय—पार्श्व की परम्परा का शिष्यानुशिष्य कालास्यवेषिपुत्त नामक अनगार भगवान् महावीर के स्थविरों के पास जाकर कहता है—हे स्थविरो ! आप सामयिक, सामायिक के अर्थ को, प्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान के अर्थ को, संयम, संयम के अर्थ को, संवर, संवर के अर्थ को नहीं जानते हैं, हे स्थविरो ! आप विवेक, विवेक के अर्थ को, तथा व्युत्सर्ग को एवं व्युत्सर्ग के अर्थ को भी नहीं जानते हैं। यदि आप सामायिक, प्रत्याख्यान, संयम, संवर आदि को एवं इनके अर्थों को जानते हैं तो इनके स्वरूप बतलाइए ? इसके उत्तर में भगवन्त स्थविर कालास्यवेषिपुत्र अनगार से कहते हैं—हे आर्य, हम सामायिक, प्रत्याख्यान, संयम, संवर, विवेक एवं व्युत्सर्ग को तथा इन सबके अर्थों को भी जानते हैं। हे आर्य ! हमारी आत्मा ही सामायिक है, हमारी आत्मा ही सामायिक का अर्थ है, इसीप्रकार आत्मा ही प्रत्याख्यान, संयम, संवर, विवेक एवं व्युत्सर्ग है और आत्मा ही इन सबका अर्थ है।^{६०}

५४. पंच संवरद्वारा पणत्ता, तं जहां—समत्तं, विरती, अपमादो, अकसाइत्तं अजोगित्तं ।—ठाणाङ्ग ५/११०, समवायाङ्ग ५ ।

५५. ठाणाङ्ग ६/१५ ।

५६. वही, ८/११ ।

५७. वही, ११/१० ।

५८. एगे संवरे । समवायाङ्ग १।१९ ।

५९. वही, ३२।१।३ ।

६०. तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्छिज्जे कालासवेसियपुत्ते णामं अणगारे जेणेव थेरा भगवतो तेणं उवागच्छति, उवागच्छता थेरे भगवते एवं

संकाय पत्रिका-२

अन्यत्र गौतम पूछते हैं कि भगवन् ! क्या छदमस्थ मनुष्य शाश्वत, अनन्त, तथा अतीत काल में केवलसंयम, केवलसंवर, केवलब्रह्मचर्यवास तथा केवल-प्रवचनमाता के पालन से सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिवृत्त, एवं सर्व दुःखों का अन्त करने वाला हुआ है ? इसके उत्तर में भगवान् कहते हैं—गौतम ! ऐसी बात नहीं है । जो कोई भी मनुष्य कर्मों का अन्त करनेवाले, चरमशरीरी—अन्तिम शरीर वाले हुए हैं, अथवा जिन्होंने समस्त कर्मों का अन्त किया है, अन्त करते हैं, या करेंगे, वे सब उत्पन्न ज्ञानदर्शनधारी, अर्हन्त, जिन, केवली होकर तत्पश्चात् सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त हुए हैं, उन्होंने समस्त दुःखों का अन्त किया है, वे ही करते हैं, और करेंगे ।^{६१}

राजगृह नगर में गौतम महावीर से पूछते हैं—भते ! केवली आदि से धर्म श्रवण किये विना ही क्या कोई जीव शुद्ध संवर से संवृत होता है ? इसके उत्तर में महावीर कहते हैं—गौतम ! कोई जीव केवली आदि से धर्म श्रवण किये विना ही शुद्ध संवर से संवृत होता है, और कोई जीव नहीं होता, क्योंकि जिस जीव ने अध्यवसानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम किया है, वह केवली आदि से सुने विना ही शुद्ध संवर से संवृत हो जाता है, किन्तु जिसने अध्यवसानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं किया है, वह जीव केवली आदि से सुने विना शुद्ध संवर से संवृत नहीं होता ।^{६२}

गौतम एक और प्रश्न करते हैं—भते ! क्या कोई जीव केवली, केवली-पाक्षिक, उपासिका आदि से धर्म श्रवण किये विना केवलीप्ररूपित धर्म-श्रवण-लाभ करता है, शुद्ध बोधि प्राप्त करता है, शुद्ध संयम एवं संवर से संवृत होता है ? इसके उत्तर में महावीर कहते हैं—गौतम ! जिस जीव ने ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय,

वयासी—थेरा सामाइयं न याणति, थेरा सामाइयस्स अट्ठं न याणति...
थेरा संवरं न याणति, थेरा संवरस्स अट्ठं न याणति ।...तए णं थेरा
भगवंतो कालासवेसियपुत्त अणगारं एवं वयासी—जाणामो णं अज्जो !
सामाइयं, जाणामो णं अज्जो ! सामाइयस्स अट्ठंजाणामो
...संवरं संवरस्स अट्ठं । ...आया णे अज्जो ! सामाइए, आया णे अज्जो !
सामाइयस्स अट्ठे । ...आय णे अज्जो ! संवरे, आया णे अज्जो ! संवरस्स
अट्ठे ... ।

—भगवइ १।४२३, ४२४, ४२६ ।

६१. वही, ५।११५, ७।१५६ ।

६२. वही, ९।१९, १।२० ।

संकाय पत्रिका-२

धर्मान्तराधिक चारित्र्यावरणीय, यतनावरणीय, अध्यवसानावरणीय, आभिनिबोधक-ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का क्षयोपशम नहीं किया तथा श्रुतावधिमनपर्यव-ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं किया और केवलज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय नहीं किया, वह जीव केवली आदि से धर्म श्रवण किये विना धर्म श्रवण-लाभ नहीं पाता, संयम एवं संवर से संवृत नहीं हो पाता। और जिस जीव ने ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का क्षयोपशम तथा क्षय किया है वह केवली आदि से धर्म श्रवण किये विना ही केवलीप्ररूपित धर्म-श्रवण-लाभ प्राप्त करता है, शुद्ध बोधि, संयम तथा संवर आदि से संवृत होता है और केवलज्ञान को उपाजित कर लेता है।^{६३}

एक अन्य प्रसंग में अम्बड़ परिव्राजक के विषय में गौतम महावीर से पूछते हैं—भंते ! वह अम्बड़ परिव्राजक मुंडित होकर आपके पास गृहस्थ से अनगार बना ? इसके उत्तर में महावीर कहते हैं—गौतम ! ऐसी बात नहीं है, उस श्रमणोपासक ने जीव-अजीव को जान लिया है, पुण्य-पाप का तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लिया है, आस्रव, संवर, निर्जरा आदि में प्रवीण है, अनेक तप कर्मों से अपनी आत्मा में लीन विचरण करता है, तथा महर्द्धिक दृढप्रतिज्ञ होकर सभी दुःखों का अन्त करेगा।^{६४}

एक और प्रश्न करते हुए गौतम कहते हैं—भंते ! संवेग, निर्वेद, आलोचना, निन्दा, गर्हा, क्षमापना, पंचेन्द्रियादि संवर इत्यादि ४९ प्रकार के पदों का क्या फल है ? इसके उत्तर में महावीर कहते हैं—गौतम ! संवेग, निर्वेद, आलोचना, पंचेन्द्रियादि संवर इन सब पदों का अन्तिम फल मोक्ष कहा गया है।^{६५}

ज्ञातृधर्मकथाङ्ग में संवर शब्द का प्रयोग मात्र एक प्रसंग में हुआ है। राजा शैलक के श्रावक बनने आदि के वृत्तान्त पूर्वक कहा गया है कि अनगार थावच्चापुत्र से धर्म श्रवण कर वह राजा श्रमणोपासक हो गया तथा जीव, अजीव, आस्रव, संवर आदि का तत्त्वज्ञानी हो एवं तप कर्मों सहित आत्मलीन हो जीवन व्यतीत करने लगा।^{६६}

उपासकदशाङ्ग में संवर शब्द तीन प्रसंगों में प्रयुक्त है। श्रमण महावीर आनन्द को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—आनन्द ! श्रमणोपासक को, जीव तथा

६३. वही, १।३१।
 ६४. वही, १४।११२।
 ६५. वही, १७।४८।
 ६६. ज्ञातृधर्मकथाङ्ग १।५।४७।

अ जीव के स्वरूप को जानने वाले को, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध-मोक्ष के स्वरूप को जाननेवाले को, अनतिक्रमणीय—धर्म से विचलित न होनेवाले को, सम्यक्त्व के पाँच प्रधान अतिचार जानने चाहिए, परन्तु उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे अतिचार इस प्रकार हैं—शङ्का, कांक्षा, विचिकित्सा, परपाखण्ड प्रशंसा तथा परपाखण्ड संस्तव।^{६७}

दूसरे स्थल पर कहा गया है कि इसके बाद वह आनन्द जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, मोक्षादि तत्त्वों का ज्ञाता श्रमणोपासक हो गया तथा प्रतिलाभ कराता हुआ जीवन व्यतीत करने लगा।^{६८} आगे कहा गया है कि तत्पश्चात् आनन्द की पत्नी शिवनन्दा भी श्रमणोपासिका बन गई, तथा जीवाजी-वादि तत्त्वों के ज्ञानपूर्वक प्रतिलाभ कराती हुई जीवन जीने लगी।

प्रश्नव्याकरणाङ्ग में संवर शब्द तेरह प्रसंगों में प्रयुक्त हुआ है। उपोद्धात में कहा गया है कि जम्बू! महर्षियों ने जिसका अर्थ भलीभांति बताया है, जिसमें आस्रव और संवर का विशेष रूप से निश्चय किया गया है, ऐसे प्रवचन के निस्सन्द—निचोड़ रूप इस शास्त्र को निश्चय करने के लिए अथवा मोक्ष के प्रयोजनार्थ कहूँगा।^{६९} संवर द्वार का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जम्बू! आस्रव द्वारों का कथन करने के बाद, पाँच संवर द्वार जिस प्रकार भगवान महावीर स्वामी ने समस्त दुःखों के विमोक्षार्थ कहे हैं, वैसे ही अनुक्रम से मैं कहूँगा।^{७०} उनमें प्रथम संवर द्वार अहिंसा है, दूसरा संवर द्वार सत्य वचन है, ऐसा बतलाया गया है। दत्तमनुज्ञात नामक तीसरा संवर द्वार है, चौथा संवर द्वार ब्रह्मचर्य है, और पाँचवा संवरद्वार अपरिग्रहत्व है।^{७१} आगे इन पाँचों संवर द्वारों का क्रमशः अलग-अलग विस्तार से विवेचन किया गया है।

६७. उपासकदशाङ्ग १।३१।

६८. वही १।५५, १।५६।

६९. इणमो अण्हय-संवर-विगिच्छियं पवयणस्स निस्संदं।

वोच्छामि णिच्छयत्थं सुहासियत्थं महेसोहिं ॥

—प्रश्नव्याकरणाङ्ग १/१/१।

७०. जम्बू! एत्तो य संवरदाराइं पंच वोच्छामि आणुपुव्वीए।

जह भणियाणि भगवया सव्वदुहविमोक्खणट्ठाए ॥

—वही, ६/१/३।

७१. पढमं होइ अहिंसा वितियं सच्चवयणं ति पन्नत्तं।

दत्तमणुन्नायसंवरो य बंभचेरमपरिग्रहत्तं च ॥

—वही, ६/१/३।

जैनपरम्परा की तरह बौद्धपरम्परा में भी संवर का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। पालित्रिपिटक से लेकर उत्तरकालीन पालि तथा संस्कृत बौद्ध साहित्य में संवर का विवेचन किया गया है। सामान्यतः संवर को शील के अन्तर्गत विश्लेषित किया गया है। यह पूर्ण रूप से आचार पक्ष को उद्घाटित करता है। आसत्रों को रोकने के अर्थ में जहाँ संवर का विवेचन किया गया है, वह प्रायः जैन श्रमणपरम्परा के अनुसार ही है। जिसकी व्याख्या तत्त्वमीमांसीय दृष्टि से भी की जा सकती है। त्रिपिटक में उपलब्ध नाटपुत्त के संवर का विवरण बुद्ध द्वारा विवेचन संवर से भिन्न है।

सामान्यतया संवर शब्द का प्रयोग शील, संयम, आवृत करना, रक्षा, रोकना, निवृत्ति आदि अर्थों में हुआ है।

विभंग में संवर शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है कि कायिक, वाचसिक तथा कायिक वाचसिक का अव्यतिक्रम-अनुल्लंघन संवर है।^{७२} इस संवर की व्याख्या में आये कायिक-वाचसिक एवं अव्यतिक्रम पदों का अर्थ है कि ग्रहण किये गये शील का काय और वाणी द्वारा उल्लंघन नहीं करना।^{७३}

विसुद्धिमग्ग में शील के प्रसंग में कहा गया है कि प्राणी हिंसा आदि से विरत रहनेवाले, व्रतादि का आचरण करने वाले साधक के चेतनादि धर्म—मानसिक अवस्थायें 'शील' हैं।^{७४} पटिसम्मिदामग्ग में कहा गया है कि यह शील चार प्रकार का होता है—चेतना शील, चैतसिक शील, संवर शील तथा अव्यतिक्रम शील।^{७५}

इनमें से संवर शील पाँच प्रकार का बताया गया है—(१) प्रातिमोक्षसंवर, (२) स्मृतिसंवर, (३) ज्ञानसंवर, (४) क्षान्तिसंवर (५) और वीर्यसंवर।^{७६}

भगवान् के शिक्षापदों को प्रातिमोक्ष कहते हैं। विभंग में कहा गया है कि जो भिक्षु प्रातिमोक्ष के संवर से संवृत, आचार और गोचर से सम्पन्न विहरता है,

७२. संवरो ति । कायिको अबीतिककमो, वाचसिको अबीतिककमो, कायिक-वाचसिको अबीतिककमो ।—विभंग १२/१ ।

७३. अबीतिककमो सीलंति समादिन्नसीलस्स कायिकवाचसिको अनतिककमो ।
—विसुद्धिमग्ग १ ।

७४. किं सीलं ति । पाणात्तिपातादीहि वा विरमन्तस्स वत्तपटिपत्ति वा पूरेन्तस्स चेतनादयो धम्मा ।—वही, १ ।

७५. पटिसम्मिदामग्ग १।१।२ ।

७६. विसुद्धिमग्ग १ ।

अल्पमात्र भी दोषों में भय देखने वाला होता है और भली प्रकार शिक्षापदों को सोखता है, यह प्रातिमोक्षसंवर शील कहलाता है ।^{७७}

सामञ्जसफलमुत्त में अजातशत्रु के एक प्रश्न के उत्तर में बुद्ध कहते हैं— महाराज ! जो भिक्षु चक्षु से रूप को देखकर न उसके निमित्त (आकार) को ग्रहण करने वाला होता है, और न अनुव्यञ्जनों को, जिसके कारण चक्षु इन्द्रिय में असंयम के साथ विहरते हुए लोभ, दौर्मर्नस्य, बुरे अकुशल धर्म उत्पन्न हों, उसके संवर के लिए जुटता है, चक्षु इन्द्रिय की रक्षा करता है, कान से शब्द सुनकर, नाक से गन्ध सूँघकर, जिह्वा से रमका आस्वादन कर, शरीर से स्पर्श कर, मन से धर्मों को जानकर, न उनके निमित्त (आकार) को ग्रहण करता है, और न अनुव्यञ्जन (आसक्ति) को ग्रहण करने वाला होता है । यह स्मृतिसंवर कहा जाता है ।^{७८}

सुत्तनिपात में भगवान् बुद्ध अजित को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि जो तृष्णा आदि के स्रोत हैं, स्मृति उनको रोकने वाली है, मैं स्त्रियों का संवर बतलाता हूँ—ये प्रजा से बन्द हो जाते हैं । यह ज्ञानसंवर है ।^{७९} मज्झिमनिकाय में बुद्ध भिक्षुओं को सम्बोधित करते हैं कि भिक्षुओ ! जो भिक्षु सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, मक्खी, मच्छर, धूप, हवा, सरीसृप आदि के आघात को सहन करने में समर्थ होता है, वाणी के द्वारा निकले दुर्वचन, तथा शरीर में उत्पन्न ऐसी दुःखमय, तीव्र, तीक्ष्ण, कटुक, अवाञ्छित, अरुचिकर, प्राणहर पीड़ाओं का स्वागत करने वाले स्वभाव का होता है, यह क्षान्तिसंवर है ।^{८०}

आगे कहा गया है कि भिक्षु ठीक से जानकर उत्पन्न हुए काम वतर्क— कामवासना सम्बन्धी संकल्प विकल्प—का स्वागत नहीं करता है, छोड़ता, हटाता, अलग करता है, उत्पन्न हुए व्यापादवितर्क का, उत्पन्न हुए विहिंसा वितर्क का, तथा पुनः पुनः उत्पन्न होने वाले पापी विचारों (धर्मों) का स्वागत नहीं करता, छोड़ता, हटाता तथा अलग करता है । यह वीर्यसंवर कहा जाता है ।^{८१}

७७. अयं प्रातिमोक्षसंवरो ।—वही, १, विभंग १२।१ ।

७८. अयं सतिसंवरो ।—वही १, दीघनिकाय १।२।४, विभंग १२।१ ।

७९. अयं ज्ञानसंवरो ।—वही, १, सुत्तनिपात ५६।४, यानि सोतानि लोकस्मि (अजितो ति भगवा), सति तेसं निवारणं, सोतानं सवरं ब्रूमि, पञ्चायेते पिघीयरे ति ।

८०. अयं क्षान्तिसंवरो नाम ।—विसुद्धिमग्ग १, मज्झिमनिकाय १।१।२, अंगुत्तर० ३।६।६ ।

८१. अयं वीर्यसंवरो नाम ।—वही १, मज्झिम० १।१।२, तथा अंगु० ३।६।६ ।

संकाय पत्रिका-२

इस प्रकार यह पाँच तरह के संवर तथा जो पाप से भय खाने वाले कुलपुत्रों की सामने आई हुई पाप की चीजों से विरति है—इन सबको संवर-शील समझना चाहिए।^{८२}

विनयपिटक चुल्लवग्ग में बड्ढलिच्छवी बुद्ध से कहता है कि भन्ते ! बाल (मूर्ख) सा, मूढ़सा, अकुशलसा हो मैंने जो अपराध किया है, जो मैंने आर्यदर्भ मल्लपुत्र को निर्मूल, शीलभ्रष्टता का दोष लगाया है, सो भन्ते, भगवान् भविष्य में संवर के लिए मेरे उस अपराध को अत्यय के तौर पर स्वीकार करें। इसके प्रत्युत्तर में बुद्ध कहते हैं—आवुस ! तुमने मूर्ख, मूढ़, अचतुर की तरह जो अपराध किया, जिसे तुम अपराध के तौर पर देखकर प्रतिकार करते हो, अतः हम स्वीकार करते हैं। आर्य विनय में यह बुद्धि है कि अपराध को अपराध के तौर पर देख कर धर्मानुसार उसका प्रतिकार करना और भविष्य में संवर के लिए प्रयत्नशील होना।^{८३}

दीघनिकाय सामञ्जससुत्त में इन्द्रियसंवर के विषय में कहा है कि जो भिक्षु आंख से रूप को देख कर न उसके निमित्त को ग्रहण करता है और न अनु-व्यञ्जित (आसक्त) होता है। जिस चक्षुइन्द्रिय के असंयमित विहरने से मनमें दीर्घमनस्य, बुरे अकुशल धर्म चले आते हैं, उसके संवर के लिए यत्न करता है। चक्षुरिन्द्रिय की रक्षा करता है, चक्षुरिन्द्रिय को संवृत करता है। कान से शब्द सुनकर, नाक से गन्ध सूँघकर, जिह्वा से रस का आस्वादन करके काय से स्पर्श करके, मन से धर्मों को जानकर न उनके निमित्त (आकार) को ग्रहण करता है, और न ही उनमें अनुव्यञ्जित (आसक्त) होता है। वह इस प्रकार के आर्य इन्द्रियसंवर से युक्त हो अपने अन्दर परम सुख को प्राप्त करता है।^{८४}

८२. विसुद्धिमग्ग १ ।

८३. चुल्लवग्ग ५।२।६ तथा ५।२।३ ।

८४. इध, महाराज, भिक्षु चक्खुना रूपं दिस्वा न निमित्तग्गाही होति नानु-व्यञ्जनग्गाही । यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्दियं असंबुतं विहरन्तं अभिज्झा दोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जति, रक्खति चक्खुन्दियं, चक्खुन्दिये संवरं आपज्जती । सोतेन सद्दं सुत्वा ... पे ... घानेन गन्धं घायित्वा ... पे ... जिह्वाय रसं ... सायित्वा ... पे ... कायेन फोढुब्बं फुसित्वा ... पे ... मनसा धम्मं विज्जाय न निमित्तग्गाही होति नानुव्यञ्जनग्गाही । ... सो इमिना अरियेन इन्द्रियसंवरेण समन्नागतो अज्झत्तं अब्यासेकसुखं परिसवेदेति । एवं खो, महाराज

संकाय पत्रिका-२

एक अन्य स्थल पर भगवान् बुद्ध चुन्द को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—
चुन्द ! मैं दृष्ट धार्मिक—इसी जन्म में—आस्रवों के संवर के ही लिए धर्मोपदेश नहीं करता, और न चुन्द ! केवल पर जन्म के आस्रवों के ही नाश के लिए । मैं दृष्ट धार्मिक और पारलौकिक दोनों ही आस्रवों के संवर और नाश के लिए धर्मोपदेश करता हूँ ।^{८५}

अन्यत्र बौद्ध मन्तव्यों के प्रसंग में चार प्रधानों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि प्रधान चार प्रकार का होता है—संवर-प्रधान, प्रहाण-प्रधान, भावना तथा अनुरक्षणा-प्रधान । संवर-प्रधान विषयक प्रश्न के उत्तर में बुद्ध कहते हैं कि भिक्षु चक्षु से रूप को देखकर निमित्तग्राही नहीं होता, अनुव्यञ्जनग्राही नहीं होता, इसी प्रकार समस्त इन्द्रियों की रक्षा करता है, संयम शील होता है, इत्यादि । यह संवरप्रधान है ।^{८६}

संयुक्तिकाय में कुशलधर्म विषयक प्रश्न के उत्तर में बुद्ध कहते हैं—
भिक्षु ! तुम प्रातिमोक्षसंवर का पालन करते विहार करो, आचार गोचर से सम्पन्न हो, थोड़ी-सी बुराई में भय देखकर, शिक्षापदों को मानते हुए विहार करो, इस प्रकार तुम शील पर प्रतिष्ठित हो चार स्मृति प्रस्थानों की भावना कर सकोगे ।^{८७}

साकेत कालकाराम में विहार करते समय बुद्ध भिक्षुओं को सम्बोधित कर कहते हैं भिक्षुओ ! यह श्रेष्ठ ब्रह्मचरिय जीवन जनता के सामने ढोंग करने, बात बनाने, लाभ, सत्कार और प्रशंसा प्राप्त करने, तथा वाद करने के लिए नहीं है, और इसलिए भी नहीं कि लोग मुझे जान लें । भिक्षुओ ! यह ब्रह्मचर्य-वास संवर, प्रहाण,

भिक्षु इन्द्रियेषु गुत्तद्वारो होति ।—दीघनिकाय १।२, धम्मसंगणी तथा पुग्गलपण्णत्ति ४।७४ ।

८५. न वो अहं चुन्द, दिट्ठधम्मिकानं येव आसवानं संवराय धम्मं देसेमि, न पनाहं, चुन्द, सम्परायिकानं येव आसवानं पटिघाताय धम्मं देसेमि । दिट्ठ-धम्मिकानं चेवाहं, चुन्द, आसवानं संवराय धम्मं देसेमि; सम्परायिकानं च आसवानं पटिघाताय ।—दीघनिकाय ३।६ ।

८६. चत्तारि प्रधानानि—संवरप्रधानं, प्रहाणप्रधानं, भावनाप्रधानं, अनुरक्षणा-प्रधानं । कतमञ्चावुसो, संवरप्रधानं ? इधावुसो, भिक्षु चक्षुणा रूपं दिस्वा न निमित्तगगाही होति नानुव्यञ्जनगगाही । यत्त्वाधिकरणमेतं ।—दीघ० ३।१० ।

८७. संयुक्तिकाय ४५।५ तथा इतिवृत्थक ३।४८ ।

संकाय पत्रिका-२

विराग तथा निरोध के लिए है। आगे कहा है कि उन भगवान् (बुद्ध) ने संवर के लिए, प्रहाण के लिए यथार्थ ब्रह्मचर्य वास की देशना उन लोगों को की है जो निर्वाण में डुबकी लगाना चाहते हैं। यह वह मार्ग है जिसका महान् महर्षियों ने अनुकरण किया है, जो बुद्ध की देशनानुसार इस मार्ग पर चलते हैं, शास्ता के अनुशासन में रहने वाले लोग दुःख का अन्त कर डालते हैं।^{८८}

धम्मपद में कहा गया है कि नेत्र का संवर श्रेयस्कर है, श्रोत का संवर श्रेयस्कर है, घ्राण, जिह्वा, शरीर, वाणी, मन तथा सर्वेन्द्रियों का संवर श्रेयस्कर है। सर्वत्र संयम किया भिक्षु सर्व दुःखों से मुक्त होता है।^{८९} आगे कहा है कि प्रज्ञावान् भिक्षु का उपक्रम इस प्रकार का होता है—इन्द्रियनिग्रह, सन्तोष, प्रातिमोक्ष के संवर से संवृत होना तथा कल्याणकारी पवित्र आजीविका वाले अतन्द्रित मित्रों की संगति, एवं आतिथ्यशील तथा सदाचारी बने रहना। हे भिक्षो ! इसी तरह प्रमोद से ओत-प्रोत होकर दुःख का अन्त पाओगे।^{९०}

एक अन्य प्रसंग में कहा गया है कि पर निन्दा न करना, परघात न करना प्रातिमोक्ष के संवर से संवृत रहना, परिमित भोजन करना, एकान्तसेवन, और अधिचित्त—चित्त का योग में लगाना—का अभ्यास करना, यही बौद्धों का शासन है।^{९१}

शौरसेनी, अर्धमागधी प्राकृत, पालि तथा संस्कृत साहित्य के आधार पर किये गये संवर शब्द के उपर्युक्त विश्लेषण से निम्नांकित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं—

संवर शब्द सामान्य रूप से निग्रह या रक्षा करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसकी व्याख्या करते समय जैन और बौद्ध दोनों परम्पराओं ने आध्यात्मिक तथा दार्शनिक दोनों दृष्टियों से विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है। आत्मवादी होने

८८. नयिदं भिक्खवे, ब्रह्मचरियं वुस्सति जनकुहनत्थं, न जनलपनत्थं, न लाभ-सक्कारसिलोकानिसंस्थं, न इति वादप्पमोक्खानि संस्थं, न 'इति मं जनो जानातू' ति। अथ खो इदं, भिक्खवे, ब्रह्मचरियं वुस्सति संवरत्थं पहानत्थं विरागत्थं निरोधत्थं ति। —अंगुत्तरनिकाय २।४।३, इतिवु० २।८।

८९. धम्मपद, १२।१, २।

९०. वही।

९१. अनुपवादो अनुपघातो पातिमोक्खे च संवरो।

मत्तञ्जता च भत्तस्मि पन्तञ्ज सयनासनं।

अधिचित्ते च आयोगो एतं बुद्धान' सासनं। —धम्मपद १४।३।

के कारण जैनपरम्परा में आध्यात्मिक विश्लेषण को पर्याप्त अवकाश मिला, इसलिए प्राकृत आगमों तथा संस्कृत ग्रन्थों में संवर का आध्यात्मिक स्वरूप भी विस्तार के साथ विवेचित किया गया। अनात्मवादी होने के कारण बौद्ध साहित्य में संवर का विश्लेषण प्रायः आचारपरक ही हुआ। अभिधर्म के अन्तर्गत उसकी दार्शनिक व्याख्या करने का भी प्रयत्न किया गया है।

संवर का आध्यात्मिक विश्लेषण करते हुए जैन परम्परा में इसे आत्मा के उन सात्त्विक परिणामों से सम्बद्ध किया गया है, जिनसे नवीन कर्मों का आना और आत्मा के साथ सम्बद्ध होना रुक जाता है। इससे मोक्ष या निर्वाण की ओर उन्मुख साधक के आध्यात्मिक विकास की आधारशिला निर्मित हो जाती है। संवर की स्थिति में वह ध्यान की भूमिका को प्राप्त करके पूर्वसंचित कर्मों से मुक्त होने की प्रक्रिया प्रारम्भ कर देता है। यह प्रक्रिया उसके आध्यात्मिक सोपानों के आधार पर तीव्रतर और तीव्रतम होती जाती है, जिससे वह जिन या अर्हत् की स्थिति को प्राप्त करता है। आध्यात्मिक विकास की यह प्रक्रिया जिस प्रकार चलती है, उसका विशेष विवेचन ध्यान और योग से सम्बन्धित ग्रन्थों में प्राप्त होता है। प्राकृतागमों में संवर को सात तत्त्वों या नौ पदार्थों के अन्तर्गत गिनाकर और बन्ध के बाद उसकी गणना करके इस दार्शनिक व्याख्या का आधार निर्मित किया गया है। शौरसेनी आगम इसी आधार पर आत्मा के परिणामों की दृष्टि से संवर की व्याख्या करते हैं। कुन्दकुन्दादि आचार्यों ने यहाँ तक लिखा है कि शुभ अशुभ दोनों प्रकार के परिणामों का रुकना आवश्यक है, क्योंकि जिस प्रकार अशुभ परिणाम पापास्रव के कारण होते हैं उसी प्रकार शुभ परिणाम पुण्यास्रव के कारण होते हैं। आध्यात्मिक विकास के लिए अन्ततः इन दोनों ही प्रकार के परिणामों का रुकना आवश्यक है मात्र आत्मा के विशुद्ध परिणाम ही पुण्य और पाप दोनों के संवर के कारण होते हैं। यही मोक्ष या निर्वाण के लिए कार्यकारण है। संवर के इस आध्यात्मिक स्वरूप को भावसंवर के नाम से कहा गया है। संवर के आध्यात्मिक विश्लेषण के सन्दर्भ में जो पारिभाषिक शब्दावली विकसित हुई उसके अन्तर्गत अशुभ आस्रव के कारण मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग तथा रागद्वेष और मोह को लिया गया है। सम्प्रक्त्व या सम्प्रगदर्शन, सम्यग्ज्ञान, गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय, तथा चारित्र शुभास्रव के कारण बताये गये हैं। इनको शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के संवर में भी कारण कहा गया है। इस शब्दावली की विस्तार से मीमांसा की गई है। शुभास्रव के कारणों का विवेचन आचारशास्त्रीय सन्दर्भों में विशेष रूप से किया गया है।

संकाय पत्रिका-२

शुभास्रव के कारणों के अन्तर्गत जिस शब्दावली का विवेचन किया गया है उसे अशुभ आस्रव के संवर के रूप में विवेचित किया गया है। गुप्ति, समिति, परीषहजय तथा बाह्यचरित्र का जितना सम्बन्ध आत्मा के परिणामों से है उतना ही इन्द्रिय, मन, तथा शरीर से है। इसी आधार पर उनका आचारशास्त्रीय विवेचन किया गया। मन, वचन, और काय की प्रवृत्ति का नियमन गुप्ति के अन्तर्गत आता है। समितियाँ शरीर की प्रवृत्तियों के नियमन के लिए विवेचित की गई हैं। परीषहजय तथा बाह्यचरित्र का सम्बन्ध भी मुख्य रूप से शारीरिक प्रवृत्तियों से है। शरीर के अन्तर्गत ही पंचेन्द्रियों का संवर बताया गया है। आचार शास्त्र की यह पारिभाषिक शब्दावली गृहस्थ और साधु के लिए अलग-अलग सोपानों का भी निर्धारण करती है। इसी के आधार पर गृहस्थ और साधु की आचारसंहिता का निर्माण हुआ है, जिसे श्रावकाचार तथा श्रमणाचार कहा गया है।

इस प्रकार जैन परम्परा में संवर का आध्यात्मिक और आचारशास्त्रीय विवेचन करके उसे श्रावक और साधु दोनों के जीवन से जोड़ा गया है।

बौद्ध परम्परा में शील के अन्तर्गत संवर की व्याख्या की गई है। अभिधर्म के अन्तर्गत जो चार प्रकार के शील गिनाये गये हैं, उनमें एक संवरशील है। इससे ज्ञात होता है कि आध्यात्मिक दृष्टि से भी संवर को परिभाषित करने का प्रयत्न किया गया है। संवरशील के पाँच भेदों से उसके स्वरूप पर विशेष प्रकाश पड़ता है। चूँकि बौद्ध परम्परा अनात्मवादी है, इसलिए इन्द्रिय, मन, और शरीर की विभिन्न प्रवृत्तियों के नियमन को संवर के अन्तर्गत विवेचित किया गया है। कायिक अव्यतिक्रम तथा वाचसिक अव्यतिक्रम जैनपरम्परा के आस्रव की परिभाषा की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं।

प्रातिमोक्षसंवर के द्वारा भिक्षु कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य रूप शिक्षा को प्राप्त करके तदनुसार आचरण में प्रवृत्त होता है। तब वह स्मृतिसंवर के द्वारा इन्द्रिय तथा मन की प्रवृत्तियों को संवृत करने लगता है। दुःखों के मूल स्रोत तृष्णा और उसके कारणों का ज्ञान प्रज्ञा से होता है और तब भिक्षु ज्ञानसंवर के द्वारा तृष्णा के कारणों का संवरण करने लगता है। क्षान्तिसंवर के अन्तर्गत शरीर को होने वाले विभिन्न प्रकार के कष्टों को सहन करने का वर्णन किया गया है, यह विवरण जैन परम्परा के परीषहजय से अत्यधिक साम्य रखता है। जिस प्रकार जैन परम्परा में विभिन्न प्रकार के अनुताप तथा उतौड़न सहन करने के लिए परीषहजय का विवेचन किया गया है उसी प्रकार बौद्ध परम्परा में शरीर को होने वाले आन्तरिक

या बाह्य कष्टों को सहन करने की प्रवृत्ति को धान्ति-संवर कहा गया है। वीर्य संवर के अन्तर्गत कामवितर्क-जन्य संकल्प-विकल्पों के नियमन का विवेचन किया गया है। इस प्रकार पाँच प्रकार के संवर के द्वारा दुःख के मूलभूत कारणों को रोकने में सफल भिक्षु संवरशील के द्वारा निर्वाण की ओर उन्मुख होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि संवर के द्वारा भिक्षु चार आर्य-सत्यों को जानकर निर्वाण के अष्टांगिक मार्ग में प्रवृत्त होता है। भगवान् बुद्ध ने विभिन्न प्रसंगों में संवर का विस्तार से विवेचन किया है। इससे संवर के महत्त्व का ज्ञान होता है।

अर्थविकास की दृष्टि से उपर्युक्त विवेचन को देखने पर ज्ञात होता है कि जैन और बौद्ध परम्परा में संवर का जो अर्थ विकास हुआ, उसके लिए एक व्यापक शब्दावली निर्मित हो गई, जिसके आधार पर संवर को विभिन्न रूपों में विश्लेषित किया गया।

इसप्रकार संवर अपने सामान्य अर्थ से आगे बढ़कर एक विराट अर्थ का बोधक पारिभाषिक शब्द बन गया, जिसे समझने के लिए विभिन्न परम्पराओं के भारतीय वाङ्मय का अनुशीलन करना अपेक्षित हो जाता है। बिना इसके संवर के वास्तविक रहस्य को नहीं समझा जा सकता।

— — — —

सीमा-विवाद-विनिच्छया-कथा

डॉ. ब्रह्मदेवनारायण शर्मा
प्राध्यापक, पालि एवं थेरवाद विभाग
श्रमणविद्या संकाय
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

परिचय

१८८७ में जे० पी० मिनायेफ J. P. MINAYEFF ने 'सीमा-विवाद-विनि-
च्छया-कथा' का सम्पादन किया था तथा रोमन लिपि में उसका प्रकाशन पालि टेक्स्ट
सोसायटी की पत्रिका में हुआ था। श्री विनायेफ ने यह सम्पादन अपने श्रीलंका
प्रवास काल में प्रसिद्ध विद्वान् भदन्त सुभूति उन्नान्से से प्राप्त सिंहली लिपि में कागज पर
लिखित एक मात्र प्रति से किया था। उनका अनुमान है कि संभवतया यह वही लघु-
कृति है जिसका उल्लेख भदन्त धम्मालङ्कार थेर द्वारा अपनी महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'सीमा-नय-
दप्पण' के प्राक्कथन में किया गया है। इस कृति में बौद्धविनय के नव इतिहास विषयक
कतिपय ऐसे तथ्य उपलब्ध हैं जो पालि साहित्य के अध्येताओं के लिए रोचक सिद्ध होंगे।
श्री मिनायेफ ने जो सूचना दी है वह इस प्रकार है—

"The present edition is made from a single Sinhalese MS. on
paper, received by me from Subhūti Unnānse some years ago, during my
stay in Ceylon. I take this opportunity of thanking the well-known
learned priest for much valuable assistance.

The little treatise is probably the one referred to by Rev. Dammā-
laṅkāra Thera in the preface (p. xx) to his valuable Sīmā-Naya
Dappana. It contains some facts in the modern history of the Buddhist
Church which no doubt, will be of interest to the student of Pāli
literature."

देवनागरी लिपि में इस प्रस्तुत संस्करण का आधार उक्त रोमन संस्करण है,
जिसके लिए सम्पादक एवं प्रकाशकों के प्रति आभार व्यक्त करना मेरा पुनीत कर्तव्य है।

'सीमा-विवाद-विनिच्छया-कथा' के प्रारम्भ तथा अन्त में इसके रचयिता का
स्पष्ट उल्लेख है। अन्त में निम्नप्रकार उल्लेख है—

"इति जेय्यधम्मभिमुनिवरजानकित्तिसिरिधजधम्मसेनापतिमहाथेरेन रचिता सीमा-
विवादविनिच्छयाकथा ।"

संकाय पत्रिका-२

अन्त में दी गयी ग्रन्थ प्रशस्ति में इसके रचना काल का भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है ।

ग्रन्थ में अट्टकथा की कई टीकाओं का उल्लेख प्राप्त होता है । सिंहलद्वीप निवासी भिक्षुओं के लिए सीमाविवादविनिश्चय का स्पष्ट तथा रोचक वर्णन इस लघुकृति में किया गया है ।

उपर्युक्त तथ्यों से इस कृति का महत्त्व प्रमाणित होता है । आशा है प्रस्तुत देवनागरी संस्करण पालि साहित्य के अध्येताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगा । कालान्तर में इसका स्वतन्त्र रूप से सुसम्पादित संस्करण प्रकाशित होना अपेक्षित है, जिसमें ग्रन्थ और ग्रन्थकार के साथ ही इसकी विषयवस्तु पर भी विस्तार से विचार किया जाये ।

— ब्रह्मदेव नारायण शर्मा

सीमा-विवाद-विनिच्छया-कथा

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ।

दीपाधिदीपसंजातं नानागुणेहि' लंकतं
नानविमतिच्छेदकं बुद्धं वन्दामि सो अहं ।
ततियतकारविपुला ।

सीहलदीपभिवखूनं कङ्खाठानस्स कम्मके
उदकुक्खेपगामस्स करिस्सामि विनिच्छयं ।
पथयावत्त गाथा ।

अयमेत्थ योजना ।

दीपानं उत्तमभावेन अनिदीपभूते जम्बुदीपे महामायाय गम्भे पटिसंधिभावेन संजातं बुद्धभावं पत्वा अनावरणत्रानादिनानागुणेहि अलंकतं नानासमणब्राह्मणानं कङ्खाविमतिच्छेदकं सब्बधम्मजाननसमत्थं सम्मासम्बुद्धं । ज्ञेय्यधम्मालंकारमहाधम्मराजाधिराजगुरु'ति आदितो लद्धलञ्चितो । दुतियं । ज्ञेय्यधम्माभिवंससिरिपवरा-लंकारधम्मसेनापतिमहाधम्मराजाधिराजगुरु'ति लद्धलञ्चितो । ततियं । इदानि महाराजस्स काले ज्ञेय्यधम्माभिमुनिवरत्रानकित्तिसिरिधजधम्मसेनापतिमहाधम्मराजा-धिराजगुरु'ति लद्धलञ्चितो सो अहं तीहि द्वारेहि वन्दामि ।

अयं पठमगाथाय योजना ॥

सीहलदीपे वसन्तानं लज्जिपेसलसिक्खाकामानं कुक्कुच्चकानं भिवखूनं उपोसथ-उपसम्पदादिकम्मिके सीमाधिकारे विमति-आसङ्खाठानभूताय उदकुक्खेप-सीमाय च गामसीमाय च अम्मिस्सं कत्वा सुविनिच्छयं अहं करिस्सामि ।

अयं दुतियगाथाय योजना ॥

सम्मासम्बुद्धस्स परिनिब्बानतो संवच्छरणेनेन चतुच्चत्ताळिसाधिकं तिसत्त-द्विसहस्सं सम्पत्ते अम्हाकं जम्बुदीपगणनाय एकपञ्चासाधिकं सत्त-उत्तरं सहस्सं सम्पत्ते सिरिपवरविजयानन्तयस त्रिभवनादित्याधिपतिपण्डितमहाधम्मराजाधिराजा'ति नामको महाराजा रज्जं कारेसि । तस्मिं काले त्रानाभिवंसधम्मसेनापतिमहाधम्म-राजाधिराजगुरु'ति लद्धलञ्चितो थेरो सासनं सोधेसि सङ्घराजा अहोसि । तस्मिं

संकाय पत्रिका-२

काले तुम्हाकं सीहलदीपतो लज्जिकुकुकुच्चका सिक्खाकामा भिक्खू अम्हाकं जम्बुदीपं अमरपुरमहाराजधानि आगन्त्वा सासनसोधकस्स थेरस्स सन्तिके विनयादिपिटकं उग्ग-हेत्वा तुम्हाकं सीहलदीपे नट्ठगन्धे गहेत्वा सीहलदीपं पच्चागता ततो पट्टाय अम्हाकं आचरिया महाथेरा सीहलदीपे सासनस्स पवत्तिकारणं पुच्छित्वा च सोतं ओदहित्वा च निसीदिं(सु) । ततो पच्छा अट्टुचत्ताळीसवस्सं अतिक्कमित्वा तस्स रञ्जो नत्ता सिरिपवरादित्यलोकाधिपतिविजयमहाधम्मराजाधिराजा'ति नामको धम्मराजा रज्जं कारेसि । तस्मिं काले च अहं सासनसोधको सङ्घराजा अहोसिं । तस्मिं काले च तुम्हाकं सीहलदीपतो पञ्जातिस्सपमुखा द्वे भिक्खू आगता । तस्स पञ्जातिस्सथेरस्स आगतकाले सीहलदीपे सासनस्स उप्पत्तिकारणं सुत्वा पमोदिं । इदानि पि सीहल-दीपवासी धम्मक्खन्धभिक्खु वनरतनभिक्खू'ति द्वे भिक्खू सम्मासम्मबुद्धस्स परिनिब्बानतो संबच्छरणे चत्तारि सतानि च एकवस्सञ्च अधिकं कत्वा द्विसहस्सं संपत्ते । अम्हाकं वोहारगणनाय द्विसत्-एकूनवीसाधिकं साहस्सवस्ससम्पत्ते फग्गुणमास्सस जुण्हपवखे दसमदिवसे मम सन्तिकं आगता । ते भिक्खू सीहलदीपे सासनस्स पतिट्टित-भावञ्च लज्जिपेसलभिक्खूनं अत्थिभावञ्च मम आरोचेसुं । तं वचनं सुत्वा अतिरेकतरं अहं पमोदिं । ते धम्मक्खन्धवनरतनभिक्खू इदानि सीहलदीपे उदकुक्खेपगामसीमाय विवादो उपज्जी'ति मम आरोचेत्वा सीमाधिकारे विनिच्छयं कत्वा देथा'ति आरो-चेन्ति । तं पि वचनं सुत्वा पुब्बकालतो अनिरेकतरं पमोदिं पटिलभिम्ह । तुम्हाकं विवादकरणट्टानं विनयअट्टकथाटीकाहि उद्धरित्वा दस्सामि । तं वचनं साधुकं कत्वा धारेय्याथ च वाचेय्याथ च सत्तलक्खेय्याथ च मनसिकरेय्याथ चा'ति ।

इदानि अट्टकथानयेन सहप्पबन्धे ठपित्ते अत्थो दुब्बिजानो होति योजनानयेन सहप्पबन्धे ठपित्ते सुव्रिजानीयो होति । तस्मा योजनानयेन रचयिस्सामि ।

एसा च सीमा नाम सभागसीमा विसभागसीमा चा'ति दुविधा । तासु सीमासु बद्धसीमा गामसीमाय सद्धि सभागा । इतरा हि विसभागा । उदकुक्खेपसीमा नदिया च जातस्सरेन च समुद्देन च सद्धि सभागा इतराहि विसभागा । सत्तब्भन्तरसीमा अरञ्जनेन सद्धि सभागा इतरा हि विसभागा । तस्मा बद्धसीमा च गामसीमा च इमा सीमा अञ्जमञ्जं सभागा । उदकुक्खेप सीमा च नदी च उदकुक्खेपसीमा च जातस्सरो च उदकुक्खेपसीमा च समुद्दो च अञ्जमञ्जं सभागा । सत्तब्भन्तरसीमा च अरञ्जञ्च अञ्जमञ्जं सभागा ।

तासु सभागसीमासु ख्वल्लतारञ्जुसेतुकट्टादीहि सम्बन्धे सति दोसो नत्थि । यथा किं । दीघस्स पब्बतस्स एकदेसं परिच्छिन्दित्वा बद्धसीमं बन्धेन्ते पि दोसो

संकाय पत्रिका-२

नत्थीति । तेन वृत्तं विमतिविनोदनीटीकायं :—एकसंबद्धेन गतं'ति रुक्खलतादिं तत्र जातमेव सन्धाय वृत्तं । तादिसं हि इतो गतंति वृत्तब्बतं अरहति यं पन इतो गतंति वा ततो आगतंति वा वत्तुं असक्कुण्यय उभोसु बद्धसीमागामसीमासु उदकुक्खेप-नदी-आदीसु च तिरियं पतितरज्जुदण्डादिं तत्थ किं कातब्बं ति एत्थ पन बद्धसीमाय पतिट्टितभागो बद्धसीमा अबद्धगामसीमाय पतिट्टितभागो गामसीमा । तदुभयसीमट्ट-पब्बतादि विय । बद्धसीमातो उट्टितवटरुक्खस्स पारोहे गामसीमाय गामसीमातो उट्टितवटरुक्खस्सपारोहे च बद्धसीमाय पतिट्टिते पि एस नयो'ति ।

विसभागसीमासु पन एवं दट्टुब्बो । बद्धसीमा अञ्जाय बद्धसीमाय च गामसीमं ठपेत्वा इतराय सीमाय च विसभागा । उदकुक्खेपपीमा अञ्जाय उदकुक्खेपसीमाय च नदीजातस्सरसमुद्दं ठपेत्वा इतराय सीमाय च विसभागा इमासु विसभागसीमासु रुक्खलतारज्जुसेतुकट्टादीहि सम्बन्धे सति दोसो अत्थि । तेन वृत्तं उपोसथक्खन्धकट्ट-कथायं :—सीमामालके वटरुक्खो होति तस्स साखा वा ततो निग्गतपारोहो वा महा-सीमाय पथवीतलं वा तत्थ जातरुक्खादीनि वा आहच्च तिट्ठन्ति । महासीमं सोधेत्वा वा कम्मं कातब्बं । ते वा साखा पारोहे छिन्दित्वा बहिट्ठका कातब्बा । अनाहच्च ठितसाखादीसु आरुळ्ळिभिवखू हत्थपासं नेतब्बा ।

एवं महासीमाय जातरुक्खस्स साखा वा पारोहो वा वृत्तनयेने'व सीमामालके-पतिट्ठा'ति वृत्तनयेनेव सीमं सोधेत्वा कम्मं कातब्बं । ते वा साखा पारोहा छिन्दित-तब्बा । बहिट्ठका कातब्बा । सचे मालके कम्मे कयिरमाने कोचि भिवखु मालकस्स अन्तो पदिसित्वा वेहासं ठितसाखाय निसीदति । पादा वा'स्स भूमिगता होन्ति । निवासनपारूपनं वा भूमिं फुसति । कम्मं कातुं न वट्टति पादे पन निवासनपारूपनञ्च उक्खिपापेत्वा कातुं वट्टति ।

इदं च लक्खणं पुरिमनयेनेव वेदितब्बं । अयं पन विसेसो । तत्र उक्खिपापेत्वा कातुं न वट्टति हत्थपासमेव आनेतब्बो'ति ।

एवं बद्धसीमाय च महासीमाय च अञ्जमञ्जं विसभागत्ता रुक्खलतादीहि सम्बन्धे सति दोसो अत्थि । रुक्खलतादिच्छेदनं अक्त्वा सीमाविसोधनं वा अक्त्वा च कम्मं करोन्तानं भिवखूतं कम्मं कुप्पतीति दट्ठब्बं ।

इमं अट्ठकथावचनं गहेत्वा अञ्जासु गामसीमा उदकुक्खेपादिविसभागसीमासु पि एसेव नयो दट्ठुब्बो । कस्मा विसभागभावेन सदिसत्ता । तेन वृत्तं विमतिविनोदनी टीकायं :—

यासु अञ्जमञ्जरुखादिसम्बन्धेषु पि दोसो नत्थि । यासु पन अत्थि तासु विसभागसीमासु रुक्खादिसम्बन्धेषु सति एकत्थ ठितो इतरट्ठानं कम्मं कोपेति ।

एवं अट्ठकथाय सामञ्जतो सोधनस्स वुत्तत्ता'ति । अम्हाकं खन्ती वीमंसित्वा गहेतब्बं । एत्थ टीकायं यासु'ति बद्धसीमागामसीमादिसभागसीमासु'ति अत्थो— दट्ठब्बो । इतरस्स यासु'ति पदस्स खण्ठसीमामहासीमागामसीमा-उदकुक्खेपसीमादिसभागसीमासु'ति अत्थो दट्ठब्बो । इमस्मिं पन काले कस्मिञ्चि पदेसे केचि भिक्खू नदीजातस्सरेसु कम्मिकभिक्खूनं वसनत्थाय अट्ठं करोन्ति । तं अट्ठं गमनत्थाय गामक्खेत्तेन सम्बन्धं कट्ठमयवेळुमयसेतुं करोन्ति । सो सेतु तस्स अट्ठस्स समन्ता उदकुक्खेपारहट्ठानस्स अब्भन्तरं पविसित्वा अट्ठं अनाहच्च तिट्ठति । तादिसे अट्ठे निसीदित्वा ते भिक्खू कम्मं करोन्ति केचि पन भिक्खू गामक्खेत्तेन सम्बन्धस्स उलुम्पस्स वा नावाय वा समीपे उदकुक्खेपारहट्ठानस्स अप्पहोनके ठाने अरित्तेन नावं ठपेत्वा नावारयं ठत्वा कम्मं करोन्ति । तेसं भिक्खूनं कम्मं कुप्पति । कस्मा ? कट्ठमयवेळुमयसेतुञ्च उलुम्पनावनञ्च रुक्खसाखालतारज्जुपारोहेहि सदस्सत्ता । केचि पन सो कट्ठमयवेळुमयसेतु कुन्दीतीरसदिसा'ति वदन्ति । तं न गहेतब्बं । सचे पन नदियं कतस्स उपोसथागारसङ्घातस्स अट्ठस्स समन्ततो उदकुक्खेपारहस्स ठानस्स अब्भन्तरं पवेसेत्वा इट्ठकामयमत्तिकामयसेतुं करोन्ति । सचे वस्सम्हि चतूसु मासेसु नदीसोत्तेन अञ्जोत्थरति । सो येव सेतु कुन्दीतीरसदिसो । तस्स सेतुनो समीपे चतुरङ्गुलपमाणट्ठाने वा विदत्थिरतनपमाणट्ठाने वा कम्मं कातुं वट्ठति । सचे पन केचि कट्ठमयवेळुमयसेतु कुन्दीतीरसदिसा'ति वदन्ति । एवं सन्ते अथ सेतुपादा अन्तोसेतुपन उभिन्नम्पि तीरानं उपरि आकासे ठितो वट्ठतीति । इदं वचनं अट्ठकथायं न वत्तब्बं सिया । अट्ठकथायं पन वुत्तमेव । इमिना अट्ठकथावचनेन सेतुरज्जुवल्लिरुक्खपारोहानं सदिसत्तं दीपेतीति दट्ठब्बं । उदकुक्खेपेन पन परिच्छिन्नट्ठानस्स बहिनदियं सेतु-आदिसम्बन्धानं अप्पमाणं तस्मा दोसो नत्थि । उदकुक्खेपपरिच्छिन्नस्स ठानस्स अब्भन्तरं सेतुरुक्खादीनं पविसनं एव पमाणं दोसो अत्थि । कस्मा सेतु-आदीनं पारोहादीहि सदिसत्ता च गामसीमाय विसभागसीमत्ता चा'ति । तेन वुत्तं वजिरबुद्धिटीकायं । अयं पन एत्थ विसो । नदियं करोन्तानं उदकुक्खेपतो बहिरुक्खादिसम्बन्धो अप्पमाणं । गामे करोन्तानं नदियं सम्बन्धरुक्खस्स उदकुक्खेपतो बहिठितभिक्खू च अप्पमाणं ततो ओरं पमाणं । बद्धसीमाय सम्बन्धरुक्खस्स बद्धसीमाय ठितभिक्खू पमाणं'ति वेदितब्बं । तेनेव वुत्तं—महासीमं सोधेत्वा'व कम्मं कातब्बं'ति । सेतु वा सेतुपादा वा बहितीरे पतिट्ठिता कम्मं कातुं न वट्ठती'ति

संकाय पत्रिका-२

वचनम्पि पारोहादीसु पि सकलसीमासोधनमेव कातब्बंति साधेतीति वीमंसितब्बंति । सब्बामु पन सीमासु सीमन्तरेण परिच्छिन्नट्ठानस्स अब्भन्तरट्ठानमेव सीमा नाम । भिक्खून् निसीदनट्ठाने एव न सीमा । तस्मा सब्बामु सीमासु परिच्छिन्दितब्बट्ठानेसु रुक्खलतादीन् सम्बन्धभावो'व दोसो'ति दट्ठब्बो । बहिनदीतीरे जातरुक्खस्स अन्तोणदियं पतिट्ठितसाखाय वा पारोहे वा नावं बन्धित्वा कम्मं कातुं न वट्ठीति उपोसथक्खन्धक अट्ठकथायं आगतवचनेण पि साखाय वा पारोहे वा नावं अबन्धित्वा उदकुक्खेपपरिच्छनस्स बहिट्ठाने कम्मं कातुं वट्ठीति अधिप्पायो'पि दट्ठब्बो ।

साखाय पारोहस्स वा समीपे उदकुक्खेपस्स अप्पहोणकट्ठाने उदकुक्खेपस्स अब्भन्तरे नावं बन्धित्वा कम्मं कातुं वट्ठीति अधिप्पायो न दट्ठब्बो । अन्तो नदियं येव सेतु वा सेतुपादा वा सेतुम्हि ठितेहि कम्मं कातुं वट्ठीति । सचे पण सेतु वा सेतुपादा वा बहितीरे पतिट्ठिता कम्मं कातुं न वट्ठीति एतिस्स उपोसथक्खन्धक अट्ठकथाय पि । सचे पण सेतु वा सेतुपादा वा बहितीरे ठिता सेतुम्हि अट्ठिते हि सेतुतो उदकुक्खेपट्ठानमुच्चनट्ठाने कम्मं कातुं वट्ठीति अधिप्पायो दट्ठब्बो । सेतुम्हि अट्ठिते हि सेतुसमीपे उदकुक्खेपस्स अप्पहोणकट्ठाने कम्मं कातुं वट्ठीति अधिप्पायो न दट्ठब्बो'ति । तेण वुत्तं सारत्थदीपनीटीकायं । गण्ठपदेसु पण महासीमागतेहि भिक्खूहि तं साखं वा पारोहं वा अनमसित्वा थातब्बंति अधिप्पायो'ति वुत्तं । तं न गहेतब्बंति । इमिणा टीकावचनेण गामसीमा उदकुक्खेपसीमादीसु'पि सभागसीमासु पि इमिणा'व नयेण अत्थो दट्ठब्बो ति दीपेति । तस्मा इमस्मि काले सिक्खाकामेहि कुक्कुच्चकेहि लज्जिपेसलभिक्खूहि उदकुक्खेपण परिच्छिन्नस्स अब्भन्तरं पविसनसेतुरुक्खलतादीनि अपनेत्वा'व कम्मं कातब्बंति ।

अयं उदकुक्खेपगामसीमाधिकारे विवादविनिच्छयकथा । अयं पण एत्थ तुम्हेहि सीहलदीपवासीहि अनुमोदितब्बकथा ।

तुम्हेहि पण पेसितानं धम्मक्खन्धवनरतन भिक्खून् अम्हाकं रतनपुण्णनामकं महाराजधानि सम्पत्तकाले तुम्हाकं सीहलदीपवासीनं थेरानं संदेसकथञ्च धम्मक्खन्धवनरतनभिक्खून् समानाकारञ्च सुत्वा, अम्हाकं सिरिपवरविजयानन्तयसपण्डितमहाधम्मराजाधिराजा' ति विस्सुतो महाराजा अतिपमोदित्वा सम्पत्तकालतो पट्टाय इच्छितेहि समणकप्पियपच्चयेहि निच्चं पच्चुपट्ठाति । स ब्रह्माचारिणो पि पच्चुपट्ठेन्ति । अम्हाकं महाराजा रतनत्तये अतिमामको सद्धो हिरि-ओत्तप्पसम्पन्नो महापञ्जारट्ठावासीनं ओरसं' व अनुग्गहति । दानेण च चागेण च अतित्तो' व होति पठमवये ठित-

कालतो' व अट्टङ्ग उपोसथं निच्चं रक्खति । सप्पुरिसे संसेवति । सप्पुरिसानं सच्चपटिच्चसमुप्पादपटिसंयुत्तं गम्भीरकथं कालेन कालं सुणाति । अपरभागे सिरिपव-
रादित्यलोकाधिपतिविजयमहाधम्मराजाधिराजा' ति पाकटस्स पितुनो धम्मराजस्स
दायज्जं पटिग्गहेत्वा रज्जभावं सम्पत्तकाले पि सिविराजानिमिराजादयो विय निच्च-
सीलो व होति । लज्जिपेसलेहि सिक्खाकामेहि भिक्खूहि च भावनाभिरतगहट्टुपब्बजि-
तेहि च धम्मकथं संसन्दित्वा कालं खेपेति राजधम्मे पतिट्ठाति । राजाभिसेकपत्तो'
नागरिके चतूहि सङ्गहवत्थूहि अनुग्गहं करोति । यथिच्छकं दानं देति निच्चकालं
चागं करोति । अम्हाकं राजा रतनपुण्णनामकं नवपुरं मापेसि ।

अयं तस्स नवपुरस्स अट्टुप्पत्ति ।

सम्मासम्बुद्धो किर इमस्स नवपुरस्स गापितट्टानञ्च राजानञ्च व्याकासि । भगवा
हि पठमबोधियं ठितकाले द्विन्नं वाणिज्जकानं चुल्लपुण्णमहापुण्णानं सुनापरन्तरट्टं
गन्तुं निमन्तनं सम्पटिच्छित्वा कूटागारलंकतेहि पञ्चपासादसतेहि आगन्त्वा रम्मदान-
दीतीरे (sic. na. ?) च सच्चबन्धपब्बते च द्वे पादंचेतियानि ठपेत्वा अनुक्कमेन
देसचारिकं चरित्वा एरावतिन्नाम नदिं तरित्वा मण्डलपब्बतं अनुप्पत्तो । इमस्मि
पब्बते आनन्द अहं पुब्बे अतीतजातियं वनचरको च गोधराजा च वट्टराजा च
कुहङ्गराजा च अजराजा च अहोसि' ति अवोच । एतस्मि पब्बते अधिवत्था चन्दमुखी
नामिका एका यक्खिनी अत्थि सा यक्खिनी भगवन्तं अतिपसीदित्वा अत्तनो मंसदायिका
सुप्पिया विय दुक्करं सक्रमंसं भगवतो अदासि । तस्मि काले भगवता आनन्दत्थेरं
आमन्तेत्वा अयं आनन्द यक्खिनी मम परिनिब्बानतो चतुसत्थिकं द्विसहस्सवस्सं
अनिक्कमित्वा मण्डलपब्बतस्स समीपे रतनपुण्णनामकं महाराजधानि मापेस्सति ।
तस्मि नगरे धम्मराजा भविस्सति सो राजा मम सासनं अनुग्गहिस्सती, ति व्याकासि ।
इदिसं पोरानसत्थं अनुगन्त्वा इमं रतनपुण्णनामकं महाराजधानि मापेसि ।

अम्हाकं महाराजा तुम्हेहि सीहलदीपवासीहि पेसिते धम्मवखन्धवनरतनभिक्खू
इमस्स नवपुरस्स पुरत्थिमस्मि दिसाभागे मण्डलपब्बतस्स दक्खिनस्मि दिसाभागे मम
सङ्घराजस्स महा आरामे ठपेत्वा तिभूमिकं विहारं कारेत्वा अदासि ।

तुम्हेहि पन पेसितानं धम्मवखन्धवनरतनभिक्खूनं मम सन्तिकं सम्पत्तकालतो
पट्ठाय अम्हाकं जम्बुदीपं आगतकारणं अहं पुच्छामि ।

तस्मि काले ते भिक्खू आगतकारणं मम आरोचेन्ति ।

सकाय पत्रिका-२

अम्हाकं सीहलदीपे अमरपुरगगे भिक्खू गामसीमाउदकुक्खेपसीमानं सम्बन्धे सति संकरदोसो अत्थीति वा नत्थी'ति वा विवादं करोन्ति । तेसं भिक्खूनं विवादं कोचि न सक्का विनिच्छित्तुं तस्मा अम्हे पन काये च जीविते च अनपेक्खित्वा सीमाविवादट्ठाने विनिच्छयं लभिस्सामा'ति मनसि कत्वा आगतम्हा ति अहं पन ते भिक्खू मा सोचित्थ -- विनयट्ठकथाटीकानुरूपं सीमाविनिच्छयं लभापेस्सामीति वत्वा रतनपुण्णपुरस्स पुरत्थिमस्मिं दिसाभागे रञ्ज्रा कारिते मम आरामे निसीदापेत्वा सीमाविनिच्छयं कत्वा तं उग्गहापेत्वा कञ्ज्हाट्ठाने सयं विनोदापेत्वा तं सीमाविनिच्छयं तुम्हेहि पेसितानं भिक्खूनं अदासि ।

अथ खो ते भिक्खू दल्हीकम्मत्थाय पुन उपसम्पदकम्मवाचं इच्छाम अम्हे अनुकम्पं उपादाय उपसम्पदकम्मवाचं देथा'ति वत्वा मं उपसङ्कमित्वा याचिसु । अहञ्च खो साधु तुम्हाकं देमीति वत्वा रञ्ज्रो तं पवत्ति आरोचापेसि । सीहलदीपवासी भिक्खू अम्हाकं सन्तिके पुन सिक्खं गहेतुकामा तदा समणानुरूपेहि पत्तचीवरादिपच्चयेहि अनुग्गहं करोतू'ति । राजा अभिप्पमोदो साधू'ति सम्पटिच्छि । अथ खो अहं फग्गुणकालपक्खे पण्णरसमे उपोसथदिवसे पुन सिक्खं दातुकामो, नद्यावट्टननगरभोजकेन सत्थिमहाराजदस्सनीयरूपसीहसूरो'ति राजलद्धनामकेन महामत्तेन राजतो सन्तिके लद्धे विसुं गामसङ्घाते सीमब्भन्तरे रञ्ज्रा कारिते तिभूमिके मम विहारे सत्तपण्णासभिक्खू संनिपातापेसि !

अथ राजा तं महामत्तं पेसेसि । दीपन्तरभिक्खूनं उपसम्पदकम्मत्थाय सन्निपत्तितानं सत्तपण्णासभिक्खूनं पणीतानि भोजनानि देही ति । सो महामत्तो साधू ति सम्पटिच्छित्वा येन सन्निपत्तिता भिक्खू तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पणीतानि भोजनानि दत्वा सहत्था भोजेत्वा सम्पवारेत्वा सब्बं संविदहनकिच्चं अकासि । तदा राजपेसिता तदञ्ज्रे मणिपब्बतनगरभोजको सत्थिमहाराजदस्सनीयरूपकित्तिसूरो'ति राजलद्धनामको महामत्तो च । कुखनगरभोजको सत्थिमहाराजदस्सनीयरूपजेय्यसूरो'ति राजलद्धनामको महामत्तो च । दीघनावानगरभोजको महाराजजेय्यसूरो'ति राजलद्धनामको अन्तेपुर-अमच्चो च । मेघवीचिनगरभोजको महाराजदस्सनीयरूपजेय्यसूरो'ति राजलद्धनामको अन्तेपुर-अमच्चो च । महाराज कित्तिराजपाकटो'ति राजलद्धनामको राजमातुया-अमच्चो च । राजमहाराजसिखराजा'ति राजलद्धनामको अग्गमहादेविया अमच्चो च । महाराजदस्सनीयरूपसङ्घयो'ति राजलद्धनामको रजत-अमच्चो च । मुखुनगरभोजको राजदस्सनीयरूपसिर्जेय्यसूरो'ति राजलद्धनामको रञ्ज्रो तं तं कारणं आरोचन-अमच्चो च राजपाकटराजकित्तिराजा'ति राजलद्ध-

नामको अमच्चेः च महाजोतिको'ति राजलद्धनामको महासेट्ठी च महासिरिसेट्ठ-
मेण्डको'ति राजलद्धनामको महासेट्ठी चा'ति राजतोलद्धटानन्तरिका सकसकपरि-
सपरिवारा अमच्चा च मासे मासे अट्ठवखत्तुं अट्ठङ्ग-उपोसथस्स समादीयका सत-
परिमाणा सेतपावारपारुता उपासका च तं उपसम्पदकरणट्ठानं आगन्त्वा भिक्खूनं
हृत्थपासतो बहिं निसीदित्वा परिसत्थाय परिवारयिसु। अहञ्च सत्तपणासमत्तेहिं
भिक्खूहिं सद्धिं भिक्खूनं पतिरूपेसु कप्पियपच्चत्थरणेसु निसीदित्वा सीहलदीपवासि-
भिक्खूनं पुन सिक्खाय दातब्बत्ता उपसम्पदकम्मवाचं एव सावेत्वा सिक्खादानकिच्चं
किञ्चापि सिज्झति तथा पि ते सीहलदीपवासी भिक्खू तुम्हाकं भन्ते जम्बुदीपे उपसम्पद-
काले एवरूपं उपसम्पदकम्मं करिंसु'ति ।

न जानाम अम्हाकं तस्स कम्मस्स जाननत्थाय आदितो 'व कम्मवाचं वदथा'
ति याचन्ति । तस्मा पठमं उपज्झं गाहापेतब्बो' ति आदिकं एवमेतं धारयामी' ति
परियोसानसपुब्बकिच्चं कम्मवाचं सावेत्वा तेसं भिक्खूनं पुन सिक्खं दातुं आररिभि ।
तदा कारकसङ्घसंखातेहिं सत्तपणासभिक्खूहिं परिवारापेत्वा अहं सिथिलधनिता-
दीनि अहापेत्वा कथनसमत्थेन पुञ्जाभिधजधम्मालंकारमहाधम्मराजाधिराजा-
गुरुत्थेरेन च । ज्ञानकित्तियतिसारधम्ममहाधम्मराजाधिराजगुरुत्थेरेन च सद्धिं
पठमं कम्मवाचं सावेमि । ततो परं गणपामोक्खचन्दावरत्थेरो च पञ्जा-
सामिसिरिकविधजमहाधम्मराजाधिराजगुरुत्थेरो च नन्दत्थेरो च केलासभत्थेरो
च ततियं कम्मवाचं सावेन्ति । पठमकम्मवाचं पन सावितकाले अहं उपसम्पदापेक्खानं
भिक्खूनं नागनामा' ति सम्मन्नित्वा तेन नागनामेन सावेमि । सीहलदीपे उपज्झायस्स
धीरानन्दत्थेरेस्स तिस्सो नामाति संगनित्वा तेन तिस्सनामेन सावेमि । दुतिय ततिय-
कम्मवाचं पन सावितकाले गणपामोक्खचन्दावारादयो थेरा तेसं भिक्खूनं सकसक-
नामसंखातेन धम्मक्खन्धवतरतननामेन सावेमि । उपज्झायस्स सकसकनामसंखातेन
धीरानन्दनामेन सावेन्ति । कम्मवाचापरियोसाने कालो पन एवं दट्ठब्बो । सीहल-
वोहारेण एकूनासीतिसत्तसताधिकसहस्ससाके सम्पत्ते । मरम्मवोहारेण एकूनवीसाधि-क
द्विसत्तुत्तरं सहस्सं संवच्छरणेण सम्पत्ते । तीसु उत्तसु गिम्हनत उत्तुम्हिं मुख्यचन्देन
फग्गुणमासे कण्हपक्खे तेरसत्तिथियं तेतिलकरणे सिद्धियोगे सनिवारे ततियपहाराति-
वकन्ते सुञ्जदण्ड-एकादसपलपञ्चविपलसमये कक्कटे लभ्ने कुम्भचन्द्रे ठिते दुतियहोरे
मीनत्तरङ्गनवङ्गे पञ्चङ्गुलाधिकएकादसपादछायिकसमये मेसम्हिं सुराचरिये मिथुने

	गु	रा गु बु
क		
	कु	

रविसुते घते कुजे कुम्भे चन्द्रसुते ठिते मीने विविसुकरराहसु ठितेसु उपसम्पदा-कम्मवाचं निट्ठितं ति ।

तस्मिं पन उपसम्पदापरियोसाने अम्हाकं राजा सद्धासीलादिगुणेहि सम्पन्नो हुत्वा नानारूपविचित्रे महारजतमयथालके सुवण्णमयथालकेन दक्खिणोदकं सिञ्चापेत्वा देसचारित्तेन सुवण्णविचित्र-अट्टभेरियो च अञ्जञ्च तुरियं पहारापेत्वा तेसं दीपन्तर-भिक्खूनं समणसारूपं अनेकविधं परिक्खारं दापेसि । सेय्यथीदं—तिविधं सुखुमकप्पा-समयं सञ्जाटिं तथा उत्तरासङ्गं अन्तरवासकं । दुविधं कम्बलं तथा कोसेय्यकायबन्धनं, कोजवं, उत्तरत्थरणं, मुखपुञ्जनं, कम्बलमयविम्बोहनमण्डलं, दीघविम्बोहनं, चतुरस्स-पच्चत्थरणं, अयोमयपत्तं, मत्तिकामयपत्तं, अयोमयपत्तपिधानं, चित्तकम्ममयपत्तपिधानं, पत्ताधारकं, पत्तत्थविकं, धम्मकरकं, आचमनथालकं, खुरं, सूचिं, कप्पियचम्मखण्डं, तालवण्टं, तट्टिकं, कटसारकं, पोत्थकलेखनं । तम्बूलकरण्डकं, छब्बिधं लोहमयखुद्दककरण्डं, पूगपीलनं, उपाहनं, छत्तं, चित्तकम्ममहन्तपेलं तथा खुद्दकपेलं, महन्तं काचलिम्पितोदनथालकं तथा सोळसविधं थालकं, लोहमयसूपादानं, महन्तं उदकथालकं, खुद्दकं उदकथालकं, बहुपादसूपथालकाधारं, तिपादसूपथालकाधारं, तपिधानं, उदकथालकाधारं, चित्तकम्ममयहत्थधोवनाधारं तथा खेलमल्लकं' ति ।

ते च अमच्चा दीपन्तरभिक्खूनं उपसम्पदाकाले कत्तब्बाकारं सब्बं सल्लक्खेत्वा अन्तेपुरं गन्त्वा रञ्जो आरोच्चेसुं ।

तस्मिं काले राजा निब्बानपटिसंयुत्तं कुसलपीति पटिलभित्वा अभिप्पमोदो अहोसि । तुम्हेहि पेसितभिक्खू च जम्बुदीपे सञ्चाराजत्थेरादीनं महात्थेरानं पुन सिक्खादानं लभित्वा अत्तानं महाकुसलोदकेन सिञ्चिता हुत्वा अभिप्पमोदिंसु' ति ।

अयं अनुमोदितब्बकथा ।

अयं पनेत्थ मेत्तापुब्बञ्जमधम्मकथा चेव तुम्हेहि च याव जीवं अनुस्सरितब्ब-
कथा च ।

तुम्हे पन पुब्बकानं सप्पुरिसानं धम्मविनयग्रहकानं गतमगसंखाते चारित्ते
अनुगता'ति मयं मञ्जाम ।

पुब्बे किर पुनब्बसुकुटिम्बियपुत्तो तिस्सत्थेरो महासमुद्दस्स परतीरं गन्त्वा
बुद्धवचनं उग्गण्हाति । कङ्काठाने पि पुच्छति । तथा पि सम्मोहविनोदनी-अट्ठकथायं
अरहत्तपत्तिया पुनब्बसुकुटिम्बियपुत्तस्स तिस्सत्थेरस्स पटिसम्भदा विसदा अहेसुं । सो
किर तम्बपण्णिदीपे बुद्धवचनं उग्गण्णित्वा परतीरं गन्त्वा योनकधम्मरक्खितत्थेरस्स
सन्तिके बुद्धवचनं उग्गण्णित्वा आगच्छन्तो नावाभिरूहनतित्थे एकस्मि पदे उप्पन्न-
कङ्को योजनसतमग्गं निवत्तित्वा आचरियस्स सन्तिकं गच्छन्तो अन्तरामग्गे एकस्स
कुटिम्बिकस्स पण्हं कथेसीति आगता । पुब्बकानं सप्पुरिसानं कुलवंसे पवेणियं ठितेहि
तुम्हेहि सीहलदीपवासीहि मम आरोचित्ते सीमाविनिच्छये सीहलदीपं सम्पत्ते पस्सित्वा
अनुमोदितब्बा एव ।

इदानेव मयं सीहलदीपवासी भिक्खू बुद्धस्स अनुमतिया अविपरीतं यथाभूतं
सिक्खिस्सामा'ति ।

अम्हाकं वचनं सच्चं तुम्हाकं वचनं सच्चं'ति विवादो न कातब्बो । विवादो
हि महा आदीनवो । कलहे विवादे अभिरतो आधनागाही दुप्पटिनिस्सग्गी भिक्खु
भगवता सुभासितस्स अत्थस्स विजानने सम्मोहेन आवुतो निवुतो पटिच्छादितो
पेसलेहि भिक्खूहि यथाधम्मं अक्खातं पि न विजानाति । सम्मासम्बुद्धेन देसितं
धम्मविनयं पि न विजानाति । भावित्तानं भावित्तमग्गकिच्चपरिनिट्ठिते खीणासवे
च अरियपुग्गले च कल्याणपुथुज्जने च विहेसं करोन्तो अविज्जासंखातेन वट्टमूलेन
पुरक्खतो पेसितो पयोजितो हुत्वा दिट्ठे'व धम्मे चित्तविघातसंखातं संकिलेसञ्च न
विजानाति आर्याति निरयसंपापकं निरयगामी-अकुसलसंखातं मग्गं न विजानाति
तादिसको'व सो भिक्खु हवे एकन्तेन चतूसु अपायेसु भेदं विनिपातं समापन्नो होति ।
एकमातुगग्गतो सङ्कमित्वा एकमातुगग्गं पुनप्पुनं समापन्नो होति । एकलोकन्त-
रिकनिरयतो सङ्कमित्वा एकं लोकन्तरिकनिरयं पुनप्पुनं समापन्नो होति । इतो
परलोकं गन्त्वा नानप्पकारं सकलदुक्खं निगच्छति फुसति ! वुत्तं हेतं भगवता—

“कलहाभिरतो भिक्खु मोहधम्मेन आवटो,
अक्खातं पि न जानाति धम्मं बुद्धेन देसितं ।

विहेसं भावित्तानं अविज्जाय पुरक्खतो,
संकिलेसं न जानाति मग्गं निरयगामिनं ॥
विनिपातं समापन्नो गब्भा गब्भं तमा तमं,
स वे तादिसको भिक्खु पेच्च दुक्खं निगच्छती'ति^१ ॥

इति सुत्तनिपाते धम्मचरियसुत्ते आगतं इदं आदीनवं पि पस्सित्वा विवादं अकत्वा
अञ्जमञ्जं पियचक्खूहि पस्सित्वा मेत्तपुब्बङ्गमं कथं कथापेत्वा पातिमोक्खसंवरसीलं
तुम्हेहि रक्खितव्वमेव ।

अपरम्पि विवादे भण्डने कलहे आनिसंसगवेसन्तो जयपराजयं पस्सति ।
लाभालाभादि-अत्थञ्च पस्सति । अयं पनेत्थ पालि :—

अप्पञ्हेतं नालं समाय दुवे विवादस्स फलानि ब्रूमि ।
एतम्पि दिस्वा न विवादयेथ खेमाभिपस्सं अविवादभूमिं ॥

अप्पञ्हेतं नालं समाया'ति । अप्पकं एतं ओमकं एतं थोकं एतं लामकं एतं
जतुककं एतं परित्तकं एतं'ति । अप्पञ्हेतं नालं समाया'ति । नालं रागस्स समाय,
दोसस्स समाय, मोहस्स समाय । कोधस्स समाय, उपनाहस्स मक्खस्स पलासस्स
इस्सामच्छरियस्स मायाय साठेय्यस्स थम्भस्स सारम्भस्स मानस्स अतिमानस्स मदस्स
पमादस्स सब्बकिलेसानं सब्बदुच्चरितानं सब्बदारथानं सब्बपरिग्गहानं सब्बसंता-
पानं सब्बाकुसलाभिसंखारानं समाय वुपसमाय निब्बानाय पनिस्सग्गाय पटिप्पस्स-
द्धिया'ति ।

अप्पञ्हेतं नालं समाय । दुवे विवादस्स फलानि ब्रूमि'ति दिट्ठिकलहस्स
दिट्ठिभण्डनस्स दिट्ठिविग्गहस्स दिट्ठिविवादस्स दिट्ठिभेधगस्स द्वे फलानि होन्ति ।
जयपराजयो होति । लाभालाभो होति, यसायसो होति । निन्दापसंसो होति, सुख-
दुक्खं होति, सोमनस्सदोमनस्सं होति, इट्ठानिट्ठं होति, अनुनयपटिघं होति,
उग्गहातिनिग्गहाति होति, अनुरोधविरोधो होति । अथवा तं कम्मं निरयसंवत्तनिकं
तिरच्छानयोनिस्वत्तनिकं पेत्तिविसयसंवत्तनिकन्ति, ब्रूमि आचिक्खामि देसेमि ।
पञ्जापेमि पट्ठपेमि विवरामि विभजामि उत्तानं करोमि, पकासेमी'ति ।

दुविधे विवादस्स फलानि ब्रूमि । एतं पि दिस्वा न विवादयेथा'ति । एतं पि
दिस्वा'ति एतं आदीनवं दिस्वा पस्सित्वा तुलयित्वा तीरयित्वा विभावयित्वा विभूतं

कत्वा दिट्ठकलहेसु दिट्ठभण्डनेसु दिट्ठविग्गहेसु दिट्ठविवादेसु दिट्ठमेधगेसु'ति । एतं पि दिस्वा न विवादयेथा'ति । न कलहं करेय्य न भण्डनं करेय्य, न विग्गहं करेय्य न विवादं करेय्य न मेधगं करेय्य । कलहं भण्डनं विग्गहं विवादं मेधगं पजहेय्य दिनोदेय्य व्यन्तिकरेय्य अनाभावं करेय्य । कलहा भण्डना विग्गहा विवादा मेधगा आरतो अस्स विरतो निक्खनतो निस्सये विप्पमुत्तो विसञ्चत्तो विपरियादिकतेन चेतसा विहरेय्या'ति ।

एतं पि दिस्वा न विवादयेथ, खेमाभिपस्सं अविवादभूमि'न्ति अविवादभूमि वुच्चति अमतं निब्बानं ।

यो सो सब्बसङ्खारसमथो सब्बूपधिपटिनिस्सग्गो तण्हक्खयो निरोधो निब्बानं एतं अविवादभूमि । खेमतो ताणतो लेनतो सरणतो अभयतो अच्चुततो अमनतो निब्बानतो पस्सन्तो दक्खन्तो ओलोकेन्तो निज्झायन्तो उपपरिक्खतो'ति । खेमाभिपस्सं अविवादभूमि'न्ति । इदं पि महानिद्वेसे महाविरूहनसूतनिद्वेसे वुत्तवचनं ।

अनुस्सरित्वा अञ्जमञ्जं मुदुच्चित्तेहि विवादं अकत्वा बुद्धस्स अनुमत्तिया अनुलोमं आरभित्वा चतुपारिसुद्धिसीले ठत्वा अगगफलस्स करणमेव आरभितव्वन्ति ।

अपरं पि इमस्मिं सासने द्वे भिक्खू पुब्बकाले धम्मसवनस्स धम्मसाकच्छा होतू'ति मनसि कत्वा इदं कम्मं कप्पति इदं कम्मं न कप्पती'ति विवदन्ति । अपरकाले बहू पक्खं लभित्वा महागणं बन्धित्वा अम्हाकं वादो'व पसंसियो तुम्हाक गरहितो'ति । केराटिकभावेन अभूतवचनं कथयमाना विवदन्ति । तस्मिं काले देवमनुस्सानं अहिताय दुक्खाय संवत्तन्ति । तेन वुत्तं मज्झिमनिकाये सामगामसुत्तट्ठकथायञ्चेव अङ्गुत्तरनिकाये लक्कनिपातट्ठकथायञ्च अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं'ति । एकस्मिं विहारे सङ्घमज्जे उप्पन्नो विवादो कथं देवमनुस्सानं अहिताय दुक्खाय संवत्तती'ति कोसम्बक्खन्धके विय द्विसु भिक्खूसु विवादं आपन्नेसु तस्मिं विहारे तेसं अन्तेवासिका विवदन्ति । तेसं ओवादं गण्हन्तो भिक्खुनीसङ्घो विवदति । ततो उपट्ठाका विवदन्ति अथ मनुस्सानं आरक्खदेवता द्वे कोट्ठासा होन्ति । तत्थ धम्मवादीनं आरक्खदेवता धम्मवादिनियो होन्ति । अधम्मवादीनं आरक्खदेवता अधम्मवादिनियो तस्मिं तासं आरक्खदेवतानं मित्ता भुम्पदेवता भिज्जन्ति । एवं परम्परया याव ब्रह्मलोका ठपेत्वा अरियसावके सब्बदेवमनुस्सा द्वे काट्ठासा होन्ति धम्मवादीहि पन अधम्मवादिनो बहुतरा होन्ति । ततो यं बहूहि गहितं'ति तं गण्हन्ति ।

संकाय पत्रिका-२

धम्मं विस्सज्जेत्वा बहुतरा अधम्मं पुरेत्वा विहरन्ता अपाये निब्बत्तन्ति । एवं एतस्मिं विहारे संघमज्झे उप्पन्नो विवादो बहुन्नं अहिताय दुक्खाय होती'ति ।

एवं उपरिपण्णासके सामगामसुत्तट्ठकथादीसु आगतवचनं पि पुनप्पुनं पि मनसिकरित्वा पुब्बकानं सप्पुरिसानं लज्जिपेसलमहाथेराणं वंसे ठत्वा अविपरीतं एव अत्थं गहेत्वा अविज्जादिवट्टस्स महादुक्खस्स छेदनत्थाय बुद्धमतिया अनुलोमेन तुम्हेहि सिक्खितव्वमेवा'ति ।

तस्मा परियत्तिसधम्मस्स पटिपत्तिसधम्मस्स पटिवेधसद्धम्मस्स चिरट्ठितत्थाय अविनस्सनत्थाय अनन्तरधानत्थाय परियत्तिधम्मो सक्कच्चं तुम्हेहि सुणितव्वो सक्कच्चं परियापुञ्जितव्वो परियापुणित्वा सक्कच्चं धारेतव्वो । धारेत्वा परियत्ति-धम्मस्स अत्थो सक्कच्चं उपपरिक्खितव्वो उपपरिक्खित्वा परियत्ति धम्मस्स अत्थं यथाभूतं अञ्जाय लोकुत्तरधम्मस्स अनुलोमं अनिच्चादिपटिसंयुत्तकथं कथेत्वा च अनिच्चादिलक्खणं भावेत्वा सब्बसंखातेसु खयवयं आरोपेत्वा च सब्बकालं तुम्हेहि निसीदितव्वं एव । वुत्तं हेतं भगवता :—

पञ्च'मे भिक्खवे धम्मा सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तन्ति । कतमे पञ्च ? इध भिक्खवे भिक्खू सक्कच्चं धम्मं सुणन्ति सक्कच्चं धम्मं परियापुणन्ति सक्कच्चं धम्मं धारेन्ति । सक्कच्चं धतानं धम्मानं अत्थं उपपरिक्खन्ति । सक्कच्चं अत्थं अञ्जाय धम्ममञ्जाय धम्मानुधम्मं पटिपज्जन्ति । इमे खो भिक्खवे पञ्च धम्मा सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तन्ती'ति ।

इदं पि अङ्गुत्तरनिवाये पञ्चकनिपाते वुत्तवचनं सक्कच्चं कत्वा सासनस्स मूलभूतं परियत्तिधम्मं परियापुणित्वा पुच्छित्वा संसन्दित्वा भूतं एव अत्थजातं तुम्हेहि गहेतव्वं ।

सम्मासम्बुद्धपरिनिव्वानतो महाकस्सपत्थेरादीहि थेरपरम्पराहि च सिस्सानु-सिस्सेहि च बुद्धसासनं सक्कच्चं अनुरक्खित्वा याव'ज्जतना सम्मासम्बुद्धसासनं पतिट्ठापितं । तच्च सासनं अम्हाकं रट्ठे च तुम्हाकं सीहलदीपे च इदानि पतिट्ठा-ती'ति । अम्हेहि सुत्तपुब्बं अञ्जेषु दीपेषु च रट्ठेषु च भिक्खू अत्थी'ति न सुतपुब्बं । तस्मा अम्हेहि पि तुम्हेहि पि सक्कच्चं बुद्धसासनं रक्खितव्वमेव । तं पि कारणं पुनप्पुनं सरित्वा सीमञ्च वत्थुञ्च त्रत्तिञ्च अनुसावनञ्च परिसञ्च सुट्ठुं विसोधेत्वा जातिकुलपुत्तआचारकुलपुत्ता सक्कच्चं कत्वा अनुगगहेतव्व्वा । तुम्हाकं पन वसनभूतं

संकाय पत्रिका-२

तम्बपण्णदीपं पुब्बकाले सम्मासम्बुद्धानञ्चेव अरहन्तानञ्चेव अट्ठकथाटीकाकरण-
समत्थानं परियत्तिविसारदभिवखूनञ्चेव निवासट्ठानभूतं । तस्मा ठानं पि पटिच्च
तुम्हेहि पि अम्हेहि पि पियायितब्बं एव ममायितब्बं एव च इमिनापि कारणेन
लज्जिसभावे ठत्वा अति-उस्सुक्कं कत्वा सद्दासम्पन्ना जातिकुलपुत्ता आचारकुलपुत्ता
अनुसासितब्बा'व ।

परियत्तिधम्मा परियापुणितब्बा एव धारेतब्बा च वाचेतब्बा चा'ति ।
अम्हेहि पेसितो वाचनामग्गो तुम्हाकं हत्थं सम्पत्तकाले तुम्हाकं संदेसं मम सन्तिकं पटि
आरोचेही'ति ।

अयं मेत्तापुब्बंगमधम्मकथा ।

इति त्रेय्यधम्माभिमुनिवरजानकित्तिसिरिधजधम्मसेनापतिमहाथेरेन रचिता
सीमाविवादविनिच्छयकथा । एत्तावता च :—

द्विसतेकूनवीसाधिसहस्सं गणने गते
पुरुत्तमे रतनपुण्णे मण्डलाचलनिस्सिते ।
सम्पुण्णे राजधम्मेहि सेतिभिन्दो महाबुधो
वत्थुत्तये'भिप्पसन्नो राजा रज्जं अकासि यो ।
सो मं पूजि यदा जातिय'एकूनसट्ठवस्सिकं
भिक्खुभावेन तालिसवस्सं त्रेय्यादिनामकं ।
मया सीहलभिक्खूनं कतो सीमाविनिच्छयो
विवादस्य समत्थाय बुद्धो व सो समेतु तं'ति ॥

सीमाविवादविनिच्छयकथा निट्ठिता ।

जातिदुखविभागो

भदन्त डी. सोमरतन थेरो
प्राध्यापक, पालि एवं थेरवाद विभाग
श्रमणविद्या संकाय
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

परिचय

सूत्र, विनय एवं अभिधर्म के उद्भट विद्वान् एक पौराणिक महास्थविर द्वारा विरचित यह प्रकरण “जातिदुक्खविभागो” अथवा “कायविरतिगाथायो” इस नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकरण के रचयिता के जीवन के सम्बन्ध में कोई विशेष उल्लेख उपलब्ध नहीं होता।

“विभागं जातिदुक्खस्स पक्खामी समासतो” प्रकरण की इस प्रारम्भिक गाथा से प्रतीत होता है कि इस प्रकरण का “जातिदुक्खविभागो” यह नाम ग्रन्थकार को अभिप्रेत है तथा ग्रन्थ के अन्त में “कायविरतिगाथायो” इस कारिकांश के द्वारा व्याख्याकार ने इस प्रकरण का “कायविरतगाथा” यह द्वितीय नाम भी स्वीकार किया है।

इस प्रकरण में कुल २७४ गाथाएं हैं। यह तथ्य प्रकरण के “कायविरतिगाथायो द्वे सता चतुसत्तति” इस गाथावचन से स्पष्ट है। किन्तु श्रीलङ्का के अनेक भागों में उपलब्ध विभिन्न संस्करणों में २७२ गाथाएं ही उपलब्ध होती हैं। अतः विद्वानों ने इस प्रकरण की इतनी ही संख्या को प्रामाणिक मान लिया है।

इस प्रकरण के दो खण्ड हैं। पहले खण्ड का नाम “जातिदुक्खुद्देस” तथा द्वितीय खण्ड का नाम “सुञ्जतुद्देस” है। जातिदुःख का विभाजन एवं शून्यताप्रतिसंयुक्त धर्मों का वर्णन बौद्धदर्शन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय हैं। अतः शोध की दृष्टि से यह प्रकरण-ग्रन्थ अत्यधिक उपादेय है, ऐसा हम समझते हैं।

यह ग्रन्थ गृहस्थ एवं प्रव्रजित दोनों के लिए उपयोगी है, ऐसा सोच कर बुद्धशासन की समूहति के लिए कलुतर सुमित्रारामाधिवासी कलुतर ज्ञानरतन स्थविर से त्रुटियों का परिमार्जन करा कर कलुतर डी० डी० फुनसेका और पयागल के० जे० करुणारतन ने मिलकर इस ग्रन्थ का सिंहली में मुद्रण कराया था। उसी के आधार पर यह देवनागरी संस्करण तैयार किया गया है।

—भदन्त डी. सोमरतन थेरो

संकाय पत्रिका—२

जातिदुक्खविभागो

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

- 1) सम्बुद्धमभिवन्दित्वा विमुत्तं जातिदुक्खतो ।
विभागं जातिदुक्खस्स पवक्खामि समासतो ॥
- 2) पठमं कललं हुत्वा सरीरं सखुमं इदं ।
किमीव वचक्कूपम्हि जायते मातुकुच्छियं ॥
- 3) चक्खुदस्सनतिक्कन्तं तिलतेलं वनाविलं ।
दुग्गन्धातिपटिकूलं सुक्कसोणितनिस्सितं ॥
- 4) कम्मवेगसमानीतं किलेसविसदूसितं ।
बहुधम्मसमोद्यानं नानासुच्चिकिमालयं ॥
- 5) उपत्यद्धं बहुप्पन्नतटिसन्धिमनेनतं ।
जरारोगादिसम्भीमविपत्तिनियतेदयं ॥
- 6) जातं चेवं पटिकूलं सरीरं पटिसन्धियं ।
सत्ताहं कललं हुत्वा तिट्ठते मातुकुच्छियं ॥
- 7) अनट्ठा पानकादीहि अन्तो चे मातुकुच्छियं ।
रुहिरेन नगच्छेय्य अब्बुदुदित्तमेतिदं ॥
- 8) लभित्वा हेतुसामग्गीमब्बुदादित्तमायति ।
अविज्जमाने हेतुम्हि तत्थ तत्थेव नस्सति ॥
- 9) ततो परञ्च सत्ताहं परिपक्कमुपागतं ।
मच्छधोतुदकाकारं अब्बुदंति पबुच्चति ॥
- 10) कम्मो तु मानसाहारपञ्चयेहि पवत्तितं ।
कमेन घणभावञ्च महन्तमुपगच्छति ॥

संकाय पत्रिका-२

- 11) विलीनति पुपिण्डोव ईसका घणसङ्गतं ।
वुचते मंदरत्तंतु पेसि अब्बुदभावतो ॥
- 12) सुरत्तं परिवत्तित्वा पेसि आकारतो ततो ।
कुक्कुटण्डकसण्ठानं घनो इति पवुच्चति ॥
- 13) सत्ताहसु चतुस्ववं परिपुण्णेषु सब्बसो ।
घणतो निक्खमित्वान सत्ताहे पञ्चमे पुन ॥
- 14) हत्थादिपातुभावाय ततो मंसानि वड्ढिय ।
भवन्ति पिलका पञ्च पुब्बकम्मबलेन ही ॥
- 15) नहारुतचमंसट्ठकोट्ठासानम्पनेकतो ।
निस्साय वड्ढिताकारं होति हत्थादि सम्मुति ॥
- 16) असीतिसतसन्धीही युत्त तिसत अट्ठिका ।
कमेन अभिवड्ढन्ति मूलालं वियपल्लले ॥
- 17) तानट्ठीनि विनन्धित्वा नवनहारुसतानि च ।
वड्ढन्ति कमतो गेहे दारुभिस्सि व वल्लियो ॥
- 18) तानि सब्बानि लिम्पित्वा नवमाससतानि च ।
वड्ढन्ति कमतो गेहे दारुभिस्सि व मत्तिका ॥
- 19) तानि अन्तो करित्वान कोसातकित्तो विय ।
वड्ढते पूत्तिचम्ममि विनन्धित्वा समासतो ॥
- 20) चम्मस्सु परिनेकानी केसलोमानि जायरे ।
उदके विय सेवालं मील्हेव तिणं विय ॥
- 21) वोसति नखपत्तानी होन्ति अङ्गुलिकोटिसु ।
तानि सण्ठानतो मच्छसकलिका सदिसा सियुं ॥
- 22) होन्ति द्वत्तिस दन्ता पि हणुकट्ठीसु सण्ठिता ।
ठपिता मत्तिका पिण्डे लाबुबीजा वनुक्कमा ॥

- 23) सेदितं विय वेत्तगं पक्खित्तं वेलुनालियं ।
अब्भन्तरम्हि अट्ठीनं अट्ठिमिञ्जम्पि जायती ॥
- 24) गलवाटकतो गन्त्वा द्विधाभिन्ननहरुना ।
विनद्धं वक्कमंसम्पि होति तं यमकं सिया ॥
- 25) जायते हृदयं पदुममुकुलं व अधोनतं ।
रत्तलोहितसम्पुण्णं थनानं द्विन्नमन्तरे ॥
- 26) द्विमंसपटलं होति यकनं नातिलोहितं ।
दक्खिणं संहि निस्साय थनब्भन्तरसण्ठितं ॥
- 27) छन्नाच्छन्नवसा होति दुविधं तु किलोमकं ।
छन्नं उपरिकायम्हि अच्छन्तं द्वीसु सम्भवे ॥
- 28) पिहकं नाम मंसम्पि होति प्ततङ्गुलायतं ।
नीलं हृदयवायम्हि निस्सायुदरमत्थकं ॥
- 29) द्वित्तिक्कण्डप्पभेदप्पि मंसपप्फासकम्भवे ।
निरोजं निरसं रत्तं देहब्भन्तरसण्ठितं ॥
- 30) छिन्नमङ्गद्वसीसोव सप्पो सेतसरीरको ।
एकवीसतिभोगेही अत्तमब्भन्तरे ठितं ॥
- 31) वेठेत्वा अन्तभोगेही ठितं अन्तगुणम्पि च ।
होति तम्पादपुञ्जम्हि रञ्जुकाविय खायती ॥
- 32) नानाकिमिकुलाकिण्णं सन्तत्तं उदरगिगना ।
उदरब्भन्तरे भूतमसितादिमलं भवे ॥
- 33) अन्तस्सब्भन्तरे पुण्णं अन्ते अट्टङ्गुलायतं ।
वच्चं होति अमुत्तेतु यम्हि देहो पकम्पति ॥
- 34) जज्जरालाबुया खित्तं दुट्ठखीरं व सण्ठितं ।
होति सीसकपालम्हि मत्थलुङ्गम्पिपूतिकं ॥
- 35) बद्धाबद्धवसापित्तं देहे तु दुविधं ठितं ।
अबद्धं पन सब्बत्थ पित्तकोसेव बद्धकं ॥

- 36) अन्नादीनि विनन्धित्वा उदरोकाससण्ठितं ।
होति नागबलायूससदिसं सेम्हपूतिकं ॥
- 37) यत्य कत्यचि देहस्स पिलकादिम्हि उड्डिते ।
होति पुब्बो पि दुग्गन्धो पक्कलोहितसञ्जितो ॥
- 38) बद्धाबद्धवसादेहे लोहितं दुविधं ठितं ।
अबद्धं पन सब्बत्थ बद्धं लोहितकोसके ॥
- 39) कूपेहि केसलोमानं सेदो पिसति पच्चये ।
जायते स्नेहविन्दूव मेदपूरितभाजना ॥
- 40) हलिद्ववण्णे देहस्स चम्मं मंसन्तरे ठितो ।
पीणस्नेहसङ्घाता मेदो भवति पूतिको ॥
- 41) पग्घरन्तानि अस्सूनि पूरेत्वा अक्खिकूपके ।
रोदने हसने चापि कारणे सति जायरे ॥
- 42) जलस्सुपरि तेलं व हत्थपादतलादिसु ।
विलिप्पस्नेहसङ्घाता वसा च विसटा सिया ॥
- 43) पग्घरन्तो कपोलेही होति खेलो मुखस्सपि ।
कूपस्सोभयपस्सेही सन्दमानोदकं यथा ॥
- 44) कारणे सति पच्चित्वा सन्दिक्त्वा मत्थलुङ्गतो ।
होति सिघानिका चापी सण्ठिता घानकूपके ॥
- 45) असीतिसतसन्धीनमब्भन्तरगतापि च ।
पूतिकालसिका होति यायदेहो पवत्तति ॥
- 46) वत्थिस्सब्भन्तरे पुण्णं मासखारोदकूपमं ।
मुत्तं होति अमुते तु यम्हि देहो पक्कम्पति ॥
- 47) इच्चेतं वड्ढयित्वान सरीरं कललादितो ।
केसलोमादिभेदेन होति द्वत्तिसभेदकं ॥
- 48) सदिसा वत्थसञ्जातकलापानं तथा तथा ।
सण्ठितं रासिमुद्दिस्स होति केसादि सम्मुत्ति ॥

- 49) अनाभोगसभावाही अञ्जमञ्जिह् मेसदा ।
पञ्चेका चेतना सुञ्जा दुग्न्धा बाललापना ॥
- 50) कदलीपत्तच्छद्दीव अञ्जमञ्जं पतिट्ठता ।
इत्थिलिङ्गादिभावेन पमोहन्ति महाजना ॥
- 51) संहत्तापनेतेसं भित्तानम्पि सजातिनो ।
यत्थ कत्थ चि सम्फुट्ठं मनो भुञ्जति गोचरं ॥
- 52) सजातिभेदभिन्नम्पि सन्निवेशविसेसतो ।
यन्ति इत्थीदिवोहारमेत्थ सब्बेपि एकतो ॥
- 53) गमनादीनि किच्चानि व्यादिसोकादुपद्वा ।
विपळासा च सिक्खन्ति एतेसं सहवुत्तितो ॥
- 54) जातानं एवमेतेसं कोट्ठासानम्पनेकतो ।
पुञ्जो पोत्थलिकाकारो सरीरन्ति पवुच्चति ॥
- 55) विरूपाकारसञ्जाता कोट्ठासानं वसेनिदं ।
होति जच्चन्धखुञ्जादि सण्ठानम्पि सरीरकं ॥
- 56) तस्मिं च फेगु रुक्खस्मिं सुचिरं परिजिण्णके ।
नेकच्छिद्दा व जायन्ति नव द्वारा सुविस्सवा ॥
- 57) असीति कुलमत्ता च तत्थ जायन्ति पाणका ।
छवि चम्मादि निस्साय गण्डुप्पादादि भेदका ॥
- 58) सभावो एत्तको येव देहसब्बपकारतो ।
चन्दनागरुमुत्तादि नत्थि किञ्चि इतो परं ॥
- 59) देहेवं पातु भूतेव परिपुण्णे च इन्द्रिये ।
तं तदाकारमारब्भ होति इत्थादि सम्मुत्ति ॥
- 60) ठपेत्वा भावलिङ्गादिं नानत्तं व कलेवरे ।
विञ्जति कम्मजं हित्वा कायोयं कट्टसादिसो ॥
- 61) एवंसो पातुभूतो च सत्तोयं मातुकुच्छियं ।
सङ्घातनरकप्पत्त सत्तोविय विहञ्जति ॥

- 62) जातीयं मातुयामञ्जे पिट्टिकण्ठकनाभिनं ।
उदरं मत्थके कत्वा करीसस्मि निसीदती ॥
- 63) निस्साय मातुयापिट्टिकण्ठकं मुखमत्तनो ।
ठपेत्वा तश्छिद्दम्हि पतितोव निसीदती ॥
- 64) विनद्धो पूतिचम्मेन जालबद्धससो विय ।
सङ्कुचितहृत्थपादोसो पवेधन्तो निसीदति ॥
- 65) तं तं कारणमागम्म सीतुण्हादिकमप्पियं ।
पतितो अग्गिकूपेव भुसं दुक्खं निगच्छति ॥
- 66) पठिकूलतरे देहसहजाते सदा नरो ।
निमुग्गो लोहिते गूथनरकोदकसादिसे ॥
- 67) निच्चमच्चन्तसम्बाधे अन्धकारे महब्भये ।
दग्गन्धकुनपाकिण्णे नानाकिमिकुलालये ॥
- 68) निसीदन्तो चिरं तत्थ यथाजातवसेन हि ।
पिहितक्खिमुखो होति निरस्सायो मतोविय ॥
- 69) नरकङ्गारमञ्जम्हि दुक्खतोपि महब्भयं ।
होति घोरतरं दुक्खं नरके चतुगुण्ठिके ॥
- 70) अस्य्हप्पतिकारम्हा घोरम्हा दुक्खतो इतो ।
कदाहं परिमुञ्चय्यमीति सोचति पाणिसो ॥
- 71) मातुदरेन सम्बद्धो नालोतु नाभितो गतो ।
तस्सुप्पलकदण्डोव होति सच्छिद्दको ततो ॥
- 72) यन्तस्स मातराभुत्तं अन्नपानादिकंततो ।
संहरित्वा ततो तेसं चिरं पालेति कुच्छियं ॥
- 73) निस्सिन्नट्टानतो चेसवातेन परिवत्तितो ।
योनिमग्गप्पपातम्हि अधो सीसो पतिस्सति ॥

- 74) खित्तो चे कम्मवेगेन विरञ्जित्वा पतिस्सति ।
पप्पोति कटुकं दुक्खं खुरधारादिसम्भवं ॥
- 75) सम्पत्तो कटुकं दुक्खं तत्थेको मातुकुच्छिग्रं ।
दक्खस्स पतिकारं वा तानं लेनं न पस्सति ॥
- 76) लोहितासुचिमक्खित्तमग्गतो बहिनिक्खमं ।
कुञ्चिका छिद्दतो हत्थि पोतको विय गच्छति ॥
- 77) मुञ्चित्वापायदुक्खेहि सगगलोकगतस्सिदं ।
असय्हानन्तदुक्खेसु अपायेसु कथावका ॥
- 78) एवं कललतो याव मग्गतो गमनं बहि ।
अनुभोति च यं दुक्खं तस्सका उपमासिया ॥
- 79) कललादिसु ठानेसु मरणं उपगच्छतो ।
परिच्छेदो अनादिमिह नत्थीति परिदीपितं ॥
- 80) सगगलोकमदिस्वाव अपाये कुच्छियं पि च ।
चरन्ता पन कप्पमिह होन्ति सत्तातिभासितं ॥
- 81) एकस्सेकेन कप्पेन पुग्गलस्सट्ठिसञ्चयो ।
सिया पब्बतसमो रासी इति वुत्तं महेसिना ॥
- 82) छवानेकस्सानादिमिह तिट्ठेय्युं छड्ढितानिचे ।
छादेय्युं तिभवं सब्बं अनन्तायतवित्थतं ॥
- 83) यथा न सुकरं कातुं पामानं पाणिनं भवे ।
एकस्सेकत्थदड्ढानं छवानं हि यथा मतं ॥
- 84) रुदतो चक्खुरोगेन वस्सन्तस्सुजलं ततो ।
चक्खुतो नातिवत्तन्ति चतुरो पि महण्णवा ॥
- 85) दोसमेकं व निस्साय पतितं छिन्नसीसतो ।
लोहितं नातिवत्तेय्य विवट्ठो पि महोदधि ॥

- 86) एकाय इत्थि योनिमग्गे विपतितं नरं ।
छेत्वा रासिकतं मंसं महीतो पि बहूतरं ॥
- 87) सद्धम्मसेवनं सब्भि अलद्धा संङ्गमं चिरं ।
अनुभूतं भवे दुक्खं अनन्तं दुक्खकारणं ॥
- 88) रत्तस्सुपधिरागेन जातिसिञ्जति पाणिनो ।
सब्बं वट्टभयं तस्स सिद्धं सिद्धाय जातिया ॥
- 89) संसरित्वा चिरं कालं अनन्ते जातिसागरे ।
को पमज्जेय्य धम्मेसु लद्धा किच्छेनिमं खणं ॥
- 90) सयित्वा सुचिरं अन्तो निक्खन्तं कुच्छितो बहि ।
दुक्खानि परिवारेन्ति गूथपिण्डं व मक्खिका ॥
- 91) एवं सो पातुभूतोव सत्तोयं मातुकुच्छितो ।
मंसपिण्डकपेतोव सुखुमालससेरको ॥
- 92) हत्थसम्कुसनादिमिह विसमप्पच्चये सति ।
विज्ञियन्तोव सत्थेहि खरं दुक्खं निगच्छति ॥
- 93) दीनो निच्चपराधीनो वत्थुभूतो दयायसो ।
अविधेय्यङ्गपच्चङ्गो सदा उत्तानसेय्यको ॥
- 94) असन्ततये पच्चये खिप्पं सुस्समानसरीरको ।
इरियापथमञ्जं वा अलभं रुचिमत्तनो ॥
- 95) निच्चासुचिसमाकिण्णो निच्चरोगीसु दुब्बलो ।
इच्छिता निच्छित्थाय परिदेवपरायनो ॥
- 96) गच्छेय्य मरणं नोचे महन्तमुपगच्छति ।
जीवितुं विज्जमानमिह पुञ्जकम्मे तदुत्तरिं ॥
- 97) पुञ्जकम्मेसु निच्छन्दो हिरोत्तप्पविवज्जितो ।
किच्चाकिच्चमजानन्तो तिरच्छानोवजीवति ॥

- 98) मन्दो तरुणवच्छोव परिधावमितो चितो ।
हृत्थभंगादिकं दुखं पापुणाति असञ्जतो ॥
- 99) ततो महन्तं पत्तो सो विसदिन्द्रियमानवो ।
इट्टादि गोचरे निच्चमभिसज्जति दुस्सति ॥
- 100) रत्तो रागेन दोसेन दुट्ठो मोहेन मुच्छितो ।
तं तं पापवसं पत्वा उम्मत्तो विय जीवति ॥
- 101) चरं उम्मत्तवेसेन कत्वा दुच्चरितं बहुं ।
सूलादि उपनीतो सो फलं विन्दति जातिया ॥
- 102) दसाकुसलकम्मामि पूरेत्वा न बहूनिध ।
पतित्वापायदुखेसु चिरं सग्गं न पस्सति ॥
- 103) खुदं पिपासं व्याधिं च वधबन्धनतालनं ।
एसनादिमनेकञ्च जातो दुखं निगच्छति ॥
- 104) विलापो दो-मनस्सं च सोको दुखमसय्हकं ।
उपायासाति सब्बेते जातं व अनुवत्तरे ॥
- 105) सदा सब्बत्थ सब्बे पि दुखधम्मा जरादयो ।
जातं व अनुवत्तंति वणिं गोणं व मक्खिका ॥
- 106) वियोगं पियवत्थूहि अण्णियेहि समागमं ।
इच्छितालाभहेतं च जातो दुखं निगच्छति ॥
- 107) वेरी च वेरबहुलो दलिट्ठु मत्तकोपि च ।
जलो नट्टिन्द्रियो नीचो जातो भवति पुग्गलो
- 108) आचिनन्तो बहुं पापं चिरं दुखस्स कारणं ।
पुत्तदारादि सम्पत्तिं मील्हं व परिभुञ्जति ॥
- 109) जाति कुम्मग्गमापज्ज जरारोगादुपद्ववं ।
अपस्सं उजुमग्गं सो चिरं दुखो न मुञ्चति ॥
- 110) तण्हासुचि समाकिण्णो अन्धो अपरि नायको ।
बालो चरति वट्ठमिह जच्चन्धो व बनेकको ॥

- 111) सतं धम्ममपस्सन्तो विपल्लासपुरक्खतो ।
मिगो मरीचिलुद्धो व परिधावति तोचितो ॥
- 112) पोसेन्तो तुच्छभत्तानं अपस्सं सुखकारणं ।
कलिं करोति अत्तानं यथा सूकरपोतको ॥
- 113) मोधमञ्जमिदं सच्चमिति गण्हं कुदिट्ठयो ।
पल्लले पतितस्माव नरो वट्ठेव सोदति ॥
- 114) कम्पितं लोकधम्ममेहि वञ्चितं लोभसत्तुना ।
सब्बं वट्टभयं एवं जातं व अनुवत्तति ॥
- 115) यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं तं जातिपच्चया ।
सब्बसो जातियाभावे कुतो दुक्खस्स सम्भवो ॥
- 116) सिद्धेका जातिकम्मेन इथलोके परत्थ च ।
बहुन्नं पच्चया होति दुक्खानं जाति आदिनं ॥
- 117) या चक्कवत्तितिसिन्दसुखं गतम्पि ।
पापोति जाति हत लज्जदलिद्दभावं ।
साधूहिताय परिमुच्चितुमेसि सब्बं ।
निब्बाणमेव ननु सीध मतो बुधेहि ॥
- 118) सब्बानत्थसमुट्ठानं जातिदुक्खवसं गतो ।
जातिपच्चयसम्भूतं जरादुक्खं निगच्छति ॥
- 119) सरीरं दिब्बकप्पम्पि रुक्खो दावग्गिना विय ।
विरूपं होति अच्चन्तं जरापावकदूसितं ॥
- 120) मरणं होति आसन्नं आगताय जराय ही ।
सुरियासन्नभावो च अरुन्मिह समागते ॥
- 121) पीतयोब्बनयूसो यं जरायक्खिनिया नरो ।
भुसं पीतरसं उच्छुसकटं व जिगुच्छियो ॥

- 122) फलिता किण्णसीसो च खण्डदन्तो खरखसरो ।
खरसम्पस्स दुब्बण्णो पूतिगन्धवलित्तवो ॥
- 123) अट्टिसंघाटपेतो व दिस्समानट्ठिपञ्जरो ।
खीणलोहितमंसो च किसो धमनि सन्थतो ॥
- 124) पवेधमानो अबलो सदा दण्डपरायनो ।
पमुखो भग्गदेहो च मन्दो अवसिदिन्द्रयो ॥
- 125) परिहीनो सतादीहि सम्पत्तो मच्चुसन्तिकं ।
अविधेय्यङ्गपच्चङ्गो सकिच्चे अवसंगतो ॥
- 126) विलुत्तभोगो अञ्जेहि विज्जमाने व जीविते ।
पच्छिन्नपुञ्जकम्मोसो सेति मञ्चपरायनो ॥
- 127) सदावीतमलद्वारो पूतिगन्धसरीरको ।
कपणो भिन्नलज्जीव चत्त पेमो च बन्धुहि ॥
- 128) अतेकिच्छकव्याधी च सप्पायं रुचिमत्तनो ।
अलभन्तो पराधीनो पंसुपेतो व जीवति ॥
- 129) दयाय वत्युभूतो सो बालो विय जलो भवे ।
जीवमानो पि यं जिण्णो मनो विय विरत्थको ।
- 130) विस्सन्दपूतिखेलो यं हसन्तो पि महल्लको ।
नट्टयोब्बनसोभो सो मण्डितो पि न सोभति ॥
- 131) लोके विरूपपिण्डो व जङ्गमो जिण्णपुरगलो ।
दिस्वान यं जिगुच्छन्ति सपेमो अपि बन्धवा ॥
- 132) करोन्ति अपहासं वा अञ्जं वा दिस्स मत्तनो ।
अपनेन्ति मुखं अञ्जे भणमाने महल्लके ॥
- 133) दट्ठं तं तस्स सोतुम्पि वचनं अपि बन्धवा ।
फुसितम्पि जिगुच्छन्ति तस्स हत्थेन तादिसं ॥

- 134) असुचिं व जिगुच्छन्ति अवजा पि महत्लकं ।
तेन सम्भोगसंवासं नेविच्छन्ति कथञ्चि पि ॥
- 135) पुब्बे मनापो हुत्वान जिण्णो योब्बनकारणा ।
पच्छा सोचति अत्तानो खिण पायेय्यको विय ॥
- 136) योकन्तरूपो पि पुरे बहुलं ।
विरूपदेहो पुनसो जराय ।
जिगुच्छित्तब्बो अपि बन्धवेहि ।
संवेगठानं ननुदं बुधानं ॥
- 137) एवं जराय जिण्णो पि तरुणो चापि पुग्गलो ।
जातिपच्चयसम्भूतं व्याधिदुक्खं निगच्छति ॥
- 138) यदासो गहितो होति व्याधियक्खेन पुग्गलो ।
असमत्थो तदासेति छिन्नपक्खो द्विजो विय ॥
- 139) मनापं वण्णसण्ठानं धितिं हिरिमसेसतो ।
सरीरे सब्ब सम्पत्तिं व्याधियक्खो विलुम्पति ॥
- 140) आदिस्समानरूपमिह असुनन्ते सुदारुणे ।
आगते व्याधियक्खमिह मरणे होति संसयो ॥
- 141) इट्ठवियोगहेतुं च देहं निस्सारकारको ।
परायत्तकरो देही नत्थि व्याधिसमो रिपू ॥
- 142) मण्डनं हसनं चैव विलासो कीलनमि च ।
आगते व्याधियक्खमिह सब्बमन्तरधायति ॥
- 143) असमत्थो सभोगमि भुञ्जितुं व्याधिपीलितो ।
उट्ठानादिमु किच्चेसु पराधीनो निपज्जति ॥
- 144) सके मुत्तकरीसमिह पलिपन्नो रुदम्मुखो ।
दयालुकानं सत्तानं कम्पेति हृदयं भुसं ॥

- 145) तस्स दिस्वान सम्भीमं व्याधियक्खमुपागतं ।
अच्चन्तमनुतापेन्तो सोकग्गिमभिवड्ढति ॥
- 146) दुक्खं सहितुमसक्कोन्तो पुग्गलो व्याधिपीलितो ।
सममेवापि दुल्लद्धं हन्ति जीवितमत्तनो ॥
- 147) अच्चन्तचित्तविक्खेपं अप्पियत्तं परस्स च ।
पापुनाति नरो खिप्पं व्याधियक्खवसंगतो ॥
- 148) नोपेतनागतं भोगं चित्तं न परिभुञ्जति ।
कल्याणं च न सक्कोति कातुमिच्छति ब्याधितो ॥
- 149) कातुं न सक्कोति नरो पत्तिट्ठं ।
येनाभिभूतो सति जीविते पि ।
व्याधिं तमेवं कुसलो विदित्वा ।
आदित्तसीसोव चरेय्य धम्मे ॥
- 150) नीयमानस्स तस्सेवं जरारोगेहि निच्चसो ।
घोरं मच्चुमुखं नत्थि तानं लेनं च सब्बसो ॥
- 151) महावातसमुद्धूतो सुक्ककट्ठं व पावको ।
खिप्पं हन्ति नरं मच्चुजरारोगसहायको ॥
- 152) नरं अत्तनि जाताव जरारोगरिपू उभो ।
आकड्ढत्वान पातेन्ति मरणानलकासुर्यं ॥
- 153) असहृप्पतिकारेण मच्चुदुक्खेण पीलितो ।
तानं लेनमपस्सन्तो निमुग्गो सोकसागरे ॥
- 154) जहित्वा सब्बसम्पत्तिं सरीरम्पि च अत्तनो ।
अकामं मरणं याति कन्दमानो रुदम्मुखो ॥
- 155) न कालनियमेनेति न चायन्तो पि पस्सति ।
हन्ति सीधतरं आयुं आगतो मच्चु तं खणे ॥

- 156) गहेत्वा जीवितं मच्चु गच्छन्तो पि न दिस्सति ।
गहितं न पुनानेति रुदन्ते पि महाजने ॥
- 157) न त्राति भोगा सक्कोन्ति न मित्ता नपि बन्धवा ।
न कोचि बलवा लोके मच्चुतां तं विमुच्चित्तं ॥
- 158) नत्थि तादिसको हेतु येन जातो न मीयति ।
को तं सक्कोति वारेतुं जातिया सह आगतं ॥
- 159) ठपेत्वा कत कल्याणं घोरमच्चुभयं इमं ।
नत्थि कोचि भवे तस्स समत्थो पटिबाहितुं ॥
- 160) नत्थि घोरतरो नाम अनत्थो मरणा परो ।
येन याति अनिट्ठंसो वियोगं पिय वत्थुतो ॥
- 161) किच्छेन पटिलद्धं यं एकमेव हि जीवितं ।
अनन्तोपद्वा तस्स उपघातोपपीलका ॥
- 162) आतपेखित्तपण्णं व सुस्समानसरीरको ।
तुज्जन्तो दुक्खसल्लेहि विच्छिन्नसन्धिबन्धनो ॥
- 163) ततो कम्मकिलेसेहि नीयमानो भवन्तरं ।
उपेति कललादित्तं चवित्तवान ततो पुन ॥
- 164) गिलीयमाने सति जीवितम्हि ।
निरन्तरं मच्चुमहोरगेन ।
हासोनुको का नु च तुट्ठिभोगे ।
कत्तब्ब मस्मि ननु पुञ्जमेव ॥

जातिदुक्खनिहेसो निट्ठतो ।

- 165) जातो जिण्णो मतो व्याधि सत्तोयमिति सम्मुति ।
जायमानादिभावेन रूपकायो पवत्तति ॥
- 166) सलक्खणपरिच्छिन्ने पच्चयायत्तवुत्तिके ।
काये निब्बिरिया भोगे कुतो सत्तोपलब्भति ॥
- 167) अङ्गपच्चङ्गकोट्ठासकलापाकारतो पन ।
संगतो रूपपुञ्जोव वुत्तां कायो ति एकतो ॥
- 168) कायो तेत्यविसेसेन उपादिन्नं पवुच्चति ।
तदुपत्थम्भकत्तेन निजरूपम्पि तग्गतं ॥
- 169) अथवा पन कायोति भूतपुञ्जोव वुच्चति ।
उपादारूपछन्नता नो पट्ठहति तत्ततो ॥
- 170) अञ्ज मञ्जोपकारेण सल्लक्खणरसेन ही ।
एकतो सम्पवत्तन्ति वत्थुधम्मातिदुब्बला ॥
- 171) ज्ञाणगोचरमत्तेन सुखुमत्तेन वुत्तितो ।
दुब्बला संखता होन्ति ततो खिप्पं व भिज्जरे ॥
- 172) गच्छन्तो कोचि सत्तो न गमनं वा न कस्सचि ।
पातुभावोव धम्मानं निरीहाणं तथा तथा ॥
- 173) अधिमत्तेतु एकम्हि भूतम्हि पन किच्चतो ।
सेसा तदनुवत्तन्ति गमनादि ततो भवे ॥
- 174) भूतपुञ्जोव भूतानं वसेनेवं पवत्तति ।
नत्थि कोचि पवत्तन्तो पवत्तापनको नरो ॥
- 175) जायमानादिरूपानि अब्बोच्छिन्न वसेनिध ।
एकत्तेन गहेत्वान होति निच्चादिकप्पना ॥
- 176) इरियापथेनाञ्जेन दुक्खमेकम्हि सम्भवं ।
नुदित्वा वुत्तितो तत्थ सुखसञ्जा पवत्तति ॥

- 177) किलेसातुरतो चैव यथाभूतमजानना ।
बालानं सुभसङ्कप्पो पूतिकाये पवत्तति ॥
- 178) नाना सन्धिपरिच्छिन्न अङ्गपच्चङ्गरासिनो ।
होति नामं सरीरन्ति इत्थि वा पुरिसो ति वा ॥
- 179) सन्निवेसविसेसेन ठितकोट्टासरासिनो ।
अङ्गपच्चंगवोहारो कथीयति तथा तथा ॥
- 180) कम्मोतु मानसाहारहेतुजाता वसेनिध ।
सन्ततीनं चतस्सन्नं होति कोट्टाससम्मति ॥
- 181) द्वत्तिसा सुभतो होन्ति द्विचत्तालीसधातुतो ।
कोट्ठासा सह वत्तन्ता निब्भागा धातुमत्तका ॥
- 182) पठविंसा चेत्य ... आपंसा होन्ति द्वादस ।
तेजंसा चतुरो छद्वा वायंसा धातुभेदतो ॥
- 183) ततो कलपा सङ्खेपा दसका नव कट्ठका ।
होन्ति तेरस त्थिारा ये हि वुच्चन्ति सन्तति ॥
- 184) भूतभूतिकरूपानं समूहस्स यथारहं ।
अट्ठकादिप्पभेदेन कलापा इति सम्मति ॥
- 185) सलक्खणविसेसेन होति नामं विसेसतो ।
सब्बं रूप्पणभावेन रूपं इति पवुच्चति ॥
- 186) सलक्खणेन रूपानि आकासेन च कणिका ।
परिच्छिन्नोव वत्तन्ति अञ्जमञ्जं अमिस्सतो ॥
- 187) कत्वानेवं विनिभोगं सरीरं परमत्थतो ।
सुद्धसंखारपुञ्जोयमिति पस्सेय्य पण्डितो ॥
- 188) नहेत्थ देवो न ब्रह्मा न इत्थि पुरिसो ति वा ।
धातुमत्ता सुभानिच्चा दुक्खधम्मा पवत्तरे ॥

- 189) कायो न पस्सति सुणाति च नेव किञ्चि ।
जानाति किच्चमपि नेव सयं करोति ।
युत्तो पवत्तति मनेन तथा तथायं ।
सुत्तेन यन्तमिव दारुमयं पयुत्तं ॥
- 190) नानत्ततो हि मनसो अनिलस्स भेदो ।
भेदानिलस्स गमनादिक्रियाविभागो ।
कायस्स सिञ्जति क्रिया च तथा तथा यं ।
देसन्तरम्हि इतरीतररूपसिद्धि ॥
- 191) नानत्ततो मानसभूरवानं ।
नानाभिधानानि भवन्ति एवं ।
अत्थानुरूपं क्रियसद्देहेतु ।
तत्था विनिब्भोगमती रमन्ते ॥
- 192) मझे हृदयकोसस्स अद्धप्पसतलोहिते ।
भूतरूपमुपादाय वत्थुरूपं पवत्तति ॥
- 193) निस्साय पन तं वत्थुं सम्पवत्तति मानसं ।
तं तं द्वारिककिच्चं तु साधयन्तं यथारहं ॥
- 194) अतीव गरुभूतम्पि काययन्तमिदं मनो ।
यथिच्छायपवत्तेति दाहयन्तं यथा नरो ॥
- 195) यदा विञ्ज्राणसंचारो एत्थ वोच्छिज्जते तदा ।
छिन्नबन्धनयन्तं व कायो पतति भूमियं ॥
- 196) आपवद्धं नलापक्कं वातवित्थम्भि तीरितं ।
आयुगुत्तं मनाविट्ठमविकिण्णमिदं चरे ॥
- 197) आयु उस्मा च विञ्ज्राणं यदा कायं जहन्ति मं ।
अपविद्धो तदासेति यथा कट्ठं अचेतनं ॥

- 198) मनायोतु पटिच्छन्नो विकारोयं सरीरके ।
निरोधा पन तिण्णम्पि पाकटो होति तं खणे ॥
- 199) जेगुच्छविवटद्वारो सजीवाकारनिस्सटो ।
अविस्सासपुरेवखारो अवमङ्गलसज्जितो ॥
- 200) भोगबन्धुपरिचत्ते पतितो कम्मबन्धना ।
एकको कपणो सेति छड्डितब्बो लहुं तदा ॥
- 201) देहारक्खकविस्सट्ठमत्ते पूतिगतं जना ।
छड्डेन्ति अनपेक्खा तं भिन्नगूथघटं विय ॥
- 202) पोसितो पि विरं कायो निरोधो पन चेतसो ।
साणि चितकमागम्म खणेनन्तरधायति ॥
- 203) गूथपिण्डोव संकारकुटादिसु निरत्थको ।
कायो अपेत विञ्जानो अनपेक्खेहि छड्डितो ॥
- 204) द्वीह तीहच्चयेनेव उद्धमातकतं गतो ।
विरूपो होति सम्भीमो विजातायपि मातुया ॥
- 205) सब्बे नीलत्तमायन्ति वण्णा सामादयो ततो ।
पक्कभावं गते पच्छा देहनिस्सितलोहिते ॥
- 206) सहेव सुचि सोतेहि पग्घरन्ति किमी ततो ।
छादेन्ति सकलं देहं भिन्नहत्थपुटं विय ॥
- 207) तथामुची पग्घरन्ति भिन्दित्वान इतो चितो ।
जिन्न बन्धनयन्तोव छिज्जते सन्धिबन्धनं ॥
- 208) विकिण्णो भवति कायो तत्थत्थ विभागसो ।
खादितो सोणकादीहि देहभावम्पि नोदति ॥
- 209) अनीलात पवुट्ठेहि ततो जिन्नत्तमागते ।
सब्बे अन्तरधायन्ति नाममत्तम्पि नो भवे ॥

- 210) मण्डेन्तासुचिपिण्डं व पोसन्तो विय पन्नगं ।
सरीरमुपपलालेन्ता बड्ढन्ति कटसिं चिरं ॥
- 211) अमित्तं नून पोसेन्ति कटसिं अनुगामिकं ।
वारकं पटिपज्जन्ति ये सरीरवसं गता ॥
- 212) यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं तं देहपच्चया ।
अविज्जमाने देहस्मिं कुतो दुक्खस्स सम्भवो ॥
- 213) सुभादिसञ्चिनो देहे सलभा व हुतासने ।
मोहेन पटिपज्जन्तो सोचन्ति सुचिरं कली ॥
- 214) सतसञ्जमधिट्ठाय निस्सत्तासुचिसञ्चये ।
पलालयन्तरूपमिह बाला नट्ठा मिगा विय ॥
- 215) निब्भोगे काययन्तमिह मिच्छाचारो अविञ्जुनं ।
बालस्स ननु मन्दस्स गूथमिह गूथकीलनं ॥
- 216) अहो सुदारुणो मोहो येन मूलहा पुथुज्जना ।
एवरूपे सरीरे पि रतिं कुब्बन्ति निप्फलं ॥
- 217) विहञ्जमाने दिस्वान पूतिकाये विचक्खणा ।
पुथुज्जनत्तं हीलन्ता विलुत्ता रागबन्धना ॥
- 218) अलद्धा स्रग्भि संवासं सरीरे धातुमत्तके ।
यथाभूतमजानन्ता करोन्ति पटिधं रतिं ॥
- 219) सदा इत्थिपुमाकारा सण्डितासुचिसञ्चये ।
केवलं वण्णमत्तेन चित्तं दूसेन्ति दुम्मति ॥
- 220) इतापक्खित्तमेतस्मिं एत्तो याचति पूतिकं ।
जनातुच्छं विहञ्जन्ति देहस्मिं उभतो मुखे ॥
- 221) न चापक्खित्तं सक्का न सक्का रक्खित्तुम्पि च ।
दुप्पमञ्चमिदं दुक्खं नरानं सततागतं ॥
- 222) यथा अग्गिमिह पक्खित्तं होति सब्बम्पि छारिकं ।
तथा देहे पि पक्खित्तं होति सब्बं करीसकं ॥

- 223) बहिद्धा विय देहस्स पस्सेय्यव्वभन्तरं जनो ।
करेय्य एको एकस्मिं नेवरागं कदाचिपि ॥
- 224) सचे अपकता होति छविचम्मस्स मत्थके ।
विनद्धो सेतचम्मेन होति कायो जिगुच्छियो ॥
- 225) विसुं चे अट्ठिसंघाटो चरेय्य तचमंसतो ।
अट्ठिसंघाटपेतो व भुसं होति भयावहो ॥
- 226) चरेय्युं बहिचम्मस्स अन्तो किमिगणासचे ।
किमिकं व सुसानस्मिं सजीवो एव छड्ढियो ॥
- 227) विवटानपिहितानेव नवद्वारानि चे सियुं ।
सव्वदासुचिकिण्णो यं पस्सितुम्मिं न चारहो ॥
- 228) गूथासुचिं नवद्वारां छद्वारां किलेसासुचिं ।
बहिराव्वभन्तरं सवति कोसारो अट्ठपञ्जरे ॥
- 229) अतिजेगुच्छियं होति एकाहम्मिं अजग्गितं ।
तथापि तत्थ सम्मोहा रागो होति सरागिनं ॥
- 230) सभावेन पटिक्कूलो विरूपोसुचिसञ्चथो ।
बहिसम्भारसंयुत्तो होति रागस्स वारणं ॥
- 231) दिपादकोयं चरति गूथपिण्डो महाजनं ।
दूसेन्तो असुचिं निच्चं पग्घरन्तो ततो ततो ॥
- 232) तनुच्छविं पटिच्छन्नो गूथरासिमिदं जनो ।
हल्लिद्विरागमविखत्तं पूतिमंसं व सेवति ॥
- 233) ठातं देहे न सक्कोन्ति मीलहस्मिं हि सभावतो ।
दिस्वा वण्णवणं निच्चदुग्गन्धं बालवायसा ॥
- 234) सिगालसोनकादीनं देहे नियतगोचरे ।
को करेय्य बधो छन्दं मण्डनं वा ममायितं ॥

- 235) छवक्खञ्चनलेपो व मण्डणं हि सरागिनं ।
सच्छिद्दे पूतिचम्मस्मि सतं संवेगकारणं ॥
- 236) कतं तं पूतिकायम्हि यं सरागेहि मण्डणं ।
किलेसुम्मत्त वेसन्ति गरहन्ति विपस्सिनो ॥
- 237) किं तत्थ मण्डणं नाम कारती किं ममायितं ।
यं गिलन्ति अहोरत्तं जरामच्चुमहोरगा ॥
- 238) दुम्मत्तो दुब्भरो कायो दुक्खो दुप्परिहारियो ।
दुत्तिकिच्छो दुरादानो दुप्पूरा दूसको सदा ॥
- 239) निच्चेतनो निरुस्साहो निस्सारो नीचगोचरो ।
निक्किलेसपरिच्चत्तो कायो निग्गुणसेवितो ॥
- 240) बहुधम्मसमोधानो बहुपच्चयनिस्सितो ।
बहुसाधारणो कायो बहुपद्द्वपीलितो ॥
- 241) अलेनासरणो कायो सब्बन्तथमहापथो ।
जरादिपावकादित्तो सब्ब दुक्खूपनिस्सयो ॥
- 242) नायं मित्तो न ज्ञाती च न च कस्सचि सन्तको ।
निच्चीवासुचिमत्तो व केवलं कम्मसम्भवो ॥
- 243) सरीरस्स कतुस्साहो होति सब्बो पि निप्फलो ।
सक्कारो सिवल्लिङ्गस्स दिट्टिकेहि कतो यथा ॥
- 244) जग्गतो पि अयं कायो विसुद्धत्तं न गच्छति ।
धोतो हि गूथपिण्डो हि निम्मलत्तं न पापुणे ॥
- 245) सदा संमण्डितो चापि असुचि न जहेस्सति ।
सुनहातानुलित्तो पि वराहो असुचि यथा ॥
- 246) नवच्छिद्दमिदं पुण्णं जज्जरासुत्तिभाजनं ।
पन्थसाला च संसारमग्गे कटसि कारको ॥

- 47) सदावत्तमुखप्पत्तं भुत्वा हित्वा निपज्जतो ।
महोदरन्तसप्पस्स वम्मिको जंगमोदयं ॥
- 248) पसारित्तमयं जालं कायो सन्ति महापथे ।
ओद्धितं मारलुद्धेहि दिपादकमदूहलं ॥
- 249) छविवण्ण तिणच्छन्नं पपातो अन्धपाणिनं ।
वण्णमिसपटिच्छन्नं बलिसं बालूदकायुनं ॥
- 250) इरियापथचक्केहि वत्तमानं सरीरकं ।
रोगादिभण्डसम्पुण्णं जिण्णं सकटमीरितं ॥
- 251) नगरं मोहराजस्स तण्हालोलमहेसिनो ।
बलिं मच्चुपिसाचस्स देहो किम्फलमीरितो ॥
- 252) एवं अनिच्च वत्तिदं सरीरं ।
सदासुभं केवलदुक्खपिण्डं ।
अलेन मादीन व मत्त सुञ्जं ।
पहाय तं सन्तिमुपेन्ति सन्तो ॥
- 253) कायो हि निच्चम्म पसूव निच्चं ।
गण्डोव दण्डेन हतो असातो ।
वच्चं व कूते पतितं असारो ।
भिज्जय्य खिप्पं उदकेव राजी ॥
- 254) कत्वा विनिब्भोगमिदं सरीरं ।
निस्सत्तमेतन्ति पहाय सञ्जं ।
मोहन्धकारातुरजीवलोको ।
तच्छं वितक्केतिह धम्ममत्ते ॥
- 255) नहारुच्चम्मेहि समाविनद्धिते ।
मनानिलापायुतु सम्पवत्तिते ।
जरारुजामच्चुमलादिपूरिते ।
किमेत्थ गच्छं सुचितो च सारतो ॥

- 256) न विज्जते दुःखमनस्तनिच्चं ।
 सरीरतो पूतिमसारमञ्जं ।
 एतादिं सेचापि करोन्ति छन्दं ।
 ततो किमञ्जं पन मोघ किच्चं ॥
- 257) विरूपमञ्जं असुचिं न देहतो ।
 भयस्स मूलं विपरीतचेतसा ।
 उपेन्ति दुःखं कटुकं तहिं रता ।
 नरोरचक्के विय गिद्धमानसो ॥
- 258) येनानुभूतं अमितञ्ज यत्थ ।
 पतिट्ठतं दुःखमनादिकाले ।
 तमेव पत्थेति पुनप्पुनम्पि ।
 अञ्जानजालस्स यमानुभावो ॥
- 259) भुत्वापि घोरम्पि सुदीघरत्तं ।
 अनन्तदुःखं भवचारकेसु ॥
 न तत्थ उक्कण्ठति बालसत्तो ।
 लद्धासखीनेन हि तण्हविज्जा ॥
- 260) निरुद्धमत्ते व मनम्हि सब्बे ।
 भोगा च बन्धू च सरीरलीला ॥
 जहन्ति तं याति सुसानमेको ।
 को पञ्जवा तत्थ करेय्य रागं ॥
- 261) यो यन्तदेहो विय सारहीनो ।
 फेनस्स देहो विय दुब्बलो च ।
 अमेज्जदेहो विय पूतिकायो ।
 करेय्य को तत्थ रतिं अबालो ॥

- 262) नहारुचम्मट्ठतिमंसमेते ।
भवय्यु नाना यदि अञ्जमञ्जं ।
निमित्तसण्ठानक्रियानुपाती ।
कुहि पतिट्ठं नु लभेय रागो ॥
- 263) ये पूत्तिकायम्हि करोन्ति छन्दं ।
जातिं जरत्याधिमयो चुतिं च ।
पुनप्पुनं ते समुपेन्ति बाला ।
बालो यथा धेनुमुपेति वच्छे ॥
- 264) ततो च निक्खन्त मलं तहिं च ।
भवेय्य लित्तं सकलेपि देहे ।
खणेव तस्मिं किमिगूथगन्धं ।
दट्ठुम्पि दुक्खं पन को फुसेय्यं ॥
- 265) एकाह निक्खन्तमलम्पि देहा ।
पहोति छादेतुमसेसतो तं ।
किमेव वत्तुं पन मच्चुकाला ।
तथापि देहे सुविसञ्चि बालो ॥
- 266) सचे पि अन्तो गत भागरासी ।
चरेय्य कामं बहिनिक्खमित्वा ।
दण्डं गहेत्वा पन काकसोने ।
निवारये अञ्जमकुब्बमानो ॥
- 267) गन्धासयो कासविरूपवण्ण ।
सण्ठानतो भदितपूति रासिं ।
चित्तेन सद्धिं विचरन्तमेतं ।
सत्तोति मञ्जंति कलीधमोहा ॥

- 268) देहं व निस्साय किलिट्ठभावं ।
 पत्वानचित्तं विविधं च दुःखं ।
 चिरं अनन्ते भवसागरस्मि ।
 आरुह्य सन्धावति देहनावं ॥
- 269) सुदुष्पमुञ्चं सिथिलं अनुं धिरं ।
 न छित्त्वते याव किलेसवन्धनं ।
 सरीरसम्बन्धमनादिकालिकं ।
 पवत्तते दुःखमिदं पुनप्पुनं ॥
- 270) अनन्तदुःखप्पभवेकसम्भवे ।
 भयेन भीमम्हि सरीरचारके ।
 करित्व चिन्तय्य परक्कमं वरं ।
 बुधेहि पत्तं ननु भो सिवं पदं ॥
- 271) ततो सरीरे बहुपद्दवाले ।
 पहाय एतम्हि रतिं असेसतो ।
 विचिन्तयन्ती परमं इमं विधि ।
 तारेय्य खिप्पं भवसागरं बुधो ॥

सुञ्जनुद्दसो निट्ठतो ।

- 272) संसारोयमनादिको चलयरो दुःखा अपाया सदा ।
 बुद्धुप्पादखणो च दुल्लभतरो दुल्लद्धकायो च यं ।
 नाना व्याधिजरादुपद्दवहतो विज्जूव भिज्जेय्यतो ।
 कालो भो ननु सन्तिमेसितुमयं आदित्तसीसो यथा ॥

संकाय पत्रिका-२

कायविरति गाथायो ।
 द्वेसताचतुसत्तति ।
 एत्तानुयोगं कुब्बन्तो ।
 पप्पोन्ति अमत्तं पदं ॥
 अनेन पुञ्जेन यसाधिकेन ।
 दानेन ज्ञानेन च सुस्सरेन ।
 भोगेन रूपेण बलेन चापी ।
 कुलेन सीलेन भवेत्थ मग्गो ॥

भदन्त-खेमाचरियथेरेन विरचितो

नामरूपसमासो

रामशंकर त्रिपाठी

अध्यक्ष, बौद्धदर्शन विभाग

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

वाराणसी

प्राक्कथन

‘नाम-रूपसमासो’ नामक गद्य पद्यात्मक यह लघुकाय ग्रन्थ ‘भदन्त क्षेम’ नामक आचार्य की रचना है। बर्मा में यह ग्रन्थ ‘खेमप्पकरण’ नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ पर सिंहली भाषा में एक प्राचीन सिंहली आचार्य द्वारा विरचित ‘सन्न’ नाम से एक प्राचीन व्याख्या भी है, जिसका नाम ‘सिलिपिटपत’ है। इस व्याख्या के साथ मूल ग्रन्थ का सम्पादन सन् १९८० ई० में सिंहली भिक्षु बटपोले सुभद्ररामाधिपति अनुनायक स्वामी श्री धर्मपाल ने सम्पन्न किया था।

पोलवत्ते बुद्धदत्त का कहना है कि प्रस्तुत ग्रन्थ की एक टीका वाचिस्सर महास्वामी द्वारा लिखी गई है, जिसे उन्होंने १९२६ ई० में बर्मा में रहते समय वहाँ देखा था। उनका कहना है कि उक्त व्याख्या सहित मुद्रित ग्रन्थ की पृष्ठ संख्या ७२ है।

बौद्ध आभिधार्मिक समस्त जागतिक पदार्थों का संग्रह पाँच स्कन्धों में करते हैं, यथा—रूपस्कन्ध, वेदनास्कन्ध, संज्ञास्कन्ध, संस्कारस्कन्ध एवं विज्ञानस्कन्ध। रूपस्कन्ध को छोड़कर शेष चार स्कन्ध ‘नाम’ कहे जाते हैं तथा रूपस्कन्ध ‘रूप’ कहलाता है। ग्रन्थकार ने इन्हीं नाम-रूप धर्मों का संक्षेप से निरूपण किया है, जो ग्रन्थ के नाम से ही स्पष्ट है। ग्रन्थ की भाषा सरल पालि है तथा शैली सुगम एवं स्पष्ट है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का एक संस्करण पी. टी. एस. लन्दन के जर्नल में १९१५-१६ में प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत ग्रन्थ का वही प्रमुख आधार है। इसके पाठ का रोमन, बर्मी और सिंहली संस्करणों से भी मिलान किया हुआ है। देवनागरी में इस ग्रन्थ के प्रकाशन का उद्देश्य इसे जिज्ञासु विद्वानों और शोध-छात्रों को सुलभ कराना मात्र है। आशा है इससे सुधी जनों को मनस्तोष होगा।

रामशंकर त्रिपाठी

सकाय पत्रिका-२

रूपं च वेदना सञ्ज्रा सेसचेतसिका तथा ।
विञ्ज्राणमिति पञ्चेते पञ्चखन्धा ति भासिता ॥
पञ्चुपादानखन्धा ति तथा तेभूमका मता ।
भेदाभावेन निब्बानं खन्धसङ्गहनिस्सटं ॥

—अभिधम्मत्थसंगहो ७ : ४६-४७ ।

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

नामरूपसमासो

१. गम्भीरं निपुणं धम्मं, मरुनं^१ यो पकासयी ।
सहस्सक्खस्स उय्याने, वसं वस्सं नरासभो ॥
२. नमस्सित्वान तं नाथं, धम्मं सङ्खं च साधुकं ।
समासं नामरूपस्स, भञ्जमानं सुणाथ मे ॥

तत्थ समासतो एकूननवुति चित्तानि ।

तानि चतुब्बिधानि होन्ति । कथं ? कुसलाकुसल-विपाक-किरियाभेदेन, तेसु एकवीसति कुसलचित्तानि, द्वादस अकुसलचित्तानि, छत्तिस विपाकचित्तानि, वीसति किरियाचित्तानि ।

चतुब्बिधानि कुसलानि, काम-रूपारूप-लोकुत्तार-भूमिभेदेन; अट्ठ कामावचरानि, पञ्च रूपावचरानि, चत्तारि अरूपावचरानि, चत्तारि लोकुत्तारानि चेति ।

तत्थ सोमनस्ससहगतं त्राणसम्पयुत्तं असङ्खारिकमेकं, सङ्खारिकमेकं; सोमनस्ससहगतं त्राणविप्पयुत्तं असङ्खारिकमेकं; सङ्खारिकमेकं; उपेक्खासहगतं त्राणसम्पयुत्तं असङ्खारिकमेकं, ससङ्खारिकमेकं; उपेक्खासहगतं त्राणविप्पयुत्तं असङ्खारिकमेकं, सङ्खारिकमेकं ति इमानि अट्ठ कामावचरकुसलचित्तानि ।

वितक्क-विचार-पीति-सुख-चित्तोकग्गतासम्पयुत्तं पञ्चङ्गिकं पठमज्झानं । विचार-पीति-सुख-चित्तोकग्गतासम्पयुत्तं चतुरङ्गिकं दुतियज्झानं । पीति-सुख-चित्तोकग्गतासम्पयुत्तं तिवङ्गिकं ततियज्झानं । सुख-चित्तोकग्गतासम्पयुत्तं दुवङ्गिकं चतुत्थज्झानं ।

उपेक्खा-चित्तोकग्गतासम्पयुत्तं दुवङ्गिकं पञ्चमज्झानन्ति इमानि पञ्च रूपावचरकुसलचित्तानि ।

आकासानञ्चायतनं, विञ्ज्राणञ्चायतनं, आकिञ्चञ्जायतनं, नेवसञ्जानासञ्जायतनन्ति इमानि चत्तारि अरूपावचरकुसलचित्तानि ।

१. B. मधुरं ।

संकाय पत्रिका-२

सक्कायदिट्ठ-विचिकिच्छा-सीलब्धतपरामासतिदोसप्पहानकरं^१ सोतापत्ति-मग्गचित्तं । कामरागव्यापादानं तनुत्तकरं सकदागामिमग्गचित्तं । कामरागव्यापादानं निरवसेसपहानकरं अनागामिमग्गचित्तं । रूपराग-अरूपराग-मान-उद्धच्च-अविज्जानं अनवसेसपहानकरं अरहत्तामग्गचित्तान्ति इमानि चत्तारि लोकुत्तरकुसलचित्तानि ।

इमानि एकवीसति^२ कुसलचित्तानि ।

अकुसलचित्तानि तिविधानि । अट्ठ लोभसहगतचित्तानि, द्वे पटिघसम्पयुत्त-चित्तानि^३, द्वे एकहेतुकचित्तानीति ।

तत्थ सोमनस्ससहगतं दिट्ठगत-सम्पयुत्तं असङ्खारिकमेकं, ससङ्खारिकमेकं; सोमनस्ससहगतं दिट्ठगतविप्पयुत्तं असङ्खारिकमेकं, ससङ्खारिकमेकं; उपेक्खासहगतं दिट्ठगत-सम्पयुत्तं असङ्खारिकमेकं, ससङ्खारिकमेकं; उपेक्खासहगतं दिट्ठगत-विप्पयुत्तं असङ्खारिकमेकं, ससङ्खारिकमेकं ति इमानि अट्ठ लोभसहगतचित्तानि । दोमनस्ससहगतं पटिघसम्पयुत्तं असङ्खारिकमेकं, ससङ्खारिकमेकं ति इमानि द्वे पटिघसम्पयुत्तचित्तानि । विचिकिच्छासहगतं एकं, उद्धच्चसहगतं एकं ति इमानि द्वे एकहेतुकचित्तानि ।

इमानि द्वादस अकुसलचित्तानि ।

विपाकचित्तानि चतुब्बिधानि, काम-रूपारूप-लोकुत्तरभूमिवसेन, तेवीसति कामाववरविपाकचित्तानि, तानि दुविधानि होन्ति : कुसलविपाकानि अकुसल-विपाकानि चेति । कुसलविपाकानि सोलस, अकुसलविपाकानि सत्ता; कुसलविपाकानि दुविधानि अहेतुकानि सहेतुकानि चेति । अहेतुकानि अट्ठ, सहेतुकानि अट्ठ ।

तत्थ उपेक्खासहगतं कुसलविपाकं चक्खुविञ्ज्राण, तथा सोतविञ्ज्राणं, धानविञ्ज्राणं, जिह्वाविञ्ज्राणं, सुखसहगतं कायविञ्ज्राणं, कुसलविपाकाहेतुक-मनोधातु उपेक्खासहगतं सम्पटिच्छनं, कुसलविपाकाहेतुकमनोविञ्ज्राणधातु-सो-मनस्ससहगतं सन्तीरणं, कुसलविपाकाहेतुक-मनोविञ्ज्राणधातु-उपेक्खासहगतं सन्तीरणन्ति इमानि अट्ठ अहेतुककुसलविपाचित्तानि ।

सोमनस्ससहगतं ज्ञाणसम्पयुत्तं असङ्खारिकमेकं, ससङ्खारिकमेकं; सोमनस्स-सहगतं ज्ञाणविप्पयुत्तं असङ्खारिकमेकं ससङ्खारिकमेकं; उपेक्खासहगतं ज्ञाणसम्पयुत्तं

१. B. ^०परमासादि^० (दुप्पाठा).

२. S. Omits.

३. S. ^०-युत्तानि चित्तानि.

असङ्घारिकमेकं, ससङ्घारिकमेकं; उपेक्खासहगतं त्राणविप्पयुत्तं असङ्घारिकमेकं ससङ्घारिकमेकं ति इमानि अट्ट सहेतुककुसलविपाकचित्तानि ।^१ अट्ट सहेतुक-कुसलविपाकचित्तानि कुसलसदिसानि येव उप्पज्जन्ति, किं तु ? विपाकचित्तानीति नानाकरणं ।

उपेक्खासहगतं अकुसलविपाकं चक्खुविञ्जाणं, तथा सोतविञ्जाणं, घान-विञ्जाणं, जिह्वाविञ्जाणं, दुक्खसहगतं कायविञ्जाणं, अकुसलविपाकाहेतुकमनोधातु उपेक्खासहगतं सम्पटिच्छनं, अकुसलविपाकाहेतुकमनोविञ्जाणधातु उपेक्खासहगतं सन्तीरणं ति इमानि सत्त अकुसलविपाकाहेतुकचित्तानि ।

पञ्च रूपावचरविपाकचित्तानि कुसलसदिसानि येव उप्पज्जन्ति ।

चत्तारि अरूपावचरविपाकाचित्तानि कुसलसदिसानि येव उप्पज्जन्ति ।

चत्तारि लोकुत्तरविपाकचित्तानि सोतापत्तिफलचित्तं, सकदागामिफलचित्तं, अनागामिफलचित्तं, अरहत्तफलचित्तञ्चेति; इमानि चत्तारि लोकुत्तरफलचित्तानि ।

इमानि छान्तिस विपाकचित्तानि ।

किरियाचित्तानि भूमिवसेन तिविधानि होन्ति, कामावचरानि, रूपावचरानि, अरूपावचरानि चेति । एकादस कामावचरानि, पञ्चरूपावचरानि, चत्तारि अरूपा-वचरानि । कामावचरानि दुविधानि, अहेतुकानि सहेतुकानि चेति, अहेतुकानि तीणि, सहेतुकानि अट्ठ ।

तत्थ किरियाहेतुकमनोधातु उपेक्खासहगतं पञ्चद्वारावज्जनं, किरियाहेतुक-मनोविञ्जाणधातु सोमनस्ससहगतं हसितुप्पादचित्तं, किरियाहेतुकमनोविञ्जाणधातु उपेक्खासहगतं वोट्ठपनचित्तञ्चेति^२ इमानि तीणि अहेतुककिरियचित्तानि ।

अट्ठ सहेतुककिरियचित्तानि कामावचरकुसलसदिमानि येव अहरतो उप्प-ज्जन्ति । किं तु ? किरियाचित्तानीति नानाकरणं । पञ्च रूपावचरकिरियाचित्तानि कुसलसदिसानि येव अरहतो उप्पज्जन्ति । चत्तारि अरूपावचरकिरियाचित्तानि कुसलसदिसानि येव अरहतो उप्पज्जन्ति ।

इमानि बीसति किरियाचित्तानि ।

एवं समासतो एकूननवुतिचित्तानि होन्ति ।

१. B. Omits.

२. R. वोट्ठपनञ्चेति ।

तेसु द्वे आवज्जनचित्तानि, द्वे दस्सनचित्तानि, द्वे सवणचित्तानि, द्वे घायनचित्तानि, द्वे सायनचित्तानि, द्वे फुसनचित्तानि, द्वे सम्पटिच्छनचित्तानि, तीणि सन्तीरणचित्तानि, एकं वोट्ठपनं । द्वे द्विट्ठानिकानि, नव तिट्ठानिकानि, अट्ठ चतुट्ठानिकानि, द्वे पञ्चट्ठानिकानि, एकूनवीसति षटिसन्धिचित्तानि, एकूनवीसति भवङ्गचित्तानि, एकूनवीसति चुतिचित्तानि, एकादस तदारम्मणचित्तानि, तेरस हसनचित्तानि ।

बत्तिस चित्तानि रूपं समुट्ठापेन्ति, इरियापथं सन्नामेन्ति, विञ्जत्ती जनयन्ति । छब्बीसति चित्तानि रूपं समुट्ठापेन्ति, इरियापथं सन्नामेन्ति, विञ्जत्ती न जनयन्ति । एकूनवीसति चित्तानि रूपं समुट्ठापेन्ति, इरियापथं न सन्नामेन्ति, विञ्जत्ती न जनयन्ति । सोळस चित्तानि रूपं न समुट्ठापेन्ति, इरियापथं न सन्नामेन्ति, विञ्जत्ती न जनयन्ति ।

चतुपच्चास कामावचरचित्तानि, पञ्चदस रूपावचरचित्तानि, द्वादस अरूपावचरचित्तानि, अट्ठ लोकुत्तरचित्तानि, अट्ठारस अहेतुकानि, द्वे एकहेतुकानि, द्वावीस^१ दुहेतुकानि, सत्तचत्तालीस तिहेतुकानि, पञ्चपञ्चास जवनचित्तानीति ।

तत्थ किरियाहेतुकमनोधातु पञ्चद्वारे आवज्जनं करोति । किरियाहेतुकमनोविञ्ज्राणधातु उपेक्खासहगतं मनोद्वारे आवज्जनं करोति । इमानि द्वे आवज्जनचित्तानि ।

कुसलविपाकं चक्खुविञ्ज्राणं अकुसलविपाकं चक्खुविञ्ज्राणं ति इमानि द्वे दस्सनचित्तानि; एवमेव द्वे सवणचित्तानि, द्वे घायनचित्तानि, द्वे सायनचित्तानि, द्वे फुसनचित्तानीति वेदितब्बानि ।

कुसलविपाकाहेतुकमनोधातु उपेक्खासहगतं सम्पटिच्छनचित्तं, अकुसलविपाकाहेतुकमनोधातु उपेक्खासहगतं सम्पटिच्छचित्तञ्चेति इमानि द्वेपि सम्पटिच्छनचित्तानि । कुसलविपाकाहेतुकमनोविञ्ज्राणधातु सोमनस्ससहगतं सन्तीरणं, कुसलविपाकाहेतुकमनोविञ्ज्राणधातु उपेक्खासहगतं सन्तीरणं, अकुसलविपाकाहेतुकमनोविञ्ज्राणधातु उपेक्खासहगतं सन्तीरणं ति इमानि तीणि सन्तीरणचित्तानि ।

किरियाहेतुकमनोविञ्ज्राणधातु उपेक्खासहगतं, इदमेकं वोट्ठपनचित्तं पञ्चद्वारे वोट्ठपनं मनोद्वारे आवज्जनञ्च करोति । कुसलविपाकाहेतुकमनोविञ्ज्राणधातु

१. R. बावीस ।

संकाय पत्रिका-२

सोमनस्ससहगतं पञ्चद्वारे सन्तीरणं छद्वारे तदारम्मणञ्च करोति । इमानि द्वे द्विट्ठानिकानि ।

पञ्च रूपावचरविपाकचित्तानि, चत्तारि अरूपावचरविपाकचित्तानि ब्रह्मलोके पटिसन्धि भवङ्गं चुति च होन्ति । इमानि नव तिट्ठानिकानि ।

अट्ठ कामावचरमहाविपाकचित्तानि देवमनुस्सेसु पटिसन्धि भवङ्गं छद्वारे तदारम्मणं चुति च होन्ति । इमानि अट्ठ चतुट्ठानिकानि । कुसलविपाकाहेतुक-मनोविञ्ज्राणधातु उपेक्खासहगतं मनुस्सेसु जच्चन्धजातिबधिरादीनं पटिसन्धि भवङ्गं पञ्चद्वारे सन्तीरणं छद्वारे तदारम्मणं चुति च होति । अकुसलविपाकाहेतुक-मनोविञ्ज्राणधातु उपेक्खासहगतं चतुसु अपायेसु पटिसन्धि भवङ्गं, पञ्चद्वारे सन्तीरणं छद्वारे तदारम्मणं चुति च होति । इमानि द्वे पञ्चट्ठानिकानि ।

अट्ठ कामावचर-विपाकचित्तानि द्वे उपेक्खासहगतविपाकाहेतुकमनोविञ्ज्राण-धातुयो च कामावचर-कम्मं वा^१ कम्मनिमित्तं वा गतिनिमित्तं वा गहेत्वा पटिसन्धि होन्ति । पञ्च रूपावचरविपाकचित्तानि, चत्तारि अरूपावचर-विपाकचित्तानि^२ यस्स यस्स कुसलस्स ज्ञानस्स यं यं आरम्मणं, तं तं आरम्मणं गहेत्वा ब्रह्मलोके पटिसन्धि होन्ति, इमानि एकूनवीति पटिसन्धि चित्तानि होन्ति । एतानि येव पवत्तिकखणे भवङ्गानि चुतिकखणे चुति च होन्ति ।

अट्ठ कामावचरविपाकचित्तानि तिस्सो विपाकाहेतुकमनोविञ्ज्राणधातुयो च जवनचित्तानं अनन्तरा तदारम्मणानि हुत्वा कामावचरसत्तानमेव जायन्ति; इमानि एकादस तदारम्मणचित्तानि । कामावचरकुसलानि चत्तारि सोमनस्ससहगतानि, अकुसलानि चत्तारि सोमनस्ससहगतानि, पञ्च किरियचित्तानि सोमनस्स-सहगतानीति इमानि तेरस हसनचित्तानि; तेसु पुथुज्जनानं अट्ठसु कुसलाकुसलेसु हसनं उप्पज्जति; सेक्खानं द्वे दिट्ठगतानि अपनेत्वा छसु हसनं उप्पज्जति; अरहन्तानं पन पञ्चसु किरियचित्तेसु हसनं उप्पज्जति ।

अट्ठ कामावचर-कुसलचित्तानि, द्वादस अकुसलचित्तानि, दस किरियचित्तानि, खीणासवस्स अभिञ्जाचित्तं, सेक्खपुथुज्जनानं अभिञ्जाचित्तञ्चेति इमानि द्वत्तिस चित्तानि रूपं समुट्ठापेन्ति, इरियापथं सन्नामेन्ति, विञ्जती जनयन्ति । पञ्च रूपावचरकुसलानि, पञ्च किरियचित्तानि, चत्तारि अरूपावचरकुसलानि, चत्तारि

१. S. °वचरे कम्मं ।

२. B. Inserts च ।

किरियानि, चत्तारि मग्गचित्तानि, चत्तारि फलचित्तानीति इमानि छब्बीसति चित्तानि रूपं समुट्ठापेन्ति, इरियापथं सन्नामेन्ति, विञ्जती न जनयन्ति । एकादस कामावचर-कुसलविपाकानि द्वे अकुसलविपाकानि, किरियाहेतुकमनोधातु-आवज्जनं, पञ्च रूपावचर-विपाकचित्तानीति इमानि एकूनवीसति चित्तानि रूपं समुट्ठापेन्ति, इरियापथं न सन्नामेन्ति, विञ्जती न जनयन्ति । कुसला-कुसल-विपाकानि द्विपञ्चविञ्जाणानि, चत्तारि अरूपावचर-विपाकानि, खीणासवस्स चुतिचित्तं, सब्बसत्तानं पटिसन्धि-चित्तञ्चेति इमानि सोळस चित्तानि रूपं न समुट्ठापेन्ति, इरियापथं न सन्नामेन्ति, विञ्जती न जनयन्ति ।

अट्ठ कामावचर-कुसलानि, द्वादस अकुसलानि, अट्ठ महाविपाकानि, अट्ठ परित्तकुसलविपाकानि, सत्त अकुसलविपाकानि, अट्ठ महाकिरियानि, तीणि परित्त-किरियानीति इमानि चतुपञ्चास कामावचरचित्तानि । पञ्च रूपावचरकुसलानि, पञ्च विपाकानि, पञ्च किरियानीति इमानि पञ्चदस रूपावचरचित्तानि । चत्तारि अरूपा-वचरकुसलानि, चत्तारि विपाकानि, चत्तारि किरियानीति इमानि द्वादस अरूपावचर-चित्तानि । चत्तारि मग्गचित्तानि, चत्तारि फलचित्तानीति इमानि अट्ठ लोकुत्तर-चित्तानि ।

द्विपञ्चविञ्जाणानि, तिस्सो मनोधातुयो, पञ्च अहेतुकमनोविञ्जाणधातुयो चाति इमानि अट्ठारस अहेतुकचित्तानि । विचिकिच्छासहगतमेकं, उद्धच्चसहगतमेकन्ति इमानि द्वे एकहेतुकानि । द्वे दोसमोहहेतुकानि, अट्ठ लोभमोहहेतुकानि, द्वादस अलोभा-दोसहेतुकानीति इमानि बावीसति दुहेतुकानि । तिहेतुकानि सेसानि सत्तचत्तालीस चित्तानि । कुसलाकुसलानि तेत्तिस, चत्तारि लोकुत्तरविपाकानि, आवज्जनं वोट्ठपनञ्च षज्जेत्वा सेसानि अट्ठारस किरियचित्तानीति इमानि पञ्चपञ्चास जवनचित्तानीति ।

पकिण्णकं निट्ठत्तं ।

चित्त-चेतसिक-कथा

कतमे धम्मा कुसला^१ ? यस्मिं समये कामावचरं कुसलं चित्तं उत्पन्नं होति सोमनस्ससहगतं त्राणसम्पयुत्तं असङ्घारिकं रूपारम्मणं वा सद्धारम्मणं वा गन्धारम्मणं वा रसारम्मणं वा फोट्टुब्बारम्मणं वा धम्मारम्मणं वा, यं यं वा पनारब्भ; तस्मिं समये फस्सो होति, वेदना होति, सञ्जा होति, चेतना होति, चित्तं होति : फस्स-पञ्चकरासि : वितक्को होति, विचारो होति, पीति होति, सुखं होति, चित्तस्सेकगता

१. B. Omits. Cf. धम्मसङ्गणि, § 1.

संकाय पत्रिका-२

होति : ज्ञानपञ्चकरासि : सद्भिन्द्रियं होति, विरियिन्द्रियं होति, सतिन्द्रियं होति, समाधिन्द्रियं होति, पञ्चिन्द्रियं होति, मनिन्द्रियं होति, सोमनस्सिन्द्रियं होति, जीविन्द्रियं होति : इन्द्रियद्वुकरासि : सम्मादिद्वि होति, सम्मासङ्कप्पो होति, सम्मावायामो होति, सम्मासति होति, सम्मासमाधि होति : मग्गपञ्चकरासि : सद्भावलं होति, विरियबलं होति, सतिबलं होति, समाधिबलं होति, पञ्चाबलं होति, हिरिबलं होति, ओत्तप्पबलं होति : बलसत्तकरासि : अलोभो होति, अदोसो होति, अमोहो होति : हेतुत्तिकरासि : अनभिज्झा होति, अब्यापादो होति, सम्मादिद्वि होति : कम्मपथत्तिकरासि : हिरि होति, ओत्तप्पं होति : लोकपालदुकरासि : कायपस्सद्धि होति, चित्तपस्सद्धि होति, कायलहुता होति, चित्तलहुता होति, कायमुदुता होति, चित्तमुदुता होति, कायकम्मञ्जता होति, चित्तकम्मञ्जता होति, कायपागुञ्जता होति, चित्तपागुञ्जता होति, कायुज्जुकता होति, चित्तुज्जुकता होति : छयुगलदुकरासि : सति होति, सम्पजञ्जं होति : उपकारदुकरासि : समथो होति, विपस्सना होति : युगनद्धदुकरासि : पग्गाहो होति, अविक्खेपो होति : विरियसमथदुकरासि : ये वा पन तस्मिं समये अञ्जे पि अत्थि पटिच्चसमुप्पन्ना अरूपिनो धम्मा : इमे धम्मा^१ कुसला ।

पदविभागतो छपञ्जास पदानि होन्ति, नियतयेवापनकेहि सह समसद्वि पदानि होन्ति । तत्थ नियतयेवापनका नाम—छन्दो अधिमोक्खो तत्रमज्जत्तता मनसिकारो ति । यदा पन अनियतयेवापनकेहि सह उप्पज्जन्ति तदा एकसद्वि पदानि होन्ति । तत्थ अनियतयेवापनका नाम—करुणा मुदिता सम्मावाचा सम्माकम्मन्तो सम्मा-आजीवो ति ।

दुकवग्गादीसु यस्मा, सङ्गहञ्च न यन्तीति ।

चित्तस्स च पुथुभावं, दीपेतुञ्च अपण्णकं ।

तस्मा येवापना धम्मा, मुनिन्देन पकासिता ति ॥

रासितो सत्तरस रासि होन्ति : फस्सपञ्चकरासि, ज्ञानपञ्चकरासि, इन्द्रियद्वुकरासि, मग्गपञ्चकरासि, बलसत्तकरासि, हेतुत्तिकरासि, कम्मपथत्तिकरासि, लोकपालदुकरासि, छयुगलदुकरासि, उपकारदुकरासि, युगनद्धदुकरासि, विरियसमथदुकरासि चेति ।

येवापनकेहि त्रिना पाठे आगता असम्भिन्ना तिस धम्मा होन्ति यथा : फस्सो सञ्जा वेदना चेतना चित्तं वितक्को विचारो पीति चित्तस्सेकग्गता सद्धा विरियं सति

१. धम्मस० § 1.

संकाय पत्रिका-२

पञ्चा जीवितिन्द्रयं हिरि ओत्तप्पं अलोभो अदोसो कायपस्सद्धादयो द्वादस^१ धम्मा चेति इमे तिसधम्मा असम्भन्ना होन्ति । अविभक्तिक-सविभक्तिकवसेन दुविधा होन्ति, अट्टारस अविभक्तिका, द्वादस सविभक्तिका, यथा : फस्सो सञ्जा चेतना विचारो पीति जीवितिन्द्रयं कायपस्सद्धादयो द्वादस धम्मा चेति इमे अट्टारस धम्मा अविभक्तिका, वेदना चित्तं वितक्को चित्तस्सेकग्गता सद्धा विरियं सति पञ्चा हिरि ओत्तप्पं अलोभो अदोसो ति इमे द्वादस धम्मा सविभक्तिका ।

तत्थ चित्तं फस्सपञ्चके चित्तं, इन्द्रियदुके मनिन्द्रियं । वितक्को ज्ञानपञ्चके वितक्को, मग्गपञ्चके सम्मासङ्कप्पो । सद्धा इन्द्रियदुके सद्धिन्द्रियं, बलसत्तके सद्धाबलं । हिरि बलसत्तके हिरिबलं, लोकपालदुके हिरि । ओत्तप्पं बलसत्तके ओत्तप्पबलं, लोकपालदुके ओत्तप्पं । अलोभो हेतुत्तिके अलोभो, कम्मपथत्तिके अनभिज्जा । अदोसो हेतुत्तिके अदोसो, कम्मपथत्तिके अव्यापादो । वेदना फस्सपञ्चके वेदना, ज्ञानपञ्चके सुखं, इन्द्रियदुके सोमनास्सिन्द्रियं । विरियं इन्द्रियदुके विरियं, मग्गपञ्चके सम्मावायामो, बलसत्तके विरियबलं, विरियसमथदुके पग्गाहो । सति इन्द्रियदुके सतिन्द्रियं, मग्गपञ्चके सम्मासति, बलसत्तके सतिबलं, उपकारदुके सति । समाधि ज्ञानपञ्चके चित्तस्सेकग्गता, इन्द्रियदुके समाधिन्द्रियं, मग्गपञ्चके सम्मासमाधि, बलसत्तके समाधिबलं, युगनद्धदुके समथो, विरियसमथदुके अविक्खेपो । पञ्चा इन्द्रियदुके पञ्चिन्द्रियं, मग्गपञ्चके सम्मदिट्ठि, बलसत्तके पञ्चाबलं, हेतुत्तिके अमोहो, कम्मपथत्तिके सम्मादिट्ठि, उपकारदुके सम्पजञ्जं, युगनद्धदुके विपस्सना ति ।

चित्तं वितक्को सद्धा च, हिरोत्तप्पं दुहेतुयो ।

इमे द्विट्टानिका सत्त, तिट्टानिका च वेदना ॥

विरियं सति चतुट्टाना, छट्टानेकग्गता पि च ।

सत्तट्टाना मति वुत्ता भिन्ना द्वादसधा इमे ति ॥

पठमचित्तं निवृत्तं ।

दुतिये 'ससङ्खारिकं' ति विसेसे । ततिये सोमनस्स सहगते त्राणविप्पयुत्ते असङ्खारिके पदविभागतो एकूनपञ्चास पदानि होन्ति; असम्भन्नपदानि एकूनतिसा होन्ति; तेसु अविभक्तिकानि अट्टारस, सविभक्तिकानि एकादस : सत्तट्टानिका पञ्चा परिहीना; एत्तकं नानाकरणं । चतुत्थे 'ससङ्खारिकं' ति विसेसे । पञ्चमे उपेक्खासहगते त्राणसम्पयुत्ते असङ्खारिके पञ्चपञ्चास पदानि होन्ति, यथा : फस्सो वेदना सञ्जा

१. B. °सद्धि चित्तपस्सद्धादयो ।

संकाय पत्रिका-२

चेतना चित्तं वितक्को विचारो उपेक्खा चित्तस्सेवग्गता सद्धा विरियं सति समाधि पञ्जा मनिन्द्रियं उपेक्खिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं सम्मादिट्ठीति एवमादयो पठमचित्तसदिसा । ज्ञानपञ्चके पीतिपरिहीनत्ता चतुरङ्गिकं ज्ञानं होति^१ । असम्भन्नपदानि एकूनतिसा होन्ति, अविभक्तिकानि सत्तरस, सविभक्तिकानि द्वादस, एत्तकं नानाकरणं । छट्ठे 'ससङ्खारिक' ति विसेसो । सत्तमे उपेक्खासहगते त्राणविप्पयुत्ते असङ्खारिके अट्टुचत्तालीस पदानि होन्ति, असम्भन्नपदानि अट्टुवीसति होन्ति; पीतिया च त्राणस्स च परिहीनत्ता अविभक्तिकानि सत्तरस सविभक्तिकानि एकादस । अट्टुमे 'ससङ्खारिक' ति विसेसो ।

कामावचर-चित्तकथा निट्ठता ।

रूपावचर-पठमज्ज्ञानं कामावचर-कुसलचित्तसदिसं ।

दुतियज्ज्ञाने चतुपञ्जास पदानि होन्ति । द्विट्ठानिकस्स वितक्कस्स परिहीनत्ता चतुरङ्गिकं ज्ञानं होति, चतुरङ्गिको मग्गो होति, असम्भन्नपदानि एकूनतिसा होन्ति; अविभक्तिकानि अट्टारस; सविभक्तिकानि एकादस ।

ततियज्ज्ञाने तेपञ्जास पदानि होन्ति । वितक्क-विचारपरिहीनत्ता तिवाङ्गिकं ज्ञानं हाति । असम्भन्नपदानि अट्टुवीसति होन्ति; अविभक्तिकानि सत्तरस, सविभक्तिकानि एकादस ।

चतुत्थज्ज्ञाने द्वेपञ्जास पदानि होन्ति । पीतिया च परिहीनत्ता दुवङ्गिकं ज्ञानं होति । असम्भन्नपदानि सत्तवीसति होन्ति; अविभक्तिकानि सोळस, सविभक्तिकानि एकादस ।

इमेसु चतुसु ज्ञानेसु चत्तारो नियतयेवापनका सब्बदा उप्पज्जन्ति; करुणा मुदिता अनियतयेवापनका अपमञ्जाभावनाकाले नाना उप्पज्जन्ति ।

पञ्चमज्ज्ञाने द्वेपञ्जास पदानि होन्ति, वेदना ज्ञानङ्गेषु उपेक्खा होति, इन्द्रियेषु उपेक्खिन्द्रियं होति; असम्भन्नपदानि सत्तवीसति होन्ति, अविभक्तिकानि सोळस, सविभक्तिकानि एकादस, नियतयेवापनका चत्तारो येव सब्बदा उप्पज्जन्ति ।

रूपावचर-कुसलचेतसिका निट्ठता ।

१. B. पीतिपरिहीना तथा चतुरङ्गिकज्ञानं होति, परिहीना तथा चतुरङ्गा सम्भन्नपदानि ।

अरूपावचरानि चत्वारि ज्ञानानि^१ रूपावचर-पञ्चकज्ज्ञानसदिस-चेतसिकानि; आरम्भमेव आकासादि तेषां नानाकरणं ।

सोतापत्तिमग्गचित्तो सहजातधम्मा समसट्ठिपदानि होन्ति । रासितो सत्तरस रासी होन्ति । चत्तारो धम्मा अधिका उपज्जन्ति, सम्मावाचा सम्माकम्मन्तो सम्मा-आजीवो अनञ्जातञ्जस्सामीतिन्द्रयं च । कस्मा वा मग्गो अट्टङ्गिको मग्गो होति ? नविन्द्रिया होन्ति ? असम्भिन्नपदानि तेषां होन्ति ? सम्मावाचादीनां पविट्ठत्ता अविभत्तिकानि एकवीसति, सविभत्तिकानि द्वादस । सकदागामि-अनागामि-अहरत्ता-मग्गा पि सोतापत्तिमग्गसदिसा व । इन्द्रियेषु अञ्जिन्द्रियं होति, एत्तकं नानाकरणं । एतेसु चतूसु मग्गोस छन्दादयो चत्तारो नियतयेवापनका उपज्जन्ति ।

कुसलचेतसिका निट्ठिता ।

सोमनस्ससहगते दिट्ठिगतसम्पयुत्ते अनङ्गारिके द्वित्तिस धम्मा होन्ति, यथा: फस्सो वेदना सञ्जा चेतना चित्तं वितक्को विचारो पीति सुखं चित्तेकग्गता विरियिन्द्रियं समाधिन्द्रियं मनिन्द्रियं सोमनस्सिन्द्रियं (जीवितिन्द्रियं) मिच्छादिट्ठि मिच्छासङ्कप्पो मिच्छावायामो मिच्छासमाधि विरियबलं समाधिबलं अहिरिकबलं अनोत्तप्पबलं लोभो मोहो अभिज्झा मिच्छादिट्ठि अहिरिकं अनोत्तप्पं समथो पग्गाहो अविक्खेपो चेति ।

रासितो नव रासी होन्ति : फस्सपञ्चकरासि ज्ञानपञ्चकरासि इन्द्रियपञ्चकरासि मग्गचतुक्करासि बलचतुक्करासि हेतुदुकरासि कम्मपथदुकरासि कण्हदुकरासि पिट्ठित्तिकरासि चेति । सोळस असम्भिन्नपदानि होन्ति : फस्सो वेदना सञ्जा चेतना चित्तं वितक्को विचारो पीति चित्तास्सेकग्गता विरियिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं मिच्छादिट्ठि अहिरिकं अनोत्तप्पं लोभो मोहो चेति । तेसु अविभत्तिकानि सत्ता, सविभत्तिकानि नव : फस्सो सञ्जा चेतना विचारो पीति जीवितिन्द्रियं मोहो चेति इमे सत्ता अविभत्तिका धम्मा; वेदना चित्तं वितक्को चित्तास्सेकग्गता विरियिन्द्रियं मिच्छादिट्ठि अहिरिकं अनोत्तप्पं लोभो चेति इमे नव सविभत्तिका नाम ।

तत्थ चित्तं फस्सपञ्चके चित्तं, इन्द्रियपञ्चके मनिन्द्रियं । वितक्को ज्ञान-पञ्चके वितक्को, मग्गचतुक्के मिच्छासङ्कप्पो । मिच्छादिट्ठि मग्गचतुक्के मिच्छादिट्ठि ।

१. आदासपोत्थके : रूपावचरानि पञ्चकज्ज्ञानसदिसानि चेतसिकानि ।

संकाय पत्रिका-२

कम्मपथदुके मिच्छादिट्ठि । अहिरिकं बलचतुक्के अहिरिकबलं, कण्हदुके अहिरिकं । अनोत्तप्पं बलचतुक्के अनोत्तप्पबलं, कण्हदुके अनोत्तप्पं । लोभो हेतुदुके लोभो, कम्मपथदुके अभिज्झा । वेदना फस्सपञ्चके वेदना, ज्ञानपञ्चके सुखं, इन्द्रियपञ्चके सोमनस्सिन्द्रियं । विरियं इन्द्रियपञ्चके विरियिन्द्रियं, मग्गचतुक्के मिच्छावायामो, बलचतुक्के विरियबलं, पिट्ठित्तिके पग्गाहो । समाधि ज्ञानपञ्चके चित्तोकग्गता, इन्द्रियपञ्चके समाधिन्द्रियं, मग्गचतुक्के मिच्छासमाधि, बलचतुक्के समाधिबलं, पिट्ठित्तिके समथो अविकखेपो चेति ।

चित्तं वितक्को दिट्ठि अहिरिकं अनोत्तप्पं लोभो चेति इमे छ द्विट्ठानिका वेदना तिट्ठानिका, [विरियं चतुट्ठानिकं, एकग्गता पञ्चट्ठानिका]^१ दित्थे 'ससङ्खारिकं' ति विसेसो^२ ।

सोमनस्ससहगतेसु द्वीसु दिट्ठिगतविप्पयुत्तेसु द्विट्ठानिका दिट्ठिपरिहीना तिस पदानि होन्ति, पण्णरस असम्भिन्नपदानि होन्ति, अविभत्तिकानि सत्ता, सविभत्तिकानि अट्ठ, फस्सो सञ्ज्जा चेतना विचारो पीति जीवित्तिन्द्रियं मोहो चेति इमे सत्ता अविभत्तिका धम्मा; वेदना चित्तं वितक्को एकग्गता विरियिन्द्रियं अहिरिकं अनोत्तप्पं लोभो चेति इमे अट्ठ सविभत्तिका धम्मा ।

उपेक्खासहगतेसु द्वीसु दिट्ठिगतसम्पयुत्तेसु पीतिपरिहीना एकतिस पदानि होन्ति । वेदना ज्ञानङ्गे उपेक्खा होति, इन्द्रियेसु उपेक्खिन्द्रियं होति । पण्णरस असम्भिन्नपदानि होन्ति, छ अविभत्तिकानि, नव सविभत्तिकानि उपेक्खासहगतेसु द्वीसु दिट्ठिगतविप्पयुत्तेसु दिट्ठिपरिहीना एकूनतिस पदानि होन्ति ।

द्वीसु दोमनस्ससहगतेसु एकूनतिस पदानि होन्ति : फस्सो वेदना सञ्ज्जा चेतना चित्तं वितक्को विचारो दुक्खं चित्तस्सेकग्गता विरियिन्द्रियं समाधिन्द्रियं मनिन्द्रियं दोमनस्सिन्द्रियं जीवित्तिन्द्रियं मिच्छासङ्कप्पो मिच्छावायामो मिच्छासमाधि विरियबलं समाधिबलं अहिरिकबलं अनोत्तप्पबलं दोसो मोहो व्यापादो अहिरिकं अनोत्तप्पं समथो पग्गाहो अविकखेपो चेति । चुट्ठस असम्भिन्नपदानि होन्ति, यथा : फस्सो वेदना सञ्ज्जा चेतना (चित्तं) वितक्को विचारो चित्तस्सेकग्गता विरियिन्द्रियं जीवित्तिन्द्रियं अहिरिकं

१. आदासपोत्थके : चतुट्ठानेकग्गता । आदासपोत्थके : सम्पयुत्तेसु ।

२. B. adds the verse :

विरियं चतुट्ठानिकं, छट्ठानेकग्गता पि च ।

नव धम्मा इमे वुत्ता, सम्भिन्ना हि महेसिना ॥ ति ।

अनोत्तप्यं दोसो मोहो चेति । छ अविभक्तिका, अट्ट सविभक्तिका च, यथाः फस्सो सञ्जा चेतना विचारो जीवितिन्द्रियं मोहो ति इमे छ अविभक्तिका धम्मा । वेदना चित्तं वितक्को चित्तस्सेकगता विरियिन्द्रियं अहिरिकं अनोत्तप्यं दोसो इमे अट्ट सविभक्तिका धम्मा ।

विचिकिच्छासहगते तेवीसति पदानि होन्तिः फस्सो वेदना सञ्जा चेतना चित्तं वितक्को विचारो उपेक्खा चित्तस्सेकगता विरियिन्द्रियं मनिन्द्रियं^१ उपेक्खिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं मिच्छासङ्कप्पो मिच्छावायामो^२ विरियबलं अहिरिकबलं अनोत्तप्यबलं विचिकिच्छा मोहो अहिरिकं अनोत्तप्यं पग्गाहो चेति । चुद्दस असम्मिन्नपदानि होन्ति, यथाः फस्सो वेदना सञ्जा चेतना चित्तं वितक्को विचारो चित्तस्सेकगता विरियिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं विचिकिच्छा मोहो अहिरिकं अनोत्तप्यं चेति । अट्ट अविभक्तिकानि, छ सविभक्तिकानि : फस्सो सञ्जा चेतना विचारो चित्तेकगता जीवितिन्द्रियं विचिकिच्छा मोहो : इमे अट्ट अविभक्तिका धम्मा । वेदना चित्तं वितक्को विरियिन्द्रियं अहिरिकं अनोत्तप्यं : इमे छ सविभक्तिका धम्मा । चित्तेकगता ठितिमत्तमेव होति; समाधिन्द्रियादीनि पञ्चट्टानानि परिहायन्ति ।

उद्धच्चसहगते अट्टवीसति पदानि होन्ति : फस्सो वेदना सञ्जा चेतना चित्तं वितक्को विचारो उपेक्खा चित्तेकगता विरियिन्द्रियं समाधिन्द्रियं मनिन्द्रियं उपेक्खिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं मिच्छासङ्कप्पो मिच्छावायामो मिच्छासमाधि विरियबलं समाधिबलं अहिरिकबलं अनोत्तप्यबलं उद्धच्चं मोहो अहिरिकं अनोत्तप्यं समथो पग्गाहो अविकखेपो चेति । चुद्दस असम्मिन्नपदानि होन्ति : फस्सो वेदना सञ्जा चेतना चित्तं वितक्को विचारो चित्तस्सेकगता विरियिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं उद्धच्चं मोहो अहिरिकं अनोत्तप्यं चेति; सत्त अविभक्तिकानि, सत्त सविभक्तिकानि । फस्सो सञ्जा चेतना विचारो जीवितिन्द्रियं उद्धच्चं मोहो चेति इमे सत्त अविभक्तिका धम्मा; वेदना चित्तं वितक्को एकगता विरियिन्द्रियं अहिरिकं अनोत्तप्यं चेति इमे सत्त सविभक्तिका धम्मा ।

छन्दो अधिमोक्खो उद्धच्चं मनसिकारो इस्सा मच्छरियं मानो थीनं मिद्धं कुक्कुच्चं चेति इमे दस अकुसला येवापनका । छन्दो अधिमोक्खो उद्धच्चं मनसिकारो थीनं मिद्धं चेति इमे छ येवापनका पञ्चसु ससङ्घारिकेसु अकुसलेसु उप्पज्जन्ति । असङ्घारिकेसु पञ्चसु थीनं मिद्धं अपनेत्वा सेसा चत्तारो होन्ति । चतुसु दिट्ठिगतविप्पयुत्तेसु लोभसहगतेसु मानो उप्पज्जति । इस्सा मच्छरियं कुक्कुच्चं चेति इमे तयो

१. B. omits.

२. P. adds मिच्छासमाधि ।

द्वीसु दोमनस्ससहगतचित्तेसु नाना हुत्वा उप्पज्जन्ति । उद्धच्चसहगते अधिमोक्खो मनसिकारो च द्वे उप्पज्जन्ति ।

अकुसल-चेतसिका निट्ठिता ।

कुसलविपाके चक्खुविञ्जाणे दस धम्मा होन्ति : फस्सो वेदना सञ्जा चेतना उपेक्खा चित्तेकग्गता मनिन्द्रियं उपेक्खिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं मनसिकारो चेति । तयो रासी होन्ति : फस्स पञ्चकरासि, ज्ञानदुकरासि, इन्द्रियतिकरासि चेति । सत्त असन्निभन्नपदानि होन्ति : फस्सो वेदना सञ्जा चेतना चित्तं एकग्गता जीवितिन्द्रियं चेति । पञ्च अविभत्तिकानि : फस्सो सञ्जा चेतना एकग्गता जीवितिन्द्रियं ति, द्वे सविभत्तिकानि : वेदना चित्तं चेति । सोत-घान-जिह्वाविञ्जाणानि चक्खुविञ्जाण-सदिसानि । कुसलविपाके कायविञ्जाणे सुखा वेदना होति, सुखिन्द्रियं होति, एत्तकं नानाकरणं । कुसलविपाके मनोधातुसम्पटिच्छनावित्ते वितक्कविचारेहि सह द्वादस धम्मा होन्ति, सेसं चक्खुविञ्जाणसदिसं । कुसलविपाकाहेतुक-मनोविञ्जाणधातु-सोमनस्ससहगत-चित्ते पीतिया सह तेरस धम्मा होन्ति, सुखवेदना होति, सोमनस्सिन्द्रियं होति, एत्तकं नानाकरणं । कुसलविपाकाहेतुक-मनोविञ्जाणधातु-उपेक्खासहगते मनोधातुसदिसा^१ ति । अट्ट महाविपाकचित्तानि कामावचर-कुसलसदिसानि । रूपावचर विपाकानि रूपावचर-कुसलसदिसानि । अरूपावचर-विपाकानि अरूपावचर-कुसलसदिसानि । चत्तारि लोकुत्तरविपाकानि लोकुत्तरकुसल-सदिसानि । चतुत्थे^२ विपाके अञ्जाताविन्द्रियं होति, एत्तकं नानाकरणं ।

कुसलविपाकचेतसिका निट्ठिता ।

अकुसलविपाकानि चक्खु-सोत-घाण-जिह्वाविञ्जाणानि कुसलविपाकस-दिसानि, इध अनिट्ठारम्मणे येव उप्पज्जन्ति, इदं तेसं नानाकरणं । अकुसलविपाके कायविञ्जाणे दुक्खा वेदना होति, दुक्खिन्द्रियं होति, एत्तकं नानाकरणं । सम्पटि-च्छना सन्तीरणानि द्वे पि कुसलविपाकसदिसानि ।

अकुसलविपाकचेतसिका निट्ठिता ।

१. टीकायं : इतरानि मनोविञ्जाणधातु-सन्तीणचित्तानि मनोधातुसदिसानि ।
२. B. अरहत्तफले ।

संकाय पत्रिका-२

किरियाहेतुक-मनोधातु सम्पटिच्छनसदिसा । किरियाहेतुक-मनोविञ्ज्राणधातु-सोमनस्ससहगते चित्ते पञ्चदस धम्मा होन्ति : फस्सो वेदना सञ्जा चेतना चित्तं वितक्को विचारो पीति सुखं चित्तेकग्गता विरियिन्द्रियं समाधिन्द्रियं मनिन्द्रियं सोमनस्सिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं चेति । तयो रासी होन्ति : फस्सपञ्चकरासि, ज्ञानपञ्चकरासि, इन्द्रियपञ्चकरासि चेति । एकादस असम्भिन्नपदानि होन्ति : फस्सो वेदना सञ्जा चेतना चित्तं वितक्को विचारो पीति चित्तास्सेकग्गता विरियिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं चेति । अट्ठ अविभक्तिकानि : फस्सो सञ्जा चेतना वितक्को विचारो पीति विरियिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं चेति । तीणि सविभक्तिकानि : वेदना चित्तं एकग्गता चेति, इमे तयो सविभक्तिका धम्मा । चित्तेकग्गता तिट्ठानिका, वेदना तिट्ठानिका । किरियाहेतुक-मनोविञ्ज्राणधातु-उपेक्खासहगता इमेहेव सदिसा पीति-परिहीना उप्पज्जति । अवसेसानि किरियचित्तानि सभूमिक-कुसलसदिसानि येव उप्पज्जन्ति । द्विपञ्चविञ्ज्राणेसु मनसिकारा एको येवापनको उप्पज्जति । सेसेसु परित्ताविपाककिरियेसु च अधिमोक्खो मनसिकारो जायन्ति । अट्ठमहाविपाकेसु अट्ठमहाकिरियेसु च महग्गत-विपाककिरियचित्तेसु च विरतिवज्जा सेसा कुसल-सदिसा येव उप्पज्जन्ति । कामावचरविपाकेसु^१ महाकिरियेसु च तिस्सो विरतियो न उप्पज्जन्ति, एकन्तकुसलत्ता; अप्पमञ्जायो च^२ कामावचर-महाविपाकेसु न उप्पज्जन्ति, एकन्तपरित्तारम्मणत्ता । चत्तसु उपेक्खासहगतेसु महाकिरियेसु करुणा मुदिता न दिस्सन्तीति वदन्ति । लोकुत्तारविपाकचित्तेसु कुसलसदिसा येव उप्पज्जन्ति ।

किरियचेतसिका निट्ठिता^३ ।

१. पठवापो तेजो च, वायोधातु तथेव च ।
महाभूतानि एतानि, चत्तारीति पवुच्चरे ॥
२. चक्खु सोतञ्च घानञ्च, जिह्वा कायो तथेव च ।
वण्णो सद्दो रसो गन्धो, इत्थिपुरिसिन्द्रियं तथा ॥

१. B. महाविपाकेसु ।

२. B. S. छ ।

३. टीकायं : चित्तचेतसिककथा निट्ठिता ।

३. जीवितं चैव विञ्जति, आकासो लहुता पि च ।
मुदु कम्मञ्जता चैव, उपचयो सन्तती जरा ॥
४. अनिच्चता च ओजा च, वत्थुरूपं तथैव च ।
चतुवीसति एतानि, उपादा ति पवुच्चरे ॥
५. बला सम्भवा जाती च, रोगरूपञ्च यं मत्तं^१ ।
वायो-वारिद्वय^२-भेदेहि, सङ्गहितानि यथक्कमं ॥
६. रूपं सद्दो गन्ध-रसा, पठवी च तथैव च ।
तेजो वायो च एतानि, पञ्च चक्खादिकानि च ॥
७. सप्पटिघानि वुच्चन्ति, तथा ओळारिकानि च ।
सोळस अवसेसानि, सुखुमाप्पटिघानि च ॥
८. चक्खादिकानि पञ्चैव, अञ्जत्तिकानि वुच्चरे ॥
तेवीसतवसेसानि^३, बहिद्धानेव होन्ति ति ॥
९. रूपं सनिदस्सनं वुत्तं, अवसेसा निदस्सनं ।
सत्तवीसविधं होति, तं सब्बं परिपिण्डितं ॥
१०. अट्ठिन्द्रियानि वत्थुञ्च, कम्मनेव भवन्ति हि ।
विञ्जत्तियो तथा द्वे पि, चित्तेनेव भवन्ति हि ॥
११. सद्दो उतुञ्च चित्तञ्च, उपादा जायते हि सो ।
लहुता चैव मुदुता, कम्मञ्जता तथैव च ।
उतुं चित्तञ्च आहारं, उपादा पभवन्ति हि ॥
१२. वण्णो गन्धो रसो चैव, पठवी तेजो च मालुतो ॥
उपचयो सन्तती आपो, ओजाकासं चतूहि तु ॥
१३. चित्तं चित्तजरूपानं, उप्पादे होति पच्चयो ।
चित्तस्स तिकखणे कम्मं, उतु ओजा ठित्तिकखणे ॥
१४. कम्मने वीसती होन्ति, चित्तेन दस सत्त च ।
पण्णरस उतुना च, आहारेण चतुद्दस ।
जरतानिच्चता चैव, न केहिचि भवन्ति हि ॥

१. टीकायं सम्मतं । उपा आय भवन्ति हि ।

२. B. चय ।

३. तेवीस अवसेसानि ।

१५. यानि कम्मेन चित्तेन, अरूपेहेतानि^१ होन्ति हि ।
आहारजा^२ उत्तुजानि, रूपेहि तु भवन्ति हि ॥
न सम्भोन्ति रूपारूपेहि^३, जरतानिच्चता पि च ॥
१६. ओळारिकानि वत्थुच्च, ओजा तीणिन्द्रियानि च ।
आपोधातु च एतानि, रूपारूपन्ति वुच्चरे ॥
१७. विञ्जत्तियो दुवे चैव, लहुता कम्मञ्जता पि च ।
मुदुता उपचयो चैव, सन्तती च तथा पुन ॥
विकाररूपानेतानि सत्तेव तु भवन्ति हि ॥
१८. जरतानिच्चता चैव, लक्खणरूपन्ति वुच्चरे ।
परिच्छेदरूपमाकासं, एकं येव तु दीपितं ॥
१९. चतुधा होन्ति कम्मानं^४, रूपानञ्च तिधा पन ।
असञ्जिनं तथा द्वीहि, बहिद्धा उतु नेव तु ॥
२०. समत्तिसाति रूपानि, जायन्ति पटिसन्धिया ।
ठित्तिक्खणे च भेदे^५ च, तिस तिसेव होन्ति हि ॥
२१. कायदसकं भावदसकं, वत्थुदसकमेव च ।
एवं नवुति रूपानि, कम्मजानेव सन्धिया ॥
२२. यथा पटिच्च बीजानि, जायते अङ्कुरो परो ।
तथा पटिच्च सुक्कादि, कलला जायरे इमे ॥
२३. सन्धिचित्तस्स दुतियं, भवङ्गं ति पवुच्चति ।
तेनट्ठरूपा जायन्ति, उतु ओजा हि सोळस ॥
२४. कम्मजा नवुति चैव, एवं जायति आचयो ।
सभुत्ताहारं निस्साय, मातुज्जाहतनिस्सितं ।

१. S. B. अरूपे तानि (न युज्जति)

२. आ आ अजा ।

३. S. B. रूपारूपे । (न युज्जति)

४. B. & टीका—कामिनं ।

५. B. भङ्गे ।

- एकद्वीहं अतिक्कम्म, अट्ठरूपानि जायरे ॥
 वत्थुदसकं^१ कायदसकं, भावदसकमेव च ।
२५. चक्खुमिह कम्मजा होन्ति, सम्भारा चतुवीसति ।
 चतुपञ्चास सब्बानि, पिण्डितानि भवन्ति हि ॥
२६. ततो^२ सोते च घाणे च, जिह्वावत्थुमिह जायरे ।
 कायमिह तु द्वे दसका, ति सम्भारानि होन्ति हि ॥
 चतुचत्ताळीस सब्बानि, पिण्डितानि भवन्ति हि ॥
२७. चक्खादिकानि चत्तारि, वत्थुरूपं तथेव च ।
 एकट्ठानिकरूपानि, पञ्चेव तु भवन्ति हि ॥
२८. कायो इत्थिपुमत्तञ्च, जीवितिन्द्रियमेव च ।
 सब्बट्ठानिकरूपानि, इमानि तु भवन्ति हि ॥

नामरूपसमासो समत्तो ।

१. चक्खुदसकं ।

२. B. & टीका—तथा ।

NOTE. Pages 9, 14 nn. : आदासपोत्थके ति सीहलक्खरेहि मुद्दापिते
 नामरूपसमासे अत्थि अभिघम्मपकरणागत-पोत्थकेसू ति मञ्जे ।

ये धम्मा हेतुप्पभवा हेतुं तेसं तथागतो आह ।
तेसं च यो निरोधो एवंवादी महासमणो ॥

विसयानुवकमणिका

प्राक्कथन ७५	बलसत्तकरासि ८३
एकूननवुति चित्तानि ७७	हेतुत्तिकरासि ८३
अट्ठ कामावचरकुसल चित्तानि ७७	कम्मपथत्तिकरासि ८३
पञ्च रूपावचरकुसलचित्तानि ७७	लोकपालदुकरासि ८३
चत्तारि अरूपावचरकुसलचित्तानि ७७	छयुगलदुकरासि ८३
चत्तारि लोकुत्तरकुसलचित्तानि ७७	उपकारदुकरासि ८३
द्वादश अकुसलचित्तानि ७८	युगनद्धदुकरासि ८३
अट्ठ लोभसहगतचित्तानि ७८	विरियसमथदुकरासि ८३
द्वे पटिघसम्पयुत्तचित्तानि ७८	नियतयेवापनका ८३
द्वे एकहेतुकचित्तानि ७८	अनियतयेवापनका ८३
छत्तिस विपाकचित्तानि ७८	चित्तं ८४, ८६
अट्ठ अहेतुककुसलविपाकचित्तानि ७८	वितक्को ८४, ८६
अट्ठ सहेतुककुसलविपाकचित्तानि ७९	सद्धा ८४
सत्त अकुसलविपाकाहेतुकचित्तानि ७९	हिरि ८४
पञ्च रूपावचरविपाकचित्तानि ७९	ओत्तप्पं ८४
चत्तारि अरूपावचरविपाकचित्तानि ७९	अलोभो ८४
चत्तारि लोकुत्तरफलचित्तानि ७९	अदोसो ८४
वीसति किरियाचित्तानि ७९	वेदना ८४, ८७
तीणि अहेतुककिरियचित्तानि ७९	विरियं ८४, ८७
पञ्च रूपावचरकिरियचित्तानि ७९	सति ८४
चत्तारि अरूपावचरकिरियचित्तानि ७९	समाधि ८४, ८७
चित्तचेतसिककथा ८२	पञ्जा ८४
फस्सपञ्चकरासि ८२	मिच्छादिट्ठि ८६
ज्ञानपञ्चकरासि ८३	अहिरीकं ८७
इन्द्रियट्ठकरासि ८३	अनोत्तप्पं ८७
मगगपञ्चकरासि ८३	लोभो ८७

अकारादिकमेन गन्थागतगाथद्वय सूची

अट्ठिन्द्रियानि वत्थुं च ९१
 अनिच्चता च ओजा च ९१
 ओळारिकानि वत्थुं च ९२
 कम्मजा नवुति च ९२
 कम्मेन वीसति होति ९१
 कायदसकं भावदसकं ९२
 कायो इत्थिपुमत्तञ्च ९३
 गम्भीरं निपुणं धम्मं ७७
 चक्खादिकानि चत्तारि ९३
 चक्खादिकानि पञ्चेव ९१
 चक्खुम्हि कम्मजा होन्ति ९३
 चक्खु सीतं च घानं च ९०
 चतुधा होन्ति कम्मानं ९२
 चित्तं चित्तजरूपानं ९१
 जरतानिच्चता च ९२

जीवितं च ११
 ततो सोते च घाने च ९३
 नमस्सित्तवान तं नाथं ७७
 पठवापो तेजो च ९०
 बला सम्भवा जाति च ९१
 यथा पटिच्च बीजानि ९२
 यानि कम्मेन चित्तेन ९२
 रूपं सद्दो गन्धरसा ९१
 रूपं सनिदस्सनं वुत्तं ९१
 वण्णो गन्धो रसो च ९१
 विञ्जत्तियो दुवे च ९२
 सद्दो उतुञ्च चित्तं च ९१
 सन्धिचित्तस्स दुतियं ९२
 सप्पटिघानि वुच्चन्ति ९१
 समत्तिसा ति रूपानि ९२

KASĀYAPĀHUDASUTTAM
[A Jaina Philosophical Text in Prakrit]
of
ĀCĀRYA GUṆADHARA

Edited by

Dr. GOKUL CHANDRA JAIN
Dr. Smt. SUNITA JAIN

ŚAMPŪRNANAND SANŚKRIT VISHVAVIDYALAYA
VARANASI

आचार्य गुणधर विरचित
कसायपाहुडसुत्तं
[प्राकृतभाषा निबद्ध जैन सिद्धान्त ग्रन्थ]

सम्पादन
डां. गोकुलचन्द्र जैन
डां. श्रीमती सुनीता जैन

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

प्रस्तावना

कसायपाहुडसुत्तं की पाण्डुलिपियाँ

‘कसायपाहुडसुत्तं’ प्राकृत में निबद्ध जैन कर्म सिद्धान्त का प्राचीन ग्रन्थ है। वर्तमान में मूल ग्रन्थ की स्वतन्त्र रूप से एक भी हस्तलिखित प्राचीन प्रति उपलब्ध नहीं है। आचार्य वीरसेन-जिनसेन कृत जयधवला टीका की हडेगन्नड—प्राचीन कन्नड लिपि में ताडपत्रों पर उत्कीर्ण एक प्राचीन प्रति मूडबिद्रो, साउथ कनारा की सिद्धान्त-वसदि (अब रत्नत्रय वसदि) में सुरक्षित है।^१ इस टीका में कसायपाहुड के ‘गाहासुत्त’ तथा ‘चुणिसुत्त’ समाहित हैं। अन्य ग्रन्थ-भण्डारों में कागज पर कन्नड अथवा देवनागरी लिपि में लिखित जो प्रतियाँ उपलब्ध हैं, वे सब इसी ताडपत्रीय प्रति की प्रतिलिपियों से क्रमशः सन् १८९५ के बाद लिखी गयी हैं। जयधवला बृहत्काय टीका है, जिसका परिमाण सात हजार श्लोक प्रमाण बताया गया है।

कसायपाहुडसुत्तं का प्रकाशन

कसायपाहुडसुत्तं, यतिवृषभकृत चुणिसुत्त तथा वीरसेन-जिनसेन कृत जयधवला टीका देवनागरी लिपि में हिन्दी अनुवाद के साथ सोलह जिल्दों में प्रकाशित है।^२ टीका की प्रतिलिपि से गाहासुत्त तथा चुणिसुत्त संकलित करके स्व० पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री ने हिन्दी विवेचन के साथ प्रकाशन कराया था।^३ इसी के आधार पर स्व० पं० सुमेरुचन्द्र दिवाकर ने हिन्दी विवेचन के साथ ‘कसायपाहुडसूत्र’ का प्रकाशन कराया।^४

प्रस्तुत संस्करण

कसायपाहुडसुत्तं का प्रस्तुत संस्करण अध्ययन-अनुसन्धान की नवीन संभावनाओं के उद्देश्य से तैयार किया गया है। इसलिए इसकी प्रस्तुती अनुसन्धान सामग्री के रूप में है। इसमें क्रमशः मूल प्राकृत गाथायें, हिन्दी भावानुवाद, गाथानु-

१. कन्नडप्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थसूची, संख्या ७, पृ० २१५, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सन् १९४८।
२. भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ, चौरासी, मथुरा, सन् १९८४ से।
३. वीरशासन संघ, कलकत्ता, १९५५।
४. श्रुतभण्डार तथा ग्रन्थप्रकाशन समिति, फलटन, सन् १९६८।

क्रम तथा शब्दानुक्रम दिया गया है। प्रस्तावना में ग्रन्थ और ग्रन्थकार से सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर संक्षेप में विचार किया गया है।

कसायपाहुड की जयधवला टीका को आधार मानकर परम्परा से जितनी 'सुत्तगाहा' कसायपाहुड का अंग मानी जाती हैं, उन्हें चूर्णित तथा टीका से अलग करके मूल रूप में यहाँ प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत संस्करण में कुल २४५ प्राकृत गाथाएँ दी गयीं हैं। इन गाथाओं में से कुछ को टीका में 'सुत्तगाहा' तथा कुछ को 'भासगाहा' कहा गया है। १२ गाथाएँ 'चूलिया' कही गयी हैं। 'चूलिया' की दस गाथाएँ किञ्चित् पाठ-भेद के साथ पूर्व की गाथाओं में भी आयी हैं।

टीका में जिन्हें भासगाहा कहा गया है, वे सुत्तगाहा के कथ्य से जुड़ी हुई हैं। स्व० पं० हीरालाल शास्त्री ने सुत्तगाहा तथा भासगाहा को मूल ग्रन्थ का अंग माना है। वर्तमान के अध्ययन ग्रन्थों के परिशिष्ट की तरह विषय से सम्बद्ध अवशिष्ट सामग्री को ग्रन्थान्त में 'चूलिया' के नाम से देने की प्राचीन परम्परा रही है। यह अनुसन्धान का विषय है कि इन गाथाओं में से कितनी गाथाएँ मूल कसायपाहुडसुत्त की हैं।

कसायपाहुडसुत्त का परिमाण

दूसरी गाथा में पन्द्रह अर्थों में विभक्त १८० गाथाओं का कथन है। इस आधार पर मूल ग्रन्थ का परिमाण १८० गाथा माना जाता रहा है। जयधवला टीका में कहा गया है कि सोलह हजार पद प्रमाण 'पेज्जपाहुड' को गुणधर ने १८० गाथाओं में उपसंहृत किया—

“पेज्जदोसपाहुडं सोलहपदसहस्रपमाणं होतं असीदिशतगाहाहि उपसंधारिदं।”^५

वीरसेनाचार्य को परम्परा से २३३ गाथाएँ उपलब्ध हुईं। जयधवला में उन्होंने स्वयं यह प्रश्न उठाया है कि जब कसायपाहुड की गाथा संख्या २३३ थी तो गुणधराचार्य ने ग्रन्थ के आरम्भ में १८० गाथाओं का ही निर्देश क्यों किया। प्रश्न का स्वयं ही समाधान करते हुए लिखा है कि पन्द्रह अधिकारों में विभक्त गाथाओं का निर्देश करने की दृष्टि से गुणधराचार्य ने १८० गाथा संख्या का निर्देश किया है, किन्तु बारह सम्बन्ध गाथाएँ और अद्धापरिमाण का निर्देश करने वाली छह गाथाएँ पन्द्रह अधिकारों में से किसी भी अधिकार से बद्ध नहीं, अतः उनको छोड़ दिया गया है।^६ २३३ गाथाओं की संगति निम्न प्रकार बैठायी जाती है—

५. कसा० पा०, भाग १, पृ० ८७।

६. कसा० पा० भाग १, पृ० १८२, १८३।

पन्द्रह अधिकारों की मूल गाथाएँ	९२
भाष्य गाथाएँ	८६
सम्बन्ध गाथाएँ	१२
अद्धापरिमाण निर्देशक गाथाएँ	६
संक्रमवृत्ति से सम्बद्ध गाथाएँ	३५
नाम निर्देश करने वाली गाथाएँ	२
योग	
	२३३

जयधवला टीका के रचयिता वीरसेनाचार्य के अनुसार इन समस्त गाथाओं के रचयिता आचार्य गुणधर थे ।

कसायपाहुड की गाथाओं पर विचार करते हुए स्व० पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री ने लिखा है कि क्या इन गाथाओं में कुछ गाथाएँ नागहस्ति कृत भी हैं ? इस प्रश्न पर विचार करने से ज्ञात होता है कि जयधवला के अनुसार वीरसेन स्वामी से पहले होने वाले कुछ टीकाकारों का ऐसा मत रहा है कि एक सौ अस्सी गाथाओं के सिवाय जो शेष त्रेपन गाथाएँ हैं, वे नागहस्ति कृत हैं । वीरसेन ने इसका निराकरण किया है ।

“असीदिसदगाहाओ मोत्तूण अवसेससंबंद्धापरिमाणणिद्देससंकमणगाहाओ जेण णागहत्थिआइरियकथाओ तेण ‘गाहासदे आसीदे’ त्ति भणिदूण णागहत्थिआइरिएण पइज्जा कदा इदि के वि ववलाणाइरिया भर्णाति, तण्ण घडदे ।”^{१७}

कसायपाहुड का स्रोत और परम्परा

कसायपाहुड के सम्बन्ध में जो जानकारी उपलब्ध है, उससे ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में जैन श्रमण परम्परा में इसकी सर्वसम्मत मान्यता रही । सम्भवतया कर्मसिद्धान्त और कसायपाहुड के विशेषज्ञ आचार्यों की विशेष परम्परा थी । वर्तमान में कसायपाहुड नाम से जो गाहासुत्त उपलब्ध हैं, उनका एकमात्र आधार वीरसेन-जिनसेन की जयधवला टीका है । इस टीका में कसायपाहुड के ‘गाहासुत्त’ तथा यतिवृषभकृत ‘चुणिसुत्त’ समाहित हैं । इस टीका से कसायपाहुड की प्राचीन परम्परा के सन्दर्भ में और भी महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है ।

कसायपाहुड के स्रोत के विषय में कहा गया है कि ‘पाँचवें पूर्व में दसमी षस्तु में ‘पेज्ज’ पाहुड में कसायपाहुड है ।’ (गाथा १) जैन आगम के द्वादश अंगों में बारहवाँ दृष्टिवाद है । इसके अन्तर्गत १४ पूर्व हैं । उनमें पाँचवें पूर्व का नाम ‘ज्ञान-

७. कसा० पा०, भाग १, पृ० १८३ ।

प्रवाद' है। इसी पूर्व की दशमी वस्तु में तीसरे पाहुड का नाम 'पेज्जपाहुड' है। इसी पाहुड के अन्तर्गत कसायपाहुड है। दृष्टिवाद और चौदह पूर्व वर्तमान में उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए अन्य स्रोतों से उनके विषय में प्राप्त जानकारी ही आधार भूत है।

जयधवलाकार को कसायपाहुड के गाहासुत्त तथा यतिवृषभ की चूर्णि उपलब्ध हुए और उन्होंने गाहासुत्त तथा चूर्णि दोनों को अपनी टीका में समाहित करके सुरक्षित कर दिया। इनकी प्राचीन परम्परा के सम्बन्ध में जयधवलाकार को जो जानकारी प्राप्त हुई, उसे भी अपनी टीका में निबद्ध किया है। उन्होंने लिखा है कि कसायपाहुड के गाहासुत्त गुरु-शिष्य परम्परा से आते हुए आर्य मंशु तथा नागहस्ति को प्राप्त हुए। उन दोनों के पादमूल में एक सौ अस्सी गाथाओं के अर्थ को सम्यक् प्रकार से सुनकर यतिवृषभ ने चूर्णिसूक्त बनाये।

“पुणो ताओ चैव सुत्तगाहाओ भाइरियपरंपराए आगच्छमाणीओ अज्ज-मंखुणागहत्थीणं पत्ताओ। पुणो तेसिं दोण्हं पि पादमूले असोदिसदगाहाणं गुणहर-मुहकमलविणिग्गयाणमत्थं सम्मं सोऊण जयिवसहभडारएण पवयणवच्छलेन चुण्णि-सुत्तं कयं।”^८

कसायपाहुड के गाहासुत्त मौखिक परम्परा द्वारा कंठस्थ करके दीर्घकाल तक सुरक्षित रखे गये। लिपि और लेखन कला के विकास के पूर्व महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों को कंठस्थ करके उन्हें सुरक्षित रखने के लिए उन्हें गाहासुत्त के रूप में गठित कर लिया जाता था। गाहासुत्त गेय होते थे। उनके उच्चारण और कंठस्थ करने की मुनिश्चित प्रक्रिया थी। उसके ज्ञाता 'उच्चारणाचार्य' कहे जाते थे। शिष्य उच्चारणाचार्य से गाहासुत्त धारण करता था। धारणा के बाद शिष्य की अर्थग्रहण-सामर्थ्य को समझकर 'सूक्त' के 'वागरण'—व्याख्या द्वारा शिष्य को अर्थ दिया जाता था। यह कार्य 'वागरणाचार्य' का था। शिष्य की प्रज्ञा, अर्थग्रहण-सामर्थ्य तथा उसके सदुपयोग का विनिश्चय करने के बाद गुरु शिष्य को 'सुत्त' की विस्तृत 'वाचना' देता था। एक ही गुरु शिष्य की पात्रता के अनुसार उसे 'सुत्त', 'वागरण' तथा 'वाचना' में से मात्र एक अथवा दो अथवा तीनों प्रदान कर सकता था। तीनों के लिए स्वतन्त्र रूप से 'उच्चारणाचार्य' 'वागरणाचार्य' तथा 'वाचकाचार्य' भी होते थे।

कसायपाहुड की उपलब्ध जयधवला टीका में सुरक्षित गाहासुत्त, चुण्णिसुत्त तथा गुणधर, आर्यमंशु, नागहस्ति और यतिवृषभ के सन्दर्भों से प्रतीत होता है कि

८. कसा० पा०, भाग १, पृ० ८८।

कसायपाहुड के एक सौ अस्सो गाहासुत्त 'वागरण' और 'वाचना' सहित वीरसेन-जिनसेन के समय तक परम्परया संरक्षित रहे तभी वे जयधवला जैसी साठ हजार श्लोक प्रमाण बृहत् टीका की रचना कर सके। यह रचना शक संवत् ७५९ (ई० सन् ८३७) में पूरी हुई। उस समय राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष का राज्य था।^९

प्राचीन पारिभाषिक शब्दावली

प्रस्तुत ग्रन्थ के नाम और उसके सन्दर्भ में प्रयुक्त शब्दावली के पारिभाषिक अर्थों को समझना भी आवश्यक है। प्रथम गाथा में कहा गया है कि 'पेज्जपाहुड' में 'कसायपाहुड' है। यतिवृषभ कहते हैं कि उस पाहुड के दो नाम हैं—'पेज्जदोसपाहुड' और 'कसायपाहुड'। पेज्जदोसपाहुड नाम अभिव्याहरण निष्पन्न है और कसायपाहुड नय निष्पन्न।

“तस्स पाहुडस्स दुवे णामधेज्जाणि । तं जहा-अभिवाहरणणिप्पणं पेज्ज-दोसपाहुडं । गयदो णिप्पणं कसायपाहुडं ।”^{१०}

दूसरी गाथा में ग्रन्थ की गाथाओं को 'सुत्तगाहा' कहा गया है। इस तरह 'पेज्ज', 'कसाय', 'पाहुड' तथा 'सुत्त' शब्द की पारिभाषिक अर्थ-परम्परा ज्ञातव्य है।

कसाय

'कसाय' व्यक्ति के मनोभावों का एक सम्पूर्ण विज्ञान है। इसके अन्तर्गत व्यक्तित्व का विश्लेषण उसके मनोगत भावों की जटिलताओं के सूक्ष्मतम परिदृश्य में किया जाता है। इस विश्लेषण का आधार गणितीय है। इसलिए पूरा कर्म-सिद्धान्त 'कसाय' के गणितीय विश्लेषण के माध्यम से किया गया है। इस कारण वह सहज बोधगम्य नहीं है। जैसे 'गुर'-सिद्धान्त समझ लेने पर गणित अत्यन्त सरल हो जाता है, उसी प्रकार 'कसाय' का 'गुर'-सिद्धान्त जान लेने पर पूरा कर्म-सिद्धान्त समझना आसान हो जाता है।

'कसाय' के मूल में चार भेद कहे गये हैं—१. क्रोध, २. मान, ३. माया, ४. लोभ। इनकी प्रवृत्ति राग-द्वेष के रूप में होती है। सम्भवतया 'पेज्ज' शब्द राग-द्वेष को समवेत रूप में अभिव्यक्त करने वाला प्राचीन पारिभाषिक शब्द है। पेज्ज का रूपान्तर 'प्रेय' होने पर उसका अर्थ 'राग' में सिमट गया। इसलिए राग के विपरीत द्वेष शब्द आया। किस कसाय की प्रवृत्ति कहाँ राग रूप होगी और कहाँ द्वेष रूप इसका विस्तार से विश्लेषण किया गया है। इस प्रकार 'पेज्ज' शब्द में कसाय समाहित है।

९. कसा० पा०, भाग १, प्रस्तावना।

१०. कसा० पा० सुत्त, चुण्णिसुत्त, २१, २२।

पाहुड

‘पाहुड’ शब्द ‘कसाय’ ‘पेज्ज’ आदि शब्दों की तरह प्राचीन पारिभाषिक शब्द है। प्राचीन प्राकृत ग्रन्थों में इसे विस्तार से परिभाषित किया गया है। ‘पाहुड’ की निरुक्ति करते हुए यतिवृषभ ने लिखा है—

“जम्हा पदेहि पुदं (फुटं) तम्हा पाहुडं”^{११}

नंदि तथा अनुयोगद्वार में बारहवें अंग दिट्ठिवाय के सन्दर्भ में पाहुड और पाहुडिआ का उल्लेख है। दिट्ठिवाय में संख्यातपाहुड, संख्यात पाहुडपाहुड, संख्यात पाहुडिया तथा असंख्यात पाहुडपाहुडिया बताये गये हैं—

“पाहुडसंखा पाहुडिआसंखा पाहुडपाहुडियासंखा वत्थुसंखा से तं दिट्ठिवाय-सुयपरिमाणसंखा”^{१२}

गोम्मटसार के अनुसार ‘अहियार’ और ‘पाहुड’ शब्द एकार्थक हैं। ‘पाहुड’ के ‘अहियार’ को ‘पाहुडपाहुड’ कहते हैं—

“अहियारो पाहुडयं एयट्ठो पाहुडस्स अहियारो।

पाहुडपाहुडणामं होदि त्ति जिणेहि णिट्ठं ॥”^{१३}

‘वत्थु’, ‘अत्थाहियार’ तथा ‘पाहुड’ बारहवें अंग ‘दिट्ठिवाय’ के आन्तरिक वर्गीकरण हैं। शेष ग्यारह अंगों में इस प्रकार का वर्गीकरण नहीं मिलता।

एक ‘वत्थु’ में बीस ‘पाहुड’ तथा एक पाहुड में चौबीस ‘पाहुडपाहुड’ बताये गये हैं।^{१४}

‘पाहुड’ के सन्दर्भ में छक्खंडागम टीका का यह कथन भी विचारणीय है कि धरसेन से प्राप्त आगमज्ञान के आधार पर पुष्पदन्त ने बीस ‘सुत्त’ करके (बनाकर) जिनपालित को पढ़ाये और फिर जिनपालित को भूतबलि के पास भेजा। भूतबलि ने जिनपालित के पास बीस ‘सुत्त’ देखे। जिनपालित से ही उन्हें ज्ञात हुआ कि पुष्पदन्त की आयु अब अधिक नहीं है।

“तदो पुप्फयंताइरिएण जिणवालिदस्स दिक्खं दाऊण विसदि सुत्ताणि करिय पढाविय पुणो सो भूदबलिभयवंतस्स पासं पेसिदो। भूदबलिभयवदा जिणवालिदपासे दिट्ठिविसदिसुत्तेण अप्पाउओ त्ति अवगय जिणवालिदेण”^{१५}

११. कसा० पा० सुत्त, चुणिसुत्त ८६।

१२. नंदिसुत्त, सू० १४४, अनुयोगद्वार, सूत्र ४९५।

१३. गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा ३४१।

१४. गोम्म० जी०, गाथा ३४३।

१५. छक्खा० धव० टी० १।१।१ पृ० ७२।

ऐसा प्रतीत होता है कि पुष्पदंत ने एक 'पाहुड' प्रमाण 'सुत्त' भूतबलि के पास प्रेषित किये थे।

'पाहुड' की कई व्युत्पत्तियाँ उपलब्ध हैं। उन सबका विवेचन यहाँ अभीष्ट नहीं है। विशेष ध्यातव्य यह है कि प्रायः सभी व्युत्पत्तियाँ 'पाहुड' के एक निश्चित आकार का बोध देती हैं। इनसे परिमाण और विषय की दृष्टि से भी पाहुड के स्वरूप-गठन का पता चलता है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि 'पाहुड' विषय विशेष का स्पष्ट विवेचक आगमांश है, जिसका परिणाम प्रायः बीस 'गाहासुत्त' या विषय के अनुरूप सुनिश्चित होता है। पाहुड के सन्दर्भ में यह भी महत्वपूर्ण है कि अब तक उपलब्ध सभी पाहुड 'सुत्तगाहा' निबद्ध हैं। 'पाहुड' का पर्याय संस्कृत और हिन्दी में प्राभूत करके उसका अर्थ 'उपहार' किया जाता है। यह उपयुक्त नहीं है।

सुत्त या सूक्त

प्राकृत 'सुत्त' शब्द का पर्याय 'सूक्त' है। सुत्त का सूत्र पर्याय या अर्थ सर्वथा गलत और भ्रम उत्पन्न करने वाला है। भारतीय वाङ्मय में सूक्त की परम्परा प्राचीनकाल से प्रचलित रही है।

प्राकृत और पाली में सुत्त तथा संस्कृत में सूक्त शब्द व्यवहृत हुआ है। पाली त्रिपिटक तथा जैन आगम 'सुत्त' शब्द से अभिहित हैं। ऋक्संहिता आदि के मन्त्रों को सूक्त कहा गया है। सूक्तिमुक्तावलि आदि ग्रन्थ संस्कृत में सूक्त परम्परा के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। देश्य-भाषाओं की उत्तरकालीन रचनाओं में सूक्तों की परम्परा अपभ्रंश, सूफी तथा सन्त साहित्य में स्पष्टरूप से देखी जा सकती है। नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में मुक्तक और दोहा के रूप में सूक्त लेखन की परम्परा आगे बढ़ी। संस्कृत में सूत्र परम्परा का विकास सर्वथा भिन्न प्रयोजन और भिन्न रूप में हुआ है। सुत्त की परम्परा शास्ता के उपदेशों के संकलन के अर्थ में हुई जबकि सूत्र की निष्पत्ति का मुख्य प्रयोजन अल्पाक्षरत्व है। संस्कृत में व्याकरण सम्मत सूत्र संरचना आरम्भ होने पर जैन और बौद्ध ग्रन्थकारों ने भी उसे अपनाया तथा अनेक सूत्र ग्रन्थों की रचना की।

कसायपाहुड की गाथाओं को 'सुत्तगाहा' कहा गया है। इसलिए 'सुत्त' को ग्रन्थ के नाम का अंग माना जा सकता है।

जैन श्रमण परम्परा में इस बात पर प्राचीन समय में भी विचार हुआ है कि 'सुत्त' किसे कहा जाये। आवश्यकानिर्युक्ति में कहा गया है कि अरहन्त 'अर्थ' का कथन करते हैं और शासन के हितार्थ गणधर 'सुत्त' ग्रथित करते हैं। इसी से

‘सुत्त’ की परम्परा प्रवर्तित होती है।^{१६} कालान्तर में इस अवधारणा का विकास हुआ तथा गणधर के साथ प्रत्येकबुद्ध, श्रुतकेवली तथा अभिन्नदशपूर्वी को भी ‘सुत्त’ का कथन करने वाला मान लिया गया।^{१७} गाहामुत्त, चुण्णिसुत्त, वित्तिमुत्त आदि की परिभाषाएँ अलग-अलग की गयी हैं। संस्कृत में अल्पाक्षरत्व आदि सूत्र की परिभाषा भी पर्याप्त प्राचीनकाल में स्थिर हो गयी प्रतीत होती है। इसीलिए जयधवलाकार ने कसायपाहुड के गाहामुत्तों में भी उस परिभाषा को समायोजित किया है।^{१८} यतिवृषभ ने कसायपाहुड की गाथाओं को उनके विषय के अनुसार पृच्छासुत्त, वागरणसुत्त तथा सूचनासुत्त नाम दिये हैं।

कसायपाहुड की रचना शैली

कसायपाहुड की गाथाओं से इसकी रचना शैली का पता चलता है। शब्दार्थ की दृष्टि से गाथाएँ क्लिष्ट नहीं हैं, किन्तु इनमें प्रतिपाद्य विषय सामान्य अध्येता की समझ में नहीं आ सकता। कर्मसिद्धान्त का ज्ञाता ही उसे ठीक से समझ सकता है। अनेक गाथायें प्रश्नात्मक हैं। इनमें विभिन्न अधिकारों से सम्बद्ध विषय को प्रश्नों के रूप में निर्दिष्ट किया गया है। इन प्रश्नों से सम्बद्ध विषय को कहीं-कहीं दूसरी गाथाओं में संक्षेप में कह दिया गया है और कहीं-कहीं प्रश्नों के द्वारा ही विषय की सूचना मात्र दी गयी है। ग्रन्थ की गाथाओं और प्रतिपाद्य विषय को देखने से ज्ञात होता है कि मूल ग्रन्थ को बिना उसकी व्याख्या के नहीं समझा जा सकता। इसी से ज्ञात होता है कि वाचना और व्याख्यान करने की विशेष परिपाटी रही है। यतिवृषभ को आर्यमंक्षु और नागहस्ती कृत कसायपाहुड का व्याख्यान उपलब्ध न होता तो उनके लिए चुण्णिसुत्तों की रचना करना कठिन था। इसी तरह यदि वीरसेन-जिनसेन को कसायपाहुड व्याख्यान सहित उपलब्ध नहीं होता तो वे जयधवला जैसी विस्तृत टीका नहीं लिख सकते थे।

प्रश्नात्मक शैली पर ऐतिहासिक दृष्टि से भी विचार करना अपेक्षित है। जैन परम्परा में अर्धमागधी आगमों से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि भगवान् महावीर से गौतम गणधर प्रश्न के रूप में अपनी जिज्ञासा प्रकट करते हैं और महावीर उत्तर में

१६. अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गन्थति गणहरा निऊणं ।

सासणस्स हियट्ठाए तओ सुत्तं पवत्तइ ॥

—आवश्यकनिर्युक्ति गाथा ९२ ।

१७. सुत्तं गणहरकहियं तहेव पत्तेयबुद्धकहियं च ।

सुदकेवलिणा कहियं अभिण्णदसपुत्वि कहियं च ॥

—भगवती आराधना, गाथा ३४ ।

१८. कसा० पा० भाग १, पृ० १५४ ।

संकाय-पत्रिका-२

उनका समाधान करते हैं। गौतम गणधर और राजा श्रेणिक के प्रश्नोत्तर पुराण ग्रन्थों में मिलते हैं। बौद्ध परम्परा में पाली त्रिपिटक में यह प्रश्नोत्तर शैली प्राप्त होती है। इस सबसे ज्ञात होता है कि प्रश्नोत्तर शैली पर्याप्त प्राचीन काल से प्रचलित रही है। उसी में कसायपाहुड के गाथासूक्त निबद्ध हैं। यतिवृषभ ने चूर्णिसूक्तों में भी इस प्रणाली को अपनाया है। यतिवृषभ और वीरसेन ने प्रश्नात्मक शैली को शास्त्र की प्रामाणिकता का आधार बताया है। वीरसेन ने लिखा है कि इस पृच्छा-सूत्र के द्वारा चूर्णिकार ने अपने कर्तृत्व का निवारण किया है। इससे उन्होंने यह सूचित किया है कि उन्होंने जिस तत्त्व का प्रतिपादन किया है, वह उनकी अपनी निष्पत्ति नहीं है। प्रयुक्त गौतम गणधर ने भगवान् महावीर से जो प्रश्न किये और उनका जो उत्तर उन्हें प्राप्त हुआ उसे यहाँ निबद्ध किया है।

इस प्रकार कसायपाहुड की शैली प्रश्नोत्तर रूप है। वैदिक और बौद्ध प्राचीन वाङ्मय में भी यही शैली पायी जाती है। ऐतिहासिक सन्दर्भ में विचार करते समय इसका विशेष महत्त्व ज्ञात होगा।

कसायपाहुड का प्रतिपाद्य विषय

कसायपाहुड का प्रतिपाद्य विषय जैन श्रमण परम्परा के कर्म सिद्धान्त के अन्तर्गत कषायों का विवेचन है। जयधवला टीका के अनुसार कषायपाहुड सोलह हजार पद प्रमाण था, जिसे आचार्य गुणधर ने एक सौ अस्सी गाथाओं में उपसंहृत किया। टीकाकार के अनुसार कषायपाहुड की उपलब्ध सभी दो सौ तेतीस गाथाएँ तथा चूलिका गाथायें कषायपाहुड का अंग हैं और सभी गुणधर कृत हैं। इन गाथाओं में निबद्ध प्रतिपाद्य विषय गाथाक्रम से संक्षेप में जान लेना अपेक्षित है।

प्रथम गाथा में बताया गया है कि पाँचवें पूर्व की दसमीं वस्तु में पेज्जपाहुड नामक तीसरे अधिकार में यह कसायपाहुड है। इस प्रकार इस गाथा में ग्रन्थ का आधार निर्दिष्ट है।

दूसरी गाथा में कहा गया है कि इसमें पन्द्रह अधिकारों में १८० सूक्तगाथायें हैं। आगे की छह गाथाओं में अधिकारों की गाथाओं का निर्देश इस प्रकार है— पेज्जदोसविभक्ति, स्थितिविभक्ति, अनुभागविभक्ति, बंधक अर्थात् बन्ध और संक्रम, इन पाँच अर्थाधिकारों में तीन गाथायें हैं। वेदक अधिकार में चार, उपयोग में सात, चतुःस्थान में सोलह तथा व्यञ्जन नामक अधिकार में पाँच गाथायें हैं। दर्शनमोह-उपशामना नामक अधिकार में पंद्रह तथा दर्शनमोहक्षपणा अधिकार में पाँच सूक्त-गाथा हैं। संयमासंयमलब्धि तथा चरित्रलब्धि में एक ही गाथा है। चरित्रमोह उपशामना नामक अधिकार में आठ गाथाएँ हैं। चरित्रमोह की क्षपणा के प्रस्थापक में चार तथा संक्रमण में चार गाथाएँ हैं। अपवर्तना में तीन तथा क्षपणा की द्वादश

कृष्टियों में ग्यारह गाथाएँ हैं। कृष्टियों की क्षपणा में चार, क्षीणमोह में एक, संग्रहणी में एक, इस प्रकार चरित्रमोह के क्षपणा नामक अधिकार में अट्ठाइस गाथाएँ हैं।

इसके बाद चार गाथाओं में सुत्तगाहा और उनकी भासगाहा का निर्देश किया गया है। इसके पश्चात् दो गाथाओं में पंद्रह अधिकारों के नाम निर्दिष्ट हैं। आगे १५ से २० तक छह गाथाओं में अद्धापरिमाण का कथन है। आगे प्रत्येक अधिकार की गाथाएँ दी गयी हैं।

कसायपाहुड की वास्तविक विषयवस्तु का विवेचन गाथा २१ से होता है। इस गाथा में भी विषय का निर्देश प्रश्नात्मक पद्धति से किया गया है। कहा गया है कि—किस कषाय में किस नय की अपेक्षा प्रेय या द्वेष रूप व्यवहार होता है? कौन नय किस द्रव्य में द्वेष रूप होता है तथा किस द्रव्य में प्रिय के समान आचरण करता है? मूल ग्रन्थ में इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया गया। चूर्णि तथा टीका में इसका विवेचन किया गया है। इसके आगे की २२वीं गाथा में कहा गया है कि 'मोहनीय कर्म की प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट प्रदेश विभक्ति, झीणाझीण तथा स्थित्यन्तिक की प्ररूपणा करना चाहिए।' इस प्रकार इस गाथा द्वारा ही इस गाथा में आगत अधिकारों का कथन कर दिया गया है। चूर्णिकार तथा टीकाकार ने प्रत्येक अधिकार का पृथक्-पृथक् विवेचन किया है।

२३वीं गाथा बन्धक अधिकार से सम्बद्ध है। यह भी प्रश्नात्मक है। इसमें कहा गया है कि 'कितनी प्रकृतियों को बाँधता है? कितना स्थिति-अनुभाग को बाँधता है? कितने प्रदेशों को बाँधता है? कितनी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश का संक्रमण करता है?'

आगे की गाथाओं में बन्ध का कथन नहीं किया गया। संक्रम का कथन २४ से ५८ तक ३५ गाथाओं में किया गया है। ५९ से ६२ तक चार गाथाओं में वेदक अधिकार का कथन है। ये चारों गाथाएँ भी प्रश्नात्मक हैं। ६३ से ६९ तक सात गाथाओं में उपयोग अधिकार का कथन है। ये गाथाएँ भी प्रश्नात्मक हैं।

गाथा ७० से ८५ तक चतुःस्थान अर्थाधिकार का कथन है। ये सभी गाथाएँ प्रश्नात्मक नहीं हैं, मात्र दो गाथाएँ प्रश्नात्मक हैं। इन गाथाओं में कषायों के चार प्रकारों का विवरण है। आगे पाँच गाथाओं द्वारा व्यञ्जन अधिकार का निरूपण है। ये गाथाएँ भी प्रश्नात्मक नहीं हैं।

आगे के अधिकारों में दर्शनमोह और चरित्रमोह के उपशम तथा क्षपण का कथन है। मोक्षमार्ग में सम्यक्त्व का विशेष महत्त्व है। मोक्षमार्गी जीव को सर्वप्रथम उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। इसका विस्तार से विवेचन किया गया है।

इसके बाद दर्शनमोह के क्षय का विवेचन है। क्षायिक सम्यक्त्व होने पर ही मोक्ष होता है। गाथा ११५ में संयमासंयमलब्धि अधिकार का निर्देश है। इससे आगे चरित्रमोह की उपशामना नामक अधिकार है और अन्त में चरित्रमोह क्षयणा नामक अधिकार है। इस अधिकार में विस्तार से चरित्रमोह के क्षय का निरूपण है। इसके बाद चूलिका गाथाएँ हैं।

आचार्य गुणधर

कसायपाहुड की जयधवला टीका तथा इन्द्रनन्दि के श्रुतावतार से ज्ञात होता है कि कसायपाहुड के रचयिता आचार्य गुणधर हैं। वे कब हुए तथा उनका जीवन-वृत्त क्या है इत्यादि बातों पर प्रकाश डालने वाले साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं। इन्द्रनन्दि को अपने समय में भी गुणधर और धरसेन का जीवनवृत्त, गुरुपरम्परा आदि ज्ञात नहीं हो सकी थी। इस बात की जानकारी उनके इस कथन से मिलती है कि गुणधर और धरसेन के वंशगुरु के पूर्वापर को हम नहीं जानते, क्योंकि उनके अन्वय का कथन करने वाले आगम और मुनिजनों का अभाव है—

“गुणधरधरसेनान्वयगुर्वोः पूर्वापरक्रमोऽस्माभिः ।

न ज्ञायते तदन्वयकथकागममुनिजनाभावात् ॥”^{१९}

जयधवलाटीकाकार वीरसेन दोनों को वीर निर्वाण से ६८३ वर्ष पश्चात् हुआ बताते हैं, किन्तु दोनों की पूर्व परम्परा के सम्बन्ध में वे भी मौन हैं। इससे ज्ञात होता है कि उन्हें भी दोनों का पूर्वापर क्रम ज्ञात नहीं था।

यतिवृषभ ने कसायपाहुड पर चूर्ण की रचना की, जो जयधवला के साथ उपलब्ध है, किन्तु इस चूर्ण में यतिवृषभ ने गुणधर के विषय में कोई जानकारी नहीं दी। जयधवला और श्रुतावतार से गुणधर के विषय में इतनी जानकारी मिलती है कि आचार्य गुणधर ज्ञानप्रवाद नामक पंचम पूर्व की दसमीं वस्तु सम्बन्धी तृतीय कसायपाहुड या पेज्जपाहुड रूपी महासमुद्र के पारगामी थे। उन्होंने सोलह हजार पद प्रमाण पेज्जदोसपाहुड को एक सौ अस्सी गाथाओं में निबद्ध किया था। जयधवलाकार के अनुसार ये गाथाएँ आचार्य परम्परा से आकर आर्यमंक्षु और नागहस्ति को प्राप्त हुईं। इन्द्रनन्दि के अनुसार गुणधर ने स्वयं उनका व्याख्यान नागहस्ति और आर्यमंक्षु के लिए किया। जयधवलाकार ने गुणधर को ‘वाचक’ कहा है।^{२०}

इन सन्दर्भों से कहा जा सकता है कि आचार्य गुणधर के काल निर्णय के लिए कसायपाहुड की प्राचीन परम्परा का आलोडन आवश्यक है। इसी सन्दर्भ में आर्यमंक्षु तथा नागहस्ति के विषय में भी विचार करना आवश्यक है।

१९. श्रुतावतार, पद्य १५१।

२०. कसायपाहुड, भाग १, पृ० ३६५।

आर्यमंक्षु और नागहस्ति

आर्यमंक्षु और नागहस्ति का उल्लेख आचार्य गुणधर की तरह मात्र जयधवलाटीका और श्रुतावतार में मिलता है। दिगम्बर जैन परम्परा के अन्य साहित्य, शिखालेख या पट्टावलियों में इनका उल्लेख नहीं मिलता। आचार्य वीरसेन ने जयधवला टीका के प्रारम्भ में गुणधर, आर्यमंक्षु, नागहस्ति और यतिवृषभ का एक साथ निम्नप्रकार स्मरण किया है—

“गुणहरवयणविणिग्गयाहाणत्थं बहारिओ सव्वो ।
जेणज्जमंखुणा सो सणागहत्थी वरं देऊ ॥
जो अज्जमंखुसीसो अंतेवासी वि णागहत्थिस्स ।
सो वित्तिमुत्तकत्ता जइवसहो मे वरं देऊ ॥”^{२१}

अर्थात् जिन आर्यमंक्षु और नागहस्ति ने आचार्य गुणधर के मुखकमल से विनिर्गत गाथाओं के सर्व अर्थ को अवधारण किया, वे हमें वर प्रदान करें। जो आर्यमंक्षु के शिष्य हैं और नागहस्ति के अंतेवासी हैं, वृत्तिसूत्र के कर्ता वे यतिवृषभ मुझे वर प्रदान करें।

इससे ज्ञात होता है कि आर्यमंक्षु और नागहस्ति समकालीन थे और दोनों कसायपाहुड के महान् वेत्ता थे। यतिवृषभ दोनों के शिष्य थे तथा उन्होंने दोनों के पास कसायपाहुड का ज्ञान प्राप्त किया था। जयधवलाकार ने दोनों को ‘महावाचक’ तथा ‘खवण’ या ‘महाखवण’ कहा है। चूर्णिकार ने अपने चूर्णिसूत्रों में कई विषयों के सम्बन्ध में दो उपदेशों का उल्लेख किया है और उनमें से एक उपदेश को ‘पवाइज्जमाण’ तथा दूसरे को ‘अपवाइज्जमाण’ कहा है। जयधवलाकार ने ‘पवाइज्जमाण’ का अर्थ ‘सर्वाचार्यसम्मत तथा गुरुपरम्परा के क्रम से आया हुआ’ किया है तथा नागहस्ति के उपदेश को ‘पवाइज्जमाण’ और आर्यमंक्षु के उपदेश को ‘अपवाइज्जमाण’ कहा है। दिगम्बर परम्परा में आर्यमंक्षु और नागहस्ति के विषय में अब तक मात्र यही सन्दर्भ उपलब्ध हुए हैं जो विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

श्वेताम्बर पट्टावलियों में आर्यमंगु तथा नागहस्ती नामक आचार्यों का उल्लेख मिलता है। नन्दिसूत्र की स्थविरावलि में इन दोनों आचार्यों का स्मरण बड़े आदर के साथ करते हुए आर्यमंगु को ज्ञान और दर्शन गुणों का प्रभावक तथा श्रुतसमुद्र का पारगामी लिखा है तथा नागहस्ति को कर्मप्रकृति का व्याख्यान करने वालों में प्रधान बताते हुए उनके वाचक वंश की वृद्धि की कामना की है।^{२२}

२१. कसायपाहुड, भाग १, गाथा ७, ८ ।

२२. नन्दिसूत्र, गाथा २८, ३० ।

कसायपाहुड की प्राचीन परम्परा के सन्दर्भ में उक्त दोनों आचार्यों का अध्ययन विशेष उपयोगी सिद्ध होगा।

यतिवृषभ

कसायपाहुड के गाहासुक्तों पर यतिवृषभ ने छह हजार श्लोक प्रमाण 'चुण्णिसुक्तों' की रचना की थी। जयधवला टीका के साथ 'चुण्णिसुक्त' उपलब्ध हैं। कसायपाहुड की गाथाओं और यतिवृषभ के चूर्णिसूक्तों का पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री ने स्वतन्त्र रूप से सम्पादन किया था। वीर शासन संघ, कलकत्ता से इसका प्रकाशन हुआ है। इसकी प्रस्तावना में यतिवृषभ और उनके चूर्णिसूक्तों पर विस्तार से विचार किया है। पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री ने 'जैन साहित्य का इतिहास' ग्रन्थ में यतिवृषभ के समय और रचनाओं आदि पर विस्तार पूर्वक विचार किया है। विशेष अध्ययन करते समय इस सामग्री का आलोडन आवश्यक है। यहाँ संक्षेप में कसायपाहुड के सन्दर्भ में यतिवृषभ और उनके चूर्णिसूक्तों पर विचार अपेक्षित है।

जयधवला टीकाकार के अनुसार यतिवृषभ ने कसायपाहुड के गाहासुक्तों पर छह हजार श्लोक प्रमाण चूर्णिसूक्तों की रचना की। ये प्राकृत गद्य में निबद्ध हैं। टीकाकार के अनुसार आचार्य गुणधर ने सोलह हजार पद प्रमाण पेज्जदोसपाहुड को एक सौ अस्सी सुत्तगाथाओं में उपसंहृत किया था। आचार्य परम्परा से आती हुई वे सुत्तगाहा आर्यमंक्षु और नागहस्ति को प्राप्त हुईं। उन्हीं से सम्यक् रूप से सुनकर यतिवृषभ ने चूर्णिसूक्तों की रचना की। इस सन्दर्भ में यतिवृषभ को आर्यमंक्षु तथा नागहस्ति का शिष्य बताया गया है। आर्यमंक्षु और नागहस्ति का सन्दर्भ दिग्म्बर साहित्य में अन्यत्र अनुपलब्ध है। श्वेताम्बर पट्टावलियों में आर्यमंक्षु तथा नागहस्ति के विषय में जो जानकारी मिलती है, उसके साथ उनके समय पर विचार करना अपेक्षित है। इससे यतिवृषभ का समय निर्धारित करने में मदद मिलेगी।

कसायपाहुड की टीका में यतिवृषभ को प्राचीन कर्मसिद्धान्त के एक महान् वेत्ता में रूप में प्रस्तुत किया गया है। चूर्णिसूक्त इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। चूर्णिसूक्तों के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि यतिवृषभ मात्र कसायपाहुड के ही विशेषज्ञ नहीं थे, प्रत्युत वे महाकर्मप्रकृतिपाहुड के भी विशेषज्ञ थे। पंडित हीरालाल शास्त्री ने लिखा है कि 'चूर्णिकार के सामने कर्मसाहित्य के कम से कम षड्खंडागम, कम्मपयडी, सतक और सित्तरी ये चार ग्रन्थ अवश्य विद्यमान थे।^{२३} इन ग्रन्थों के तुलनात्मक सन्दर्भों पर भी उन्होंने विचार किया है।

यतिवृषभ का दूसरा प्राकृत ग्रन्थ तिलोयपण्णत्ति है।^{२४} वर्तमान में जो

२३. कसायपाहुडसुत्त, प्रस्तावना, वीर शासन संघ, कलकत्ता।

२४. तिलोयपण्णत्ति, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, सोलापुर।

तिलोपपण्णत्ति ग्रन्थ प्रकाशित है, उसके सम्पादकों ने ग्रन्थ और ग्रन्थकार के विषय में पर्याप्त ऊहापोह किया है। कसायपाहुड के चूर्णिसूक्तों के कर्ता यतिवृषभ तथा वर्तमान में उपलब्ध तिलोपपण्णत्ति को एक मानने में जो प्रश्न उपस्थित होते हैं, उन पर भी विद्वानों ने विचार किया है।^{२५} कसायपाहुड के अध्ययन-अनुशीलन में इस सब सामग्री का उपयोग किया जाना चाहिए।

वीरसेन-जिनसेन

कसायपाहुड के गाथासुत्त तथा यतिवृषभ के चुणिसुत्त वर्तमान में वीरसेन-जिनसेन की विशालकाय जयधवला टीका के माध्यम से ही उपलब्ध हुए हैं। यह टीका मणिप्रवाल न्याय से प्राकृत और संस्कृत मिश्रित शैली में लिखी गयी है। इसका परिमाण साठ हजार श्लोक प्रमाण है। पट्खंडागम पर बहत्तर हजार श्लोक प्रमाण टीका लिखने के बाद जयधवला टीका लिखी गयी। यह रचना शक संवत् ७५९ (ई० सन् ८३७) में पूरी हुई। उस समय राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष का राज्य था। टीकाकार के समय आदि के विषय में उसके सम्पादकों ने विस्तार से विचार किया है।

जयधवला टीका का महत्त्व अनेक दृष्टियों से है। वीरसेन ने यह टीका लिखना प्रारम्भ की थी, किन्तु वे उसे पूरा करने के पूर्व ही स्वर्गवासी हो गये। उनके शिष्य जिनसेन ने अपने गुरु द्वारा आरम्भ किए इस महत्त्वपूर्ण कार्य को उसी निष्ठा और योग्यता के साथ सम्पन्न किया। टीका में कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं मिलता कि कितनी टीका वीरसेन ने और कितनी जिनसेन ने लिखी। ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति से तथा वीरसेन के लिए भूतकाल की क्रिया के प्रयोग से इस बात का पता चलता है। जिनसेन ने लिखा है कि 'गुरु' के द्वारा बहुवक्तव्य पूर्वार्ध के लिखे जाने पर, उसको देखकर इस अल्प वक्तव्य उत्तरार्ध को उसने पूरा किया।^{२६} इससे यह ज्ञात नहीं होता कि पूर्वार्ध कहाँ तक है।

जयधवला टीका विशद्, स्पष्ट और गम्भीर है। शैली व्याख्यात्मक होते हुए भी अनेक नये तथ्यों से परिपूर्ण है। प्राचीन आचार्यों के मतों का पूर्ण प्रमाणिकता के साथ उल्लेख किया गया है। टीकाकार ने प्राचीन आगमिक परम्परा की पूरी रक्षा की है तथा एक ही विषय में प्राप्त विभिन्न आचार्यों के विभिन्न उपदेशों का उल्लेख किया है। सैद्धान्तिक चर्चा के लिए प्राकृत का उपयोग किया गया है तथा दार्शनिक चर्चाएँ और व्युत्पत्तियाँ संस्कृत में निबद्ध हैं। कहीं-कहीं ऐसे वाक्य भी मिलते हैं जिनमें प्राकृत और संस्कृत दोनों प्रयुक्त हैं।

जयधवला टीका में कसायपाहुड की गाथाओं और चूर्णिसूक्तों में निहित विषय

२५. जैन साहित्य का इतिहास, भाग १, २।

२६. जयधवला प्रशस्ति, श्लो० ३६।

को विशद रूप से पूर्णतया स्पष्ट किया गया है। यहाँ तक कि चूर्णिकार द्वारा प्रयुक्त अंकों तक की व्याख्या प्रस्तुत की है। इसके साथ ही अनेक दार्शनिक और सैद्धान्तिक मतों को आचार्यों के नामोल्लेख पूर्वक प्रस्तुत किया है।

जयधवला टीका का सर्वाधिक महत्त्व इस बात में है कि टीकाकार ने कसाय-पाहुड के 'गाहासुत्त' और यतिवृषभ द्वारा उन पर रचे 'चुणिसुत्त' टीका में पूर्ण रूप से समाहित करके उस अमूल्य निधि को सुरक्षित बचा लिया। यदि जयधवलाकार इसे सुरक्षित न रखते तो वे दोनों महान् ग्रन्थ अन्य अनेक प्राचीन आगम ग्रन्थों की तरह लुप्त हो गये होते। कसायपाहुड का अनुशीलन इस टीका के बिना शक्य नहीं है।

अर्धमागधी परम्परा में कसायपाहुड

अर्धमागधी के उपलब्ध साहित्य में वर्तमान में कसायपाहुड नाम का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है तथापि उपलब्ध सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि अर्धमागधी परम्परा में कसायपाहुड की मान्यता प्रायः १०वीं शती तक रही है।

अर्धमागधी में कर्मसिद्धान्त विषयक साहित्य स्वतन्त्र रूप से उपलब्ध है। कम्मपयडी^{२७} तथा पञ्चसंग्रह नाम से दो ग्रन्थ दोनों परम्पराओं में उपलब्ध हैं। कम्मपयडी पर अर्धमागधी परम्परा में चूर्णिकार और टीकाएँ भी प्राप्त हैं। शौरसेनी परम्परा के उपलब्ध कसायपाहुड में प्राप्त सत्रह गाथाएँ किञ्चित् पाठ भेद के साथ इस कम्मपयडी में भी पायी जाती हैं। कसायपाहुड के संक्रम अधिकार की २७ से ३९ तक को तेरह गाथाएँ कम्मपयडी के संक्रमकरण अधिकार में पायी जाती हैं। इसी तरह दर्शनमोह के उपशम अधिकार की गाथा संख्या १००, १०३, १०४, १०५ कम्मपयडि में इसी प्रसंग में उपलब्ध हैं। पंडित हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री ने अपनी प्रस्तावना में तथा पंडित कैलाशचन्द्र शास्त्री ने जैन साहित्य का इतिहास में दोनों पर तुलनात्मक रूप से विचार किया है।^{२८}

कम्मपयडी को चूर्णिकार ने कम्मपयडीसंग्रहणी नाम दिया है और प्रथम गाथा की उत्थानिका में लिखा है कि विच्छिन्न कर्मप्रकृति महाग्रन्थ के अर्थ का ज्ञान कराने के लिए आचार्य ने सार्थक नाम वाला कर्मप्रकृतिसंग्रहणी नामक प्रकरण रचा है।

कम्मपयडि के कर्ता शिवशर्म सूरि माने जाते हैं। उन्होंने दृष्टिवाद के अन्तर्गत द्वितीय पूर्व में से उद्धार कर यह ग्रन्थ लिखा। इनका समय निश्चित नहीं है, फिर भी वि० सं० १०० के आस-पास अनुमानित किया जाता है।^{२९}

चन्द्रर्षि महत्तर (८-१० शती) ने अपने पञ्चसंग्रह की रचना में जिन पाँच

२७. कर्मप्रकृति, मुक्ताबाई ज्ञानमंदिर, डभोई, अहमदाबाद।

२८. जैन साहित्य का इतिहास, भाग १, पृ० २९७-३०१।

२९. जैन साहित्य का बृहत् इतिहास।

कर्मग्रन्थों का उपयोग किया था, उसमें एक कसायपाहुड भी था। पञ्चसंग्रह के टीकाकार मलयगिरि ने लिखा है कि इस पंचसंग्रह में शतक, सप्ततिका, कषायप्राभृत, सत्कर्म और कर्मप्रकृति इन पाँच ग्रन्थों का संग्रह है—

“पंचानां शतक-सप्ततिका-कषायप्राभृत-सत्कर्म-कर्मप्रकृतिलक्षणानां ग्रन्थानाम्।”^{३०}

इन सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि लगभग दशमी शती तक अर्धमागधी परम्परा में कसायपाहुड की मान्यता रही है।

अनुसन्धान की सम्भावनायें

शौरसेनी या दिगम्बर परम्परा में कषायपाहुड के गाहासुत्त, चुण्णिसुत्त तथा जयधवला जैसी विशालकाय टीका के प्रकाश में आने से कषायपाहुड की एक अविच्छिन्न परम्परा अध्ययन-अनुशीलन के लिए उपलब्ध है। अर्धमागधी परम्परा के प्रज्ञापना, कम्मपयडि, पञ्चसंग्रह आदि ग्रन्थों से यह स्पष्ट है कि अर्धमागधी या श्वेताम्बर परम्परा में भी दशवीं शती तक कषायपाहुड की मान्यता रही है।

दोनों ही परम्पराएँ कषायपाहुड का मूल स्रोत दृष्टिवाद के पूर्व नामक महान् प्राचीन आगमों को मानती हैं। इससे यह स्पष्टरूप से कहा जा सकता है कि कषायपाहुड की मान्यता अखंड जैन श्रमण परम्परा में प्राचीन काल से चली आयी और दिगम्बर-श्वेताम्बर परम्परा भेद होने के बाद भी बहुत काल तक चलती रही। इस बात के पूर्वाग्रह से मुक्त होकर कि अमुकग्रन्थ से अमुक ग्रन्थ में गाथाएँ ली गयी हैं, यदि व्यापक दृष्टिकोण से अनुशीलन किया जाये तो दोनों परम्पराओं के आगमों से प्राचीन कषायपाहुड के मूल गाथा सुत्त और उनकी परम्परा का व्यवस्थित स्वरूप और ऐतिहासिक क्रम निश्चित किया जा सकता है। बहुत जटिल और श्रमसाध्य होने पर भी यह कार्य असम्भव नहीं है। इस प्रकार के अनुसन्धान कार्य आरम्भ होने पर यह आशा की जा सकती है कि जैन श्रमण परम्परा की उन सैद्धान्तिक और दार्शनिक मान्यताओं का पुनराकलन सम्भव है, जो सम्प्रदायों में विभक्त होने के पूर्व हजारों-हजार वर्षों के चिन्तन, मनन और प्रयासों के आधार पर अर्हत्तों-तीर्थकरों और श्रुतकेवलियों ने प्रतिष्ठापित की थीं।

कषायपाहुड की गाथाओं के प्रत्येक शब्द का अनुक्रम प्रथम बार इस संस्करण में प्रस्तुत किया गया है। इससे प्राकृत के प्राचीन शब्द-रूपों, वैकल्पिक प्रयोगों, विभक्तियों, सन्धि, समास के नियमों, कृदन्त और तद्धित के प्रत्ययों, संज्ञा, सर्वनाम तथा क्रियाओं आदि का जो स्वरूप उपस्थित होता है, उससे कषायपाहुड के भाषायी अनुशीलन के साथ प्राकृतों के भाषाशास्त्रीय अध्ययन को बल मिलेगा।

३०. पंचसंग्रह टीका, पृ० ३।

संकाय-पत्रिका-२

उपर्युक्त तथ्यों से यह भी ज्ञात होता है कि कर्मसिद्धान्तविषयक चिन्तन जैन श्रमण परम्परा में वर्द्धमान महावीर से पूर्व पर्याप्त रूप में विकसित हो चुका था। यही कारण है कि उसे बारहवें अंग दिट्ठियाय के अन्तर्गत चौदह पूर्वों में समाहित किया गया। कर्मसिद्धान्त के ज्ञाता और विवेचक आचार्यों की परम्परा महावीर के बाद पर्याप्त समय तक चलती रही। आचार्यों की व्याख्याओं से कर्मसिद्धान्त का और अधिक विस्तार हुआ। व्याख्यान भेद से भिन्न-भिन्न परम्पराएँ बनीं। कर्मसिद्धान्त को लिपिबद्ध करते समय विभिन्न आचार्यों ने प्राचीन दाय का पूरा-पूरा उपयोग करने का प्रयत्न किया, फिर भी परम्परा की भिन्नताओं के कारण लिपिबद्ध ग्रन्थ परम्पराओं में बँट गये तथा देश और काल के अनुसार भाषागत परिवर्तनों से भी प्रभावित हुए। इतना होने पर भी सौभाग्य से जैन परम्परा में कर्मसिद्धान्त विषयक सामग्री प्रचुर मात्रा में सुरक्षित है। एक तटस्थ अध्येता के लिए यह बहुत कठिन नहीं है कि उपलब्ध सामग्री के आधार पर वह कर्म सिद्धान्त के विकास क्रम को न समझ सके। सम्पूर्ण भारतीय कर्म साहित्य के सन्दर्भ में देखने पर जैन परम्परा के कर्म-सिद्धान्त की विशेषता का भी स्पष्ट परिज्ञान होता है।

प्राचीन काल से कर्मसिद्धान्त भारतीय चिन्तन का एक महत्त्वपूर्ण विषय रहा है। विश्व के वैविध्य, जन्म-मरण, सुख-दुःख आदि के कारणों की मवेष्टा के क्रम में अनेक विचार प्रस्फुटित हुए। इसी चिन्ताधारा में कर्म का अद्भुत सिद्धान्त प्रतिफलित हुआ। सम्पूर्ण भारतीय धर्म-दर्शनों ने इस सिद्धान्त को किसी न किसी रूप में स्वीकार किया। धार्मिक और दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन में इसका उपयोग किया गया। इस प्रकार कर्मसिद्धान्त के विकास में सभी भारतीय-परम्पराओं का योगदान है, तथापि भारतीय मनीषा के इस आविष्कार का जितना सूक्ष्म, सुव्यवस्थित, सुसम्बद्ध तथा सर्वाङ्ग विवेचन जैन परम्परा के साहित्य में उपलब्ध होता है, वैसा अन्यत्र अप्राप्त है। जैन तत्त्वचिन्तन तथा आचार विषयक सिद्धान्त इसके मौलिक आधार हैं। इसी आधार पर जैन आचार्यों ने व्यक्तिस्वातन्त्र्य, स्वकृत कर्म और उसके फल का दायित्व, पूर्व तथा पश्चात् कालीन जीवन, आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व तथा उसके पुरुषार्थ की सार्थकता आदि सिद्धान्तों का विवेचन किया। इसके साथ ही कालवाद, स्वभाववाद, नियतिवाद, यदृच्छावाद, भूतवाद, ईश्वरवाद आदि की समीक्षा की। इसके लिए जैन परम्परा में कर्मसिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले अनेक विशालकाय शास्त्र निर्मित हुए।

कषायों का विवेचन कर्मसिद्धान्त के अन्तर्गत आता है। कर्मबन्धन में कषायों की निर्णायक भूमिका है। कषायों की तीव्रता और मन्दता के अनुरूप कर्मबन्धन

निर्धारित होता है। इसी कारण 'कसायपाहुड' नाम से कषायों का स्वतन्त्र रूप से विवेचन करने को परम्परा चली। भविष्य के अनुसन्धानों में 'कसायपाहुड' की प्राचीन धारा तथा उसके विकासक्रम का ब्योरेवार अध्ययन होना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि सभी परम्पराओं के उपलब्ध साहित्य का समालोचक दृष्टि से आलोडन किया जाये। आशा है 'कसायपाहुडसुत्तं' का प्रस्तुत संस्करण ऐसे अध्ययन में उपयोगी सिद्ध होगा।

आभार

'कसायपाहुडसुत्तं' का प्रस्तुत संस्करण तैयार करने में डॉ० सुनीता जैन का प्रमुख सहभाग है। मूल ग्रन्थ की प्रेस कापी तथा पूरी गाथाओं के प्रत्येक शब्द की सूची तैयार करने का कठिन कार्य उन्होंने अनवरत श्रम करके सम्पन्न किया। शब्द सूची को अनुक्रम से व्यवस्थित करने का कार्य मेरे प्रिय विद्यार्थी डॉ० ऋषभचन्द्र जैन तथा डॉ० कमलेश जैन ने मिलकर सम्पन्न किया है। हिन्दी में ग्रन्थ का भावानुवाद डॉ० कमलेश तथा डॉ० सुनीता जैन ने लिखा है। प्राकृत आगम परम्परा के अध्ययन से सम्बद्ध रहने के कारण सभी अपना कार्य आत्म विश्वास और निष्ठा के साथ सम्पन्न कर सके। उनका यह सहभाग उनके स्वतन्त्र अध्ययन का पाथेय बने, ऐसी कामना करता हूँ। कसायपाहुड की प्राचीन परम्परा के सम्बन्ध में मान्य भाई प्रो० मधुसूदन ढाकी से कई बार विस्तार से चर्चा हुई है। प्रसंगतः अन्य अनेक विषयों पर भी विचार हुआ है। उस सबका समावेश इस प्रस्तावना में सम्भव नहीं था। उनकी तटस्थ और समालोचक दृष्टि तथा प्राचीन जैन श्रमण धारा के गम्भीर अध्ययन से मुझे अपने अध्ययन-अनुशीलन के लिए बहुत बल मिला। इसके लिए उनका हृदय से ऋणी हूँ। इस उपक्रम में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अन्य जिसका भी सहयोग प्राप्त हुआ, उन सबका कृतज्ञ हूँ।

कसायपाहुडसुत्तं का प्रकाशन संकाय पत्रिका के अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप से प्राकृत जैनविद्या ग्रन्थमाला के अन्तर्गत हो रहा है। इससे इस ग्रन्थ के अध्ययन की सम्भावनाएँ और अधिक व्यापक होंगी। ज्ञान का क्षेत्र विशाल है। बहुत सावधानी रखने पर भी त्रुटियाँ सम्भव हैं। सुधीजन उनका परिमार्जन कर इस ग्रन्थ का उपयोग करेंगे, यह विश्वास है। इस ग्रन्थमाला में 'परमागमसारो' तथा 'तच्च-वियारो' के बाद यह तीसरा प्राकृत ग्रन्थ है। प्राकृत की ज्ञान सम्पदा में इससे नयी श्रीवृद्धि होगी।

गोकुलचन्द्र जैन

अध्यक्ष, प्राकृत एवं जैनागम विभाग
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

**आचार्य गुणधर विरचित
कसायपाहुडसुत्तं**

कसायपाहुडसुत्तं

- 1) पुव्वम्मि पंचमम्मि दु दसमे वत्थुम्मि पाहुडे तदिए ।
पेज्जं ति पाहुडम्मि दु हवदि कसायाण पाहुडं णाम ॥
- 2) गाहासदे असीदे अत्थे पण्णरसधा विहत्तम्मि ।
वोच्छामि सुत्तगाहा जयि गाहा जम्मि अत्थम्मि ॥
- 3) पेज्ज-दोसविहत्ती द्विदि अणुभागे च बंधगे चेव ।
तिण्णेदा गाहाओ पंचसु अत्थेसु णादव्वा ॥
- 4) चत्तारि वेदयम्मि दु उवजोगे सत्त होंति गाहाओ ।
सोलस य चउट्टाणे वियंजणे पंच गाहाओ ॥
- 5) दंसणमोहस्सुवसामणाए पण्णारस होंति गाहाओ ।
पंचेव सुत्तगाहा दंसणमोहस्स खवणाए ॥
- 6) लद्धी य संजमासंजमस्स लद्धी तहा चरित्तस्स ।
दोसु वि एक्का गाहा अट्ठेवुवसामणद्धम्मि ॥
- 7) चत्तारि य पट्ठवए गाहा संकमाए वि चत्तारि ।
ओवट्टणाए तिण्णि दु एक्कारस होंति किट्ठीए ॥
- 8) चत्तारि य खवणाए एक्का पुण होदि खीणमोहस्स ।
एक्का संगहणीए अट्टावीसं समासेण ॥
- 9) किट्ठीकयवीचारे संगहणी खीणमोहपट्ठवए ।
सत्तेदा गाहाओ अण्णाओ सभासगाहाओ ॥
- 10) संकामण-ओवट्टण-किट्ठी-खवणाए एक्कवीसं तु ।
एदाओ सुत्तगाहाओ सुण अण्णा भासगाहाओ ॥
- 11) पंच य तिण्णि य दो छक्क चउक्क तिण्णि तिण्णि एक्का य ।
चत्तारि य तिण्णि उभे पंच य एक्कं तह य छक्कं ॥

संकाय-पत्रिका-२

- 12) तिण्णि य चउरो तह दुग चत्तारि य होति चउक्कं च ।
दो पंचेव य एक्का अण्णा एक्का य दस दो य ॥
- 13) पेज्ज-दोसविहत्ती ट्ठिदि अणुभागे च बंधगे चेय ।
वेदग-उवजोगे वि य चउट्ठाण-वियंजणे चेय ॥
- 14) सम्मत्त-देसत्रिरयी संजम-उवसामणा च खवणा च ।
दंसण-चरित्तमोहे अद्धापरिमाणणिद्देसो ॥
- 15) आवलिय-अणायारे चक्खिदिय-सोद-घाण-जिब्भाए ।
मण-वयण-काय-पासे अवाय-ईहा-सुदुस्सासे ॥
- 16) केवलदंसण-णाणे कसाय-सुक्केक्कए पुधत्ते य ।
पडिवादुवामेंतय-खवेंतए संपराए य ॥
- 17) माणद्धा कोहद्धा मायद्धा तह य चेव लोहद्धा ।
खुद्धभवग्गहणं पुण किट्ठीकरणं च बोद्धव्वा ॥
- 18) संकामण-ओवट्टण-उवसंतकसाय-खीणमोहद्धा ।
उवसामेंतय-अद्धा खवेंत-अद्धा य बोद्धव्वा ॥
- 19) णिव्वाघादेणेदा होति जहण्णाओ आणुपुव्वीए ।
एत्तो अणणुपुव्वी उक्कस्सा होति भजियव्वा ॥
- 20) चक्खू सुदं पुधत्तं माणोवाओ तद्देव उवसंते ।
उवसामेंतय-अद्धा दुगुणा सेसा हु सविसेसा ॥
- 21) पेज्जं वा दोसो वा कम्मि कसायम्मि कस्स व णयस्स ।
दुट्ठो व कम्मि दव्वे पियायदे को कर्हि वा वि ॥
- 22) पयडीए मोह्णिज्जा विहत्ती तह ट्ठिदीए अणुभागे ।
उक्कस्समणुक्कस्सं झीणमझीणं च ठिदियं वा ॥
- 23) कदि पयडीयो बंधदि ट्ठिदि-अणुभागे जहण्णमुक्कस्सं ।
संकामेइ कदि वा गुणहीणं वा गुणविसिट्ठं ॥
- 24) संकम-उवक्कमविही पंचविहो चउव्विहो य णिक्खेवो ।
णयविहि पयदं पयदे च णिग्गमो होइ अट्ठविहो ॥

- 25) एक्केक्काए संकमो दुविहो संकमविही य पयडीए ।
संकमपडिग्गहविही पडिग्गहो उत्तम-जहण्णो ॥
- 26) पयडि-पयडिट्टाणेषु संकमो असंकमो तथा दुविहो ।
दुविहो पडिग्गहविही दुविहो अपडिग्गहविही य ॥
- 27) अट्टावीस चउवीस सत्तरस सोलसेव पण्णरसा ।
एदे खलु मोत्तूणं सेसाणं संकमो होइ ॥
- 28) सोलसग बारसट्टग वीसं वीसं तिगादिगधिगा य ।
एदे खलु मोत्तूणं सेसाणि पडिग्गहा होति ॥
- 29) छव्वीस सत्तवीसा य संकमो णियम चदुसु ट्ठाणेषु ।
वावीस पण्णरसगे एक्कारस ऊणवीसाए ॥
- 30) सत्तारसेगवीसासु संकमो णियम पंचवीसाए ।
णियमा चदुसु गदीसु य णियमा दिट्ठीगए तिविहे ॥
- 31) वावीस पण्णरसगे सत्तग एगारसूणवीसाए ।
तेवीस संकमो पुण पंचसु पंचिदिएसु हवे ॥
- 32) चोद्दसग दसग सत्तग अट्टारसगे च णियम वावीसा ।
णियमा मणुसगईए विरदे मिस्से अविरदे य ॥
- 33) तेरसय णवय सत्तय सत्तारस पणय एक्कवीसाए ।
एगाधिगाए वीसाए संकमो छप्पि सम्मत्ते ॥
- 34) एत्तो अवसेसा संजमम्हि उवसामगे च खवगे च ।
वीसा य संकम-दुगे छक्के पणगे च बोद्धव्वा ॥
- 35) पंचसु च ऊणवीसा अट्टारस चदुसु होति बोद्धव्वा ।
चोद्दस छसु पयडीसु य तेरसयं छक्क पणगम्हि ॥
- 36) पंच चउक्के बारस एक्कारस पंचगे तिग चउक्के ।
दसगं चउक्क-पणगे णवगं च तिगम्मि बोद्धव्वा ॥

27-39. cf. कम्मपयडि गा. 10-22.

- 37) अट्टदुग तिग चउक्के सत्त चउक्के तिगे च बोद्धव्वा ।
छक्कं दुगम्हि णियमा पंच तिगे एक्कग दुगे वा ॥
- 38) चत्तारि तिग चउक्के तिण्णि तिगे एक्कगे च बोद्धव्वा ।
दो दुसु एगाए वा एगा एगाए बोद्धव्वा ॥
- 39) अणुपुव्वमणणुपुव्वं शीणमझीणं च दंसणे मोहे ।
उवसामगे च खवगे च संकमे मग्गणोवाया ॥
- 40) एक्केक्कम्हि य ट्ठाणे पडिग्गहे संकमे तदुभए च ।
भविया वा भविया वा जीवा वा केसु ठाणेषु ॥
- 41) कदि कम्हि होति ठाणा पंचविहे भावविधि विसेसम्हि ।
संकमपडिग्गहो वा समाणणा वाध केव चिरं ॥
- 42) णिरयगइ-अमर-पंचिदियेसु पंचेव संकमट्ठाणा ।
सव्वे मणुसगईए सेसेसु तिगं असणीसु ॥
- 43) चदुर दुगं तेवीसा मिच्छत्तमिस्सगे य सम्मत्ते ।
वावीस पणय छक्कं विरदे मिस्से अविरदे य ॥
- 44) तेवीस सुक्कलेस्से छक्कं पुण तेउ-पम्मलेस्सासु ।
पणयं पुण काऊए णीलाए किण्हलेस्साए ॥
- 45) अन्नगयवेद-णवुंसय-इत्थी-पुरिसेसु चाणुपुव्वीए ।
अट्ठारसयं णवयं एक्कारसयं च तेरसया ॥
- 46) कोहादी उवजोगे चदुसु कसाएसु चाणुपुव्वीए ।
सौलस य ऊणवीस तेवीसा चेव तेवीसा ॥
- 47) गाणम्हि य तेवीसा तिविहे एक्कम्हि एक्कवीसा य ।
अण्णाणम्हि य तिविहे पंचेव य संकमट्ठाणा ॥
- 48) आहारय-भविएसु य तेवीसं होति संकमट्ठाणा ।
अणाहारएसु पंच य एक्कं ट्ठाणं अभवियेसु ॥
- 49) छव्वीस सत्तावीसा तेवीसा पंचवीस वावीसा ।
एदे सुण्णट्ठाणा अवगदवेदस्स जीवस्स ॥

- 50) उगुधीसट्ठारसयं चोद्दस एक्कारसादिया सेसा ।
एदे सुण्णट्ठाणा णवंसए चोद्दसा होंति ॥
- 51) अट्ठारस चोद्दसयं ट्ठाणा सेसा य दसगमादीया ।
एदे सुण्णट्ठाणा बारस इत्थीसु बोद्धव्वा ॥
- 52) चोद्दसग णवगमादी हवंति उवसामगे च खवगे च ।
एदे सुण्णट्ठाणा दस वि य पुरिसेसु बोद्धव्वा ॥
- 53) णव अट्ठ सत्त छक्कं पणग दुगं एककयं च बोद्धव्वा ।
एदे सुण्णट्ठाणा पढमकसायोवजुत्तेसु ॥
- 54) सत्त य छक्कं पणगं च एककयं चेव आणुपुव्वीए ।
एदे सुण्णट्ठाणा विदियकसायोवजुत्तेसु ॥
- 55) दिट्ठे सुण्णासुण्णे वेदकसाएसु चेव ट्ठाणेषु ।
मग्गणगवेसणाए दु संकमो आणुपुव्वीए ॥
- 56) कम्मंसियट्ठाणेषु य बंधट्ठाणेषु संक्रमट्ठाणे ।
एक्केक्केण समाणय बंधेण य संक्रमट्ठाणे ॥
- 57) सादि य जहण्णसंकमकदिखुत्तो होइ ताव एक्केक्के ।
अविरहिदसांतरं केवचिरं कदिभागपरिमाणं ॥
- 58) एवं दव्वे खेत्ते काले भावे य सण्णिवादे य ।
संकमणयं णयविदू णेया सुद-देसिदमुदारं ॥
- 59) कदि आवलियं पवेसेइ कदि च पविस्संति कस्स आवलियं ।
खेत्त-भव-काल-पोग्गल-ट्ठिदिविवागोदयखयो दु ॥
- 60) को कदमाए ट्ठिदीए पवेसगो को व के य अणुभागे ।
सांतरणिरंतरं वा कदि वा समया दु बोद्धव्वा ॥
- 61) बहुगदरं बहुगदरं से काले को णु थोवदरगं वा ।
अणुसमयमुदीरेंतो कदि वा समये उदीरेदि ॥
- 62) जो जं संकामेदि य जं बंधदि जं च जो उदीरेदि ।
तं केण होइ अहियं ट्ठिदि-अणुभागे पदेसग्गे ॥

- 63) केवचिरं उवजोगो कम्मि कसायम्मि को व केण हियो ।
को वा कम्मि कसाए अभिक्खमुवजोगमुवजुत्तो ॥
- 64) एक्कम्मि भवग्गहणे एक्ककसायम्मि कदि च उवजोगा ।
एक्कम्मि य उवजोगे एक्ककसाए कदि भवा च ॥
- 65) उवजोगवग्गणाओ कम्मि कसायम्मि केत्तिया हींति ।
कदरिस्से च गदीए केवडिया वग्गणा हींति ॥
- 66) एक्कम्मिह य अणुभागे एक्ककसायम्मि एक्ककालेण ।
उवजुत्ता का च गदी विसरिसमुवजुज्जदे का च ॥
- 67) केवडिया उवजुत्ता सरिसीसु च वग्गणा-कसाएसु ।
केवडिया च कसाए के के च विसिस्सुदे केण ॥
- 68) जे जे जम्मिह कसाए उवजुत्ता किण्णु भूदपुव्वा ते ।
होहिति च उवजुत्ता एवं सव्वत्थ बोद्धव्वा ॥
- 69) उवजोगवग्गणाहि च अविरहिदं काहि विरहिदं चावि ।
पढम-समयोवजुत्तोहि चरिमसमए च बोद्धव्वा ॥
- 70) कोहो चउव्विहो वुत्तो माणो वि चउव्विहो भवे ।
माया चउव्विहा वुत्ता लोभो वि य चउव्विहो ॥
- 71) णणपुठविवालगोदयरईसरिसो चउव्विहो कोहो ।
सेलघणअट्ठिदारुअलदासमाणो हवदि माणो ॥
- 72) वंसीजणहुगसरिसी मेंढविसाणसरिसी य गोमुत्ती ।
अवलेहणीसमाणा माया वि चउव्विहा भणिदा ॥
- 73) किमिरायरत्तसमगो अक्खमलसमो य पंसुत्तेवसमो ।
हालिह्वत्थसमगो लोभो वि चउव्विहो भणिदो ॥
- 74) एदेसिं द्ढाणाणं चदुसु कसाएसु सोलसण्हं पि ।
कं केण होइ अहियं ट्ठिदि अणुभागे पदेसग्गे ॥
- 75) माणे लदासमाणे उवकस्सा वग्गणा जहण्णादो ।
हीणा च पदेसग्गे गुणेण णियमा अणंतेण ॥

- 76) णियमा लदासमाणो दारुसमाणो अणंतगुणहीणो ।
सेसा कमेण हीणा गुणंण णियमा अणंतेण ॥
- 77) णियमा लदासमाणो अणुभागगेण वग्गणग्गेण ।
सेसा कमेण अहिया गुणेण णियमा अणंतेण ॥
- 78) संधीदो संधी पुण अहिया णियमा च होइ अणुभागे ।
हीणा च पदेसग्गे दो वि य णियमा विसेसेण ॥
- 79) सव्वावरणीयं पुण उक्कस्सं होइ दारुअसमाणे ।
हेट्ठा देसावरणं सव्वावरणं च उवरिल्लं ॥
- 80) एसो कमो य मागे मायाए णियमसा दु लोभे वि ।
सव्वं च कोहकम्मं चदुसु ट्ठाणेषु बोद्धव्वं ॥
- 81) एदेसि ट्ठाणाणं कदमं ठाणं गदीए कदमिस्से ।
बद्धं च बज्झमाणं उवसंतं वा उदिण्णं वा ॥
- 82) सण्णीसु असण्णीसु य पज्जत्ते वा तहा अपज्जत्ते ।
सम्मत्ते मिच्छत्ते य मिस्सगे चेव बोद्धव्वा ॥
- 83) विरदीए अविरदीए विरदाविरदे तहा अणागारे ।
सागारे जोगम्हि य लेस्साए चेव बोद्धव्वा ॥
- 84) कं ठाणं वेदंतो कस्स वा ट्ठाणस्स बंधगो होइ ।
कं ठाणमवेदंतो अवंधगो कस्स ठाणस्स ॥
- 85) असण्णी खलु बंधइ लदासमाणं दारुयसमगं च ।
सण्णी चदुसु विभज्जो एवं सव्वत्थ कायव्वं ॥
- 86) कोहो य कोवरोसो य अक्खमसंजलणकलहवड्ढी य ।
झंझा दोसविवादो दस कोहेयट्ठिया हींति ॥
- 87) माणमददप्पथंभो उक्कासपगास तथ समुक्कस्सो ।
अत्तुक्करिसो परिभवउस्सिददसलक्खणो माणो ॥
- 88) माया य सादिजोगो णियदी वि य वंचणा अणुज्जुगदा ।
गहणं मणुण्णमग्गणकक्ककुहकगूहणच्छण्णो ॥

- 89) कामो रागणिदाणो छन्दो य सुदो य पेज्जदोसो य ।
णेहाणुराग आसा इच्छा मुच्छा य गिद्धी य ॥
- 90) सासदपत्थणलालसअविरदि तण्हा य विज्जजिब्भा य ।
लोभस्स य णमधेज्जा वीसं एगट्ठिया भणिदा ॥
- 91) दंसणमोहउवसामगस्स परिणामो केरिसो भवे ।
जोगे कसायउवजोगे लेस्सा वेदो य को भवे ॥
- 92) काणि वा पुव्ववद्धाणि के वा असे णिबंधदि ।
कदि आवलियं पविसंति कदिण्हं वा पवेसगो ॥
- 93) के असे झीयदे पुव्वं बंधेण उदएण वा ।
अंतरं वा क्हि किच्चा के के उवसामगो क्हि ॥
- 94) किं ट्ठिदियाणि कम्माणि अणुभागेसु केसु वा ।
ओवट्टेदूण सेसाणि कं ठाणं पडिवज्जदि ॥
- 95) दंसणमोहस्सुवसामगो दु चदुसु वि गदीसु बोद्धव्वो ।
पंचिदियसणी [पुण] णियमा सो होइ पज्जत्तो ॥
- 96) सब्बणिरयभवणेषु दीवसमुद्दे गहजोदिसिविमाणे ।
अभजोगमणभजोगगो उवसामो होइ बोद्धव्वो ॥
- 97) उवसामगो च सब्बो णिव्वाघादो तहा णिरासाणो ।
उवसंते भजियव्वा णीरासाणो य खीणम्मि ॥
- 98) सागारे पट्टवगो णिट्टवगो मज्जिमो य भजियव्वो ।
जोगे अण्णदरम्मि य जहण्णगो तेउलेस्साए ॥
- 99) मिच्छत्तवेदणीयं कम्मं उवसामगस्स बोद्धव्वं ।
उवसंते आसाणे तेण परं होइ भजियव्वो ॥
- 100) सब्बेहि ट्ठिदिविसेसेहि उवसंता होंति तिण्णि कम्मंसा ।
एक्कम्मिह य अणुभागे णियमा सब्बे ट्ठिदिविसेसा ॥
- 101) मिच्छत्तपच्चओ खलु बंधो उवसामगस्स बोद्धव्वो ।
उवसंते आसाणे तेण परं होइ भजियव्वो ॥

- 102) सम्मामिच्छाइट्ठी दंसणमोहस्स अबंधगो होइ ।
वेदयसम्माइट्ठी खीणो वि अबंधगो होइ ॥
- 103) अंतोमुहुत्तमद्धं सव्वोवसमेण होइ उवसंतो ।
तत्तो परमुदयो खलु तिण्णोक्कदरस्स कम्मस्स ॥
- 104) सम्मतपढमलंभो सव्वोवसमेण तह वियड्ढेण ।
भजियव्वो य अभिक्खं सव्वोवसमेण देसेण ॥
- 105) सम्मतपढमलंभस्साणंतरं पच्छदो य मिच्छत्तं ।
लंभस्स अपढमस्स दु भजियव्वा पच्छदो होदि ॥
- 106) कम्माणि जस्स तिण्णि दु णियमा सो संकमेण भजियव्वो ।
एयं जस्स दु कम्मं संकमणे सो ण भजियव्वो ॥
- 107) सम्माइट्ठी जीवो सद्दहदि पवयणं णियमसा दु उवइट्ठं ।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुह्णिओगा ॥
- 108) मिच्छाइट्ठी णियमा उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥
- 109) सम्मामिच्छाइट्ठी सागारो वा तहा अणागारो ।
अध वंजणोग्गहम्मि दु सागारो होइ बोद्धव्वो ॥
- 110) दंसणमोहक्खवणा पट्ठवगो कम्मभूमिजादो हु ।
णियमा मणुसगदीए णिट्ठवगो चावि सव्वत्थ ॥
- 111) मिच्छत्तवेदणीए कम्मे ओवट्ठिदम्मि सम्मत्ते ।
खवणाए पट्ठवगो जहण्णमो तेउलेस्साए ॥
- 112) अंतोमुहुत्तमद्धं दंसणमोहस्स णियमसा खवगो ।
खीणो देवमणुस्से सिया वि णामाउगो बंधो ॥
- 113) खवणाए पट्ठवगो जम्मि भवे णियमसा तदो अण्णे ।
णाधिगच्छदि तिण्णिभवे दंसणमोहम्मि खीणम्मि ॥

107-8. cf. गोम्मट. जीव. गा. 27-28.

110. cf. वही, गा. ६४८.

- 114) संखेज्जा च मणुस्सेसु खीणमोहा सहस्ससो णियमा ।
सेसासु खीणमोहा गदीसु णियमा असंखेज्जा ॥
- 115) लद्धी य संजमासंजमस्स लद्धी तथा चरित्तस्स ।
वड्ढावड्ढी उवसामणा य तह पुव्वबद्धाणं ॥
- 116) उवसामणा कदि विधा उवसामो कस्स कस्स कम्मस्स ।
कं कम्मं उवसंतं अणउवसंतं च कं कम्मं ॥
- 117) कदिभागुवसामिज्जदि संकमणमुदीरणा च कदिभागो ।
कदिभागं वा वधदि ठिदिअणुभागे पदेसग्गे ॥
- 118) केवचिरमुवसामिज्जदि संकमणमुदीरणा च केवचिरं ।
केवचिरं उवसंतं अणउवसंतं च केवचिरं ॥
- 119) कं करणं वोच्छिज्जदि अव्वोच्छिण्णं व होइ कं करणं ।
कं करणं उवसंतं अणउवसंतं च कं करणं ॥
- 120) पडिवादो च कदिविधो कम्मिह कसायम्मिह होइ पडिवदिदो ।
केसिं कम्मंसाणं पडिवदिदो बंधगो होइ ॥
- 121) दुविहो खलु पडिवादो भवक्खयादुवसलक्खयादो दु ।
सुहुमे च संपराए बादररागे च बोद्धव्वा ॥
- 122) उवसामणाखयेण दु पडिवदिदो होइ सुहुमरागम्मिह ।
बादररागे णियमा भवक्खया होइ परिवदिदो ॥
- 123) उवसामणा-खएण दु अंसे बंधदि जहाणुपुव्वीए ।
एमेव य वेदयदे जहाणुपुव्वीय कम्मसे ॥
- 124) संकामयपट्ठवगस्स किं ट्ठिदियाणि पुव्वबद्धाणि ।
केसु व अणुभागेषु य संकंतं वा असंकंतं ॥
- 125) संकमणपट्ठवगस्स मोहणीयस्स दो पुण ट्ठिदीओ ।
किंचूणियं मुहुत्तं णियमा से अन्तरं होई ॥
- 126) झीणट्ठिदि-कम्मसे जे वेदयदे दु दोसु वि ट्ठिदीसु ।
जे चावि ण वेदयदे विदियाए ते दु बोद्धव्वा ॥

- 127) संकामणपट्टवगस्स पुव्ववद्धाणि मज्झिमट्टिदीसु ।
सादसुहणामगोदा तहाणुभागे सद्दुक्कस्सा ॥
- 128) अथ थीणगिद्धिकम्मं णिहाणिद्दा य पयलपयला य ।
तह णिरयतिरियणामा झीणा संछोहणादीसु ॥
- 129) संकंतमिह य णियमा णामागोदाणि वेयणीयं च ।
वस्सेसु असंखेज्जेसु सेसगा हीति संखेज्जे ॥
- 130) संकामगपट्टवगो के बंधदि के व वेदयदि अंसे ।
संकामेदि व के के केसु असंकामगो होइ ॥
- 131) वस्ससदसहस्साइं ट्टिदिसंखाए दु मोहणीयं तु ।
बंधदि च सदसहस्सेसु असंखेज्जेसु सेसाणि ॥
- 132) भयसोगमरदिरदिगं हस्सदुगुंछा णवुंसगित्थीओ ।
असादं णीचगोदं अजसं सारीरगं णाम ॥
- 133) सव्वावरणीयाणं जेसि ओवट्टणा दु णिहाए ।
पयलायुगस्स य तहा अबंधगो बंधगो सेसे ॥
- 134) णिहा य णीचगोदं पचला णियमा अगित्ति णामं च ।
छच्चेय णोकसाया अंसेसु अवेदगो होदि ॥
- 135) वेदे च वेदणीए सव्वावरणे तहा कसाए च ।
भयणिज्जो वेदेंतो अभज्जगो सेसगो होदि ॥
- 136) सव्वस्स मोहणीयस्स आणुपुव्वीयसंकमो होदि ।
लोभकसाये णियमा असंकमो होइ णायव्वो ॥
- 137) संकामगो च कोधं माणं मायं तहेव लोभं च ।
सव्वं जहाणुपुव्वी वेदादी संछुहदि कम्मं ॥
- 138) संछुहदि पुरिसवेदे इत्थीवेदं णवुंसयं चैव ।
सत्तेव णोकसाये णियमा कोहम्मि संछुहदि ॥
- 139) कोहं च छुहइ माणे माणं मायाए णियमसा छुहइ ।
मायं च छुहइ लोहे पडिलोमो संकमो णत्थि ॥

- 140) जो जम्हि संछुहंतो णियमा बंधसरिसम्हि संछुहइ ।
बंधेण हीणदरगे अहिए वा संकमो णत्थि ॥
- 141) संकामणपट्ठवगो माणकसायस्स वेदगो कोधं ।
संछुहदि अवेदंतो माणकसाये कमो सेसे ॥
- 142) बंधो व संकमो वा उदयो वा तह पदेस-अणुभागे ।
अधिगो समो व हीणो गुणेण किं वा विसेसेण ॥
- 143) बंधेण होई उदयो अहिओ उदएण संकमो अहियो ।
गुणसेढि अणंतगुणा बोद्धव्वा होइ अणुभागे ॥
- 144) बंधेण होइ उदओ अहिओ उदएण संकमो अहिओ ।
गुणसेढि असंखेज्जा च पदेसग्गेण बोद्धव्वा ॥
- 145) उदओ च अणंतगुणो संपहि बंधेण होइ अणुभागे ।
से काले उदयादो संपहि बंधो अणंतगुणो ॥
- 146) गुणसेढि अणंतगुणेणूणाए वेदगो दु अणुभागे ।
गणणादियंतसेढी पदेसग्गेण बोद्धव्वा ॥
- 147) बंधो व संकमो वा उदओ वा किं सगे सगे ठाणे ।
से काले से काले अधिओ हीणो समो वा पि ॥
- 148) बंधोदएहिं णियमा अणुभागो होदि णंतगुणहीणो ।
से काले से काले भज्जो पुण संकमो होदि ॥
- 149) गुणसेढि असंखेज्जा च पदेसग्गेण संकमो उदओ ।
से काले से काले भज्जो बंधो पदेसग्गे ॥
- 150) गुणदो अणंतगुणहीणं वेदयदि णियमसा दु अणुभागे ।
अहिया च पदेसग्गे गुणेण गणणादियंतेण ॥
- 151) किं अंतरं करंतो वड्ढदि हायदि ट्ठिदी य अणुभागे ।
णिरुवक्कमा च वड्ढी हाणी वा केच्चिरं कालं ॥
- 152) ओवट्टणा जहण्णा आवलिया ऊणिया तिभागेण ।
एसा ट्ठिदीसु जहण्णा तहाणुभागे सणंतेसु ॥

- 153) संकामेदुक्कड्ढदि जे अंसे ते अवट्ठिदा होंति ।
आवलियं से काले तेण परं होंति भजिदव्वा ॥
- 154) ओकड्ढदि जे अंसे से काले ते च होंति भजियव्वा ।
वड्डीए अवट्ठाणे हाणीए संकमे उदए ॥
- 155) एक्कं च ट्ठिदिविसेसं तु ट्ठिदिविसेसेसु कदिसु वड्ढेदि ।
हरस्सेदि कदिसु एगं तहाणुभागेषु बोद्धव्वं ॥
- 156) एक्कं च ट्ठिदिविसेसं तु असंखेज्जेसु ट्ठिदिविसेसेसु ।
वड्ढेदि हरस्सेदि च तहाणुभागे सणत्तेसु ॥
- 157) ट्ठिदि अणुभागे अंसे के के वड्ढदि के व हरस्सेदि ।
केसु अवट्ठाणं वा गुणेण किं वा विसेसेण ॥
- 158) ओवट्टेदि ट्ठिदि पुण अधिगं हीणं च बंधसमगं वा ।
उक्कड्ढदि बंधसमं हीणं अधिगं ण वड्ढेदि ॥
- 159) सव्वे वि य अणुभागे ओकड्ढदि जे ण आवलियपविट्ठे ।
उक्कड्ढदि बंधसमं णिसव्वकम होदि आवलिया ॥
- 160) वड्ढीदु होई हाणी अधिगा हाणी दु तह अवट्ठाणं ।
गुणसेदि असंखेज्जा च पदेसग्गेण बोद्धव्वा ॥
- 161) ओवट्टणमुव्वट्टणकिट्टीवज्जेसु होदि कम्मेषु ।
ओवट्टणा च णियमा किट्टीकरणम्हि बोद्धव्वा ॥
- 162) केवदिया किट्टीओ कम्मिह कसायम्हि कदि च किट्टीओ ।
किट्टीए किं करणं लक्खणमथ किं च किट्टीए ॥
- 163) बारस णव छ तिण्णि य किट्टीओ होंति अधव अणंताओ ।
एक्केक्कम्मिह कसाए तिग तिग अधवा अणंताओ ॥
- 164) किट्टी करेदि णियमा ओवट्टेंतो ट्टिदी य अणुभागे ।
वड्ढेंतो किट्टीए अकारगो होदि बोद्धव्वो ॥
- 165) गुणसेदि अणंतगुणा लोभादी कोधपच्छिमपदादो ।
कम्मस्स य अणुभागे किट्टीए लक्खणं एदं ॥

- 166) कदिसु च अणुभागेसु च द्विदीसु वा केतियासु का किट्टी ।
सव्वासु वा द्विदीसु च आहो सव्वासु पत्तेयं ॥
- 167) किट्टी च द्विदीविसेसेसु असंखेज्जेसु णियमसा होदि ।
यमा अणुभागेसु च होदि हु किट्टो अणंतेसु ॥
- 168) सव्वाओ किट्टीओ बिदियट्ठदीए दु होंति सव्विस्से ।
जं किट्ठि वेदयदे तिस्से अंसो च पढमाए ॥
- 169) किट्टी च पदेसग्गेणणुभागग्गेण का च कालेण ।
अधिका समा व हीणा गुणेण किंवा विसेसेण ॥
- 170) बिदियादो पुण पढमा संखेज्जगुणा भवे पदेसग्गे ।
बिदियादो पुण तदिया कमेण सेसा विसेसहिया ॥
- 171) बिदियादो पुण पढमा संखेज्ज गुणा दु वग्गणग्गेण ।
बिदियादो पुण तदिया कमेण सेसा विसेसहिया ॥
- 172) जा हीणा अणुभागेण अहिया सा वग्गणा पदेसग्गे ।
भागेणान्तिमेण दु अधिगा हीणा च बोद्धव्वा ॥
- 173) कोधादिवग्गणादो सुद्धं कोधस्स उत्तरपदं तु ।
सेसो अणंतभागो णियमा तिस्से पदेसग्गे ॥
- 174) एसो कमो य कोधे माणे णियमा च होदि मायाए ।
लोभस्सिह च किट्टीए पत्तेयं होदि बोद्धव्वो ॥
- 175) पढमा च अणंतगुणा बिदियादो णियमसा हि अणुभागो ।
तदियादो पुण बिदिया कमेण सेसा गुणेण अहिया ॥
- 176) पढमसमयकिट्टीणं कालो वस्सं व दो व चत्तारि ।
अट्टु च वस्साणि द्विदी बिदियट्ठिदीए समा होदि ॥
- 177) जं किट्ठि वेदयदे जवमज्झं सांतरं दुसु द्विदीसु ।
पढमा जं गुणसेही उत्तरसेही य बिदिया दु ॥
- 178) बिदियट्ठिदि-आदिपदा सुद्धं पुण होदि उत्तरपदं तु ।
सेसो असंखेज्जदिमो भागो तिस्से पदेसग्गे ॥

- 176) उदयादि या ट्ठिदीओ णिरंतरं तासु होइ गुणसेढी ।
उदयादि-पदेसग्गं गुणेण गणणादियंतेण ॥
- 180) उदयादिसु ट्ठिदीसु य जं कम्मं णियमसा दु तं हरस्सं ।
पविमदि ट्ठिदिक्खएण दु गुणेण गणणादियंतेण ॥
- 181) वेदगकालो किट्ठीय पच्छिमाए दु णियमसा हरस्सो ।
संखेज्जदिभागेण दु सेसग्गाणं कमेण अधिगो ॥
- 182) कदिसु गदीसु भवेसु य ट्ठिदिअणुभागेसु वा कसाएसु ।
कम्माणि पुव्वबद्धाणि कदीसु किट्ठीसु च ट्ठिदीसु ॥
- 183) दोसु गदीसु अभज्जाणि दोसु भज्जाणि पुव्वबद्धाणि ।
एइंदियकाएसु च पंचसु भज्जा ण च तसेसु ॥
- 184) एइंदियभवग्गहणेहि असंखेज्जेहि णियमसा बद्धं ।
एगादेगुत्तरियं संखेज्जेहि य तसभवेहि ॥
- 185) उक्कस्सय अणुभागे ट्ठिदिउक्कस्सगाणि पुव्वबद्धाणि ।
भज्जियव्वाणि अभज्जाणि होंति णियमा कसाएसु ॥
- 186) पज्जत्तापज्जत्तेण तथा त्थीपुण्णवुंसयमिस्सेण ।
सम्मत्ते मिच्छत्ते केण व जोगोवजोगेण ॥
- 187) पज्जत्तापज्जत्ते मिच्छत्तणवुंसये च सम्मत्ते ।
कम्माणि अभज्जाणि दु त्थीपुरिसे मिस्सगे भज्जा ॥
- 188) ओरालिये सरीरे ओरालियमिरसये च जोगे दु ।
चदुविधमणवच्चिजोगे च अभज्जा सेसगे भज्जा ॥
- 189) अध सुदमदिउवजोगे होंति अभज्जाणि पुव्वबद्धाणि ।
भज्जाणि च पच्चक्खेसु दोसु छदुमत्थणाणेषु ॥
- 190) कम्माणि अभज्जाणि दु अणगारअचक्खुदंसणुवजोगे ।
अध ओहिदंसणे पुण उवजोगे होंति भज्जाणि ॥
- 191) किं लेस्साए बद्धाणि केसु कम्मेसु वट्टमाणेण ।
सादेण असादेण च लिंगेण च कम्हि खेत्तम्हि ॥

- 192) लेस्सा साद असादे च अभज्जा कम्मसिप्पलिगे च ।
खेत्तम्हि च भज्जाणि दु समाविभागे अभज्जाणि ॥
- 193) एदाणि पुव्वबद्धाणि होंति सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु ।
सव्वेसु चाणुभागेसु णियमसा सव्वकिट्ठीसु ॥
- 194) एगसमयप्पबद्धा पुण अच्छुत्ता केत्तिगा कर्हि ट्ठिदीसु ।
भववद्धा अच्छुत्ता ट्ठिदीसु कर्हि केत्तिया होंति ॥
- 195) छण्हं आवलियाणं अच्छुत्ता णियमसा समयपबद्धा ।
सव्वेसु ट्ठिदिविसेसाणुभागेसु च चउण्हं पि ॥
- 196) जा चावि बज्झमाणी आवलिया होदि पढम किट्ठीए ।
पुव्वावलिया णियमा अणंतरा चदुसु किट्ठीसु ॥
- 197) तदिया सत्तसु किट्ठीसु चउत्थी दससु होइ किट्ठीसु ।
तेण परं सेसाओ भवति सव्वासु किट्ठीसु ॥
- 198) एदे समयपबद्धा अच्छुत्ता णियमसा इह भवम्मि ।
सेसा भववद्धा खलु संछुद्धा होंति बोद्धव्वा ॥
- 199) एकसमयपबद्धाणं सेसाणि च कदिसु ट्ठिदिविसेसेसु ।
भवसेसगाणि कदिसु च कदि कदि वा एगसमएण ॥
- 200) एककम्मिह ट्ठिदिविसेसे भवसेसगसमयपबद्धसेसाणि ।
णियमा अणुभागेसु य भवति सेसा अणतेसु ॥
- 201) ट्ठिदिउत्तरसेढीए भवसेससमयपबद्धसेसाणि ।
एगुत्तरमेगादी उत्तरसेढी असंखेज्जा ॥
- 202) एककम्मि ट्ठिदिविसेसे सेसाणि ण जत्थ होंति सामण्णा ।
आवलियासंखेज्जदिभागो तर्हि तारिसो समयो ॥
- 203) एदेण अंतरेण दु अपच्छिमाए दु पच्छिमे समए ।
भवसमयसेसगाणि दु णियमा तम्हि उत्तरपदाणि ॥
- 204) किट्ठीकदम्मि कम्मि ट्ठिदि-अणुभागेसु केसु सेसाणि ।
कम्माणि पुव्वबद्धाणि बज्झमाणाणुदिण्णाणि ॥

- 205) किट्टीकदम्मि कम्मे णामागोदाणि वेदणीयं च ।
वस्सेसु असंखेज्जेसु सेसगा होंति संखेज्जा ॥
- 206) किट्टीकदम्मि कम्मे सादं सुहणाममुच्चगोदं च ।
बंधदि च सदसहस्से ट्ठिदिमणुभागेसु दुक्कस्सं ॥
- 207) किट्टीकदम्मि कम्मे के बंधदि के व वेदयदि अंसे ।
संकामेदि च के के केसु असंकामगो होदि ॥
- 208) दससु च वस्सस्संतो बंधदि णियमा दु सेसगे अंसे ।
देसावरणीयाइं जेसि ओवट्टणा अत्थि ॥
- 209) चरिमो बादररागो णामागोदाणि वेदणीयं च ।
वस्सस्संतो बंधदि दिवसस्संतो य जं सेसं ॥
- 210) चरिमो य सुहमरागो णामागोदाणि वेदणीयं च ।
दिवसस्संतो बंधदि भिण्णमुहुत्तं तु जं सेसं ॥
- 211) अध सुदमदि-आवरणे च अंतराए च देसमावरणं ।
लद्धी यं वेदयदे सव्वावरणं अलद्धी य ॥
- 212) जसणाममुच्चगोदं वेदयदि णियमसा अणंतगुणं ।
गुणहीणमंतरायं से काले सेसगा भज्जा ॥
- 213) किट्टीकदम्मि कम्मे के वीचारा दु मोहणीयस्स ।
सेसाणं कम्माणं तहेव के के दु वीचारा ॥
- 214) किं वेदंतो किट्टि खवेदि किं चावि संछुहंतो वा ।
संछोहणमुदएण च अणुपुव्वं अणुपुव्वं वा ॥
- 215) पढमं बिदियं तदियं वेदंतो वावि संछुहंतो वा ।
चरिमं वेदयमाणो खवेदि उभएण सेसाओ ॥
- 216) जं वेदंतो किट्टि खवेदि किं चावि बंधगो तिस्से ।
जं चावि संछुहंतो तिस्से किं बंधगो होदि ॥
- 217) जं चावि संछुहंतो खवेदि किट्टि अबंधगो तिस्से ।
सुहमम्हि संपराए अबंधगो बंधगिदरासि ॥

- 218) जं जं खवेदि किट्टि ट्ठदि-अणुभागेसु केसुदीरेदि ।
संछुह्दि अण्णकिट्टिं से काले तासु अण्णासु ॥
- 219) बंधो व संकमो वा णियमा सव्वेसु ट्ठदिविसेसेसु ।
सव्वेसु चाणुभागेसु संकमो मज्झिमो उदओ ॥
- 220) संकामेदि उदीरेदि चावि सव्वेहिं ट्ठदिविसेसेहिं ।
किट्टीए अणुभागे वेदंतो मज्झिमो णियमा ॥
- 221) ओकड्डदि जे अंसे से काले किण्णु ते पवेसेदि ।
ओकड्डदे च पुव्वं सरिसमसरिसे पवेसेदि ॥
- 222) उक्कड्डदि जे अंसे से काले किण्णु ते पवेसेदि ।
उक्कड्डदे च पुव्वं सरिसमसरिसे पवेसेदि ॥
- 223) बंधो व संकमो वा तह उदयो वा पदेस-अणुभागे ।
बहुगत्ते थोवत्ते जहेव पुव्वं तहेवेण्ह ॥
- 224) जो कम्मंसो पविसदि पओगसा तेण णियमसा अहिओ ।
पविसदि ठिदिक्खएण दु गुणेण गणणादियंतेण ॥
- 225) आवलियं च पविट्ठं पओगसा णियमसा च उदयादी ।
उदयादिपदेसगं गुणेण गणणादियंतेण ॥
- 226) जा वग्गणा उदीरेदि अणंता तासु संकमदि एक्का ।
पुव्वपविट्ठा णियमा एक्किस्से हीति च अणंता ॥
- 227) जे चावि य अणुभागा उदीरिदा णियमसा पओगेण ।
तेयप्पा अणुभागा पुव्वपविट्ठा परिणमति ॥
- 228) पच्छिम-आवलियाए समयूणाए दु जे य अणुभागा ।
उक्कस्स-हेट्ठिमा मज्झिमासु णियमा परिणमति ॥
- 229) किट्टीदो किट्टि पुण संकमदि खयेण किं पयोगेण ।
किं सेसगम्हि किट्टीय संकमो होदि अण्णिस्से ॥
- 230) किट्टीदो किट्टि पुण संकमदे णियमसा पओगेण ।
किट्टीए सेसगं पुण दो आवलियासु जं बद्धं ॥

- 231) समयूणा च पविट्ठा आवलिया होदि पढमकिट्टीए ।
पुण्णा जं वेदयदे एवं दो संकमे होंति ॥
- 232) खीणेषु कसाएसु य सेसाणं के व होंति वीचारा ।
खवणा व अखवणा वा बंधोदयणिज्जरा वापि ॥
- 233) संकामणमोवट्टणकिट्टीखवणाए खीणमोहंते ।
खवगा य आणुपुव्वी बोद्धव्वा मोहणीयस्स ॥
- 234) अण मिच्छ मिस्स सम्मं अट्ठ णवुंसित्थि वेद छक्कं च ।
पुंवेदं च खवेदि हु कोहादीए च संजलणे ॥
- 235) अध थीणगिद्धिकम्मं णिद्दाणिद्दा य पयलपयला य ।
अध णिरय तिरियणामा झीणा संछोहणादीसु ॥
- 236) सव्वस्स मोहणीयस्स आणुपुव्वी य संकमो होइ ।
लोभकसाए णियमा असंकमो होइ बोधव्वो ॥
- 237) संछुहदि पुरिसवेदे इत्थीवेदं णवुंसयं चैव ।
सत्तेव णोकसाए णियमा कोधम्मिह संछुहदि ॥
- 238) कोहं च छुहइ माणे माणं मायाए णियमसा छुहइ ।
मायं च छुहइ लोहे पडिलोमो संकमो णत्थि ॥
- 239) जो जम्मिह संछुहंतो णियमा बंधम्मिह होइ संछुहणा ।
बंधेण हीगदरगे अहिए वा संकमो णत्थि ॥
- 240) बंधेण होइ उदओ अहिओ उदएण संकमो अहिओ ।
गुणसेट्ठि अणंतगुणा बोद्धव्वा होइ अणुभागे ॥
- 241) बंधेण होइ उदओ अहिओ उदएण संकमो अहिओ ।
गुणसेट्ठि असंखेज्जा च पदेसग्गेण बोद्धव्वा ॥
- 242) उदयो च अणंतगुणो संपहिबंधेण होई अणुभागे ।
से काले उदयादो संपहिबंधो अणंतगुणो ॥

- 243) चरिमे बादररागे णामागोदापि वेदणीयं च ।
वस्सस्संतो बंधदि दिवस्संतो य जं सेंसं ॥
- 244) जं चावि संछुहंतो खवेइ किट्टि अबंधगो त्तिस्से ।
सुहुमम्हि संपराए अबंधगो बंधगियराणं ॥
- 245) जाव ण छदुमत्थादो तिण्हं घादीण वेदगो होइ ।
अधणंतरेण खइया सव्वण्हू सव्वदरिसी य ॥

235-44, Cf. गा. 128, 136, 138, 139, 140, 143, 144, 145, 209, 217.

संकाय-पत्रिका-२

कसायपाहुडसुत्तं : हिन्दी भावानुवाद

- 1) पंचम पूर्व में दशम वस्तु में, तृतीय पेज्जपाहुड में यह कसायपाहुड है।
- 2) इसमें एक सौ अस्सी गाथा पन्द्रह अर्थों में विभक्त हैं। जिस अर्थ में जितने गाथा सूक्त हैं, उन्हें कहूँगा।
- 3) प्रयोद्वेष, स्थिति और अनुभाग विभक्ति तथा बन्धक अर्थात् बन्ध और संक्रम, इन पाँच अर्थों में तीन-तीन गाथा जानना चाहिए।
- 4) वेदक में चार, उपयोग में सात, चतुःस्थान में सोलह और व्यंजन में पाँच गाथा हैं।
- 5) दर्शनमोह की उपशामना में पन्द्रह गाथा हैं। दर्शनमोह की क्षपणा में पाँच सूक्त गाथा हैं।
- 6) संयमासंयम की लब्धि तथा चरित्र की लब्धि, इन दो में एक ही गाथा है। चरित्रमोह-उपशामना में आठ गाथा हैं।
- 7) चरित्रमोह की क्षपणा के प्रस्थापक में चार, संक्रमण में चार, अपवर्तना में तीन और कृष्टीकरण में ग्यारह गाथा हैं।
- 8) क्षपणा में चार, क्षीणमोह में एक गाथा है। एक गाथा संग्रहणी में है। इस प्रकार चरित्रमोह-क्षपणा अधिकार में कुल अट्ठाईस गाथा हैं।
- 9) कृष्टि-सम्बन्धी गाथाओं में वीचार विषयक एक, संग्रहणी सम्बन्धी एक, क्षीणमोह विषयक एक और प्रस्थापक से संबद्ध चार गाथा, ये सात गाथाएँ हैं। इनके अतिरिक्त शेष सभाष्य गाथा हैं।
- 10) संक्रामण सम्बन्धी चार गाथा, अपवर्तना विषयक तीन, कृष्टि से सम्बन्धित दश और कृष्टि क्षपणा विषयक चार, ये इक्कीस सूक्त गाथा हैं। अन्य भाष्य गाथा हैं, उन्हें सुनो।
- 11- इक्कीस सूक्त गाथाओं की भाष्य रूप गाथाओं की संख्या क्रमशः पाँच,
- 12) 'तीन, दो और छह,' चार, तीन, तीन, एक, चार, तीन, दो, 'पाँच, एक, छह', तीन, चार, दो, चार, चार, दो, पाँच, एक, एक, दश और दो है।
- 13- अर्थाधिकार इस प्रकार हैं—१. प्रयोद्वेषविभक्ति, २. स्थिति, ३. अनुभाग,
- 14) ४. अकर्मबन्ध की अपेक्षा बंधक, ५. कर्मबंधक की अपेक्षा बंधक, ६. वेदक,

७. उपयोग, ८. चतुःस्थान, ९. व्यंजन, १०. दर्शनमोह-उपशामना, ११. दर्शनमोह-क्षपणा, ५२. देशविरति, १३. संयम, १४. चरित्रमोह-उपशामना और १५. चरित्रमोह-क्षपणा । इन पन्द्रह अर्थाधिकारों में ही अद्धापरिमाण का निर्देश है ।
- 15) अनाकार (दर्शनोपयोग) चक्षु, श्रोत्र, घ्राण और जिह्वा इन्द्रिय सम्बन्धी अवग्रहज्ञान, मन, वचन, काय, स्पर्शनेन्द्रिय विषयक अवग्रहज्ञान, अवाय, ईहा, श्रुत और उच्छ्वास, इन सबका जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष-विशेष अधिक है, तथापि वह संख्यात आवली प्रमाण है ।
- 16) तद्भवस्थ केवली के केवलदर्शन, केवलज्ञान और सकषाय जीव के शुक्ल-लेस्या, इन तीनों का; एकत्ववितर्क अवीचारशुक्लध्यान, पृथक्त्ववितर्क वीचार-शुक्लध्यान, प्रतिपाती उपशामक, आरोहक उपशामक और क्षपक सूक्ष्मसाम्प-रायसंयत; इन सबका जघन्यकाल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष विशेष अधिक है ।
- 17) मान, क्रोध, माया और लोभ तथा क्षुद्रभवग्रहण और कृष्टीकरण, इनका जघन्य काल उत्तरोत्तर विशेष विशेष अधिक है, ऐसा जानना चाहिए ।
- 18) संक्रामण, अपवर्तन, उपशान्तकषाय, क्षीणमोह, उपशामक और क्षपक, इनके जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष विशेष अधिक जानना चाहिए ।
- 19) पूर्वोक्त सर्वजघन्यकाल निर्व्याघात अर्थात् मरण आदि व्याघात के बिना होते हैं । ये जघन्य काल सम्बन्धी पद आनुपूर्वी से कहे गये हैं । इससे आगे कहे जाने वाले उत्कृष्ट काल सम्बन्धी पदों अनानुपूर्वी अर्थात् परिपाटी क्रम के बिना जानना चाहिए ।
- 20) चक्षु इन्द्रिय सम्बन्धी मतिज्ञानोपयोग, श्रुतज्ञानोपयोग, पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान, मानकषाय, अवाय मतिज्ञान, उपशान्तकषाय और उपशामक, इनके उत्कृष्ट कालों का परिमाण अपने से पूर्ववर्ती स्थान के काल से दुगुना-दुगुना है । इनसे अतिरिक्त शेष स्थानों का उत्कृष्ट काल का परिमाण स्वपूर्व स्थान से विशेष अधिक है ।
- 21) किस किस कषाय में किस किस नय की अपेक्षा प्रेय या द्वेष का व्यवहार होता है ? अथवा कौन नय किस द्रव्य में द्वेष को प्राप्त होता है और कौन नय किस द्रव्य में प्रिय के समान आचरण करता है ?
- 22) मोहनीय की प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट प्रदेश विभक्तियों तथा क्षीणाक्षीण और स्थित्यन्तिक की प्ररूपणा करनी चाहिए ।

संकाय-पत्रिका-२

- 23) कितनी प्रकृतियों को बाँधता है ? कितनी स्थिति, अनुभाग एवं जघन्य और उत्कृष्ट परिणाम सहित कर्म प्रदेशों को बाँधता है ? कितनी प्रकृतियों का संक्रमण करता है, कितनी स्थिति और अनुभाग का संक्रमण करता है तथा कितने गुण-हीन या गुणविशिष्ट जघन्य-उत्कृष्ट प्रदेशों का संक्रमण करता है ?
- 24- संक्रम की उपक्रम विधि पाँच प्रकार की है, निक्षेप चार प्रकार का है। नय
- 25) विधि प्रकृत है और प्रकृत में निर्गम भी आठ प्रकार का है। प्रकृति संक्रम दो प्रकार का है—एकैक प्रकृति संक्रम अर्थात् एक एक प्रकृति में संक्रम और प्रकृतिस्थानसंक्रम अर्थात् प्रकृति में संक्रम विधि। संक्रम में प्रतिग्रह विधि होती है और वह उत्तम—उत्कृष्ट तथा जघन्य भेद सहित है।
- 26) संक्रम के दो भेद हैं—प्रकृति संक्रम, प्रकृतिस्थान संक्रम। असंक्रम भी दो प्रकार का है—१. प्रकृति असंक्रम और २. प्रकृतिस्थान असंक्रम। इसी प्रकार अप्रतिग्रहविधि दो प्रकार की होती है—प्रकृति अप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थान अप्रतिग्रह। इस तरह निर्गम के आठ भेद होते हैं।
- 27) अट्ठाईस, चौबीस, सत्तरह, सोलह और पन्द्रह इन पाँचों प्रकृतिक स्थानों को छोड़कर शेष तेईस स्थानों का संक्रम होता है।
- 28) सोलह, बारह, आठ, बीस और तीन को लेकर एक-एक अधिक बीस अर्थात् तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस और अट्ठाईस प्रकृतिरूप स्थानों को छोड़कर शेष अठारह प्रतिग्रह स्थान होते हैं।
- 29) बाईस, पन्द्रह, एकादश और उन्नीस प्रकृतिक चार प्रतिग्रह स्थानों में ही छब्बीस और सत्ताईस-प्रकृतिक स्थानों का नियम से संक्रम होता है।
- 30) सत्तरह एवं इक्कीस प्रकृतिक दो प्रतिग्रह स्थानों में पच्चीस प्रकृतिक स्थान का नियम से संक्रमण होता है। यह पच्चीस-प्रकृतिक संक्रम स्थान नियम से चारों गतिओं में होता है तथा दृष्टिगत अर्थात् दृष्टिपद है अन्त में जिनके, ऐसे मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि, इन तीनों ही गुणस्थानों में वह पच्चीस प्रकृतिक संक्रम स्थान नियम से पाया जाता है।
- 31) तेईस-प्रकृतिक स्थान का संक्रम बाईस, पन्द्रह, सत्तरह, ग्यारह और उन्नीस प्रकृतिक इन पाँच प्रतिग्रह स्थानों में होता है। यह स्थान संज्ञी पंचेन्द्रियों में ही होता है।

- 32) बाईस-प्रकृतिक स्थान का संक्रम नियम से चौदह, दश, सात और अट्ठारह, इन चार प्रतिग्रह स्थानों में होता है। यह बाईस-प्रकृतिक नियम से मनुष्य गति में ही विरत, देशविरत तथा अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में होता है।
- 33) एकाधिक बीस-प्रकृतिक स्थान का संक्रम तेरह, नौ, सात, सत्तरह, पाँच तथा इक्कीस प्रकृतिक छह स्थानों में होता है। ये छहों प्रतिग्रहस्थान सम्यक्त्व से युक्त गुणस्थानों में होते हैं।
- 34) पूर्वोक्त स्थानों से अवशिष्ट संक्रम और प्रतिग्रह स्थान उपशमक और क्षपक संयत के ही होते हैं। बीस-प्रकृतिक स्थान का संक्रम छह और पाँच-प्रकृतिक, इन दो प्रतिग्रह स्थानों में जानना चाहिए।
- 35) उन्नीस-प्रकृतिक स्थान का संक्रम पाँच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान में तथा अट्ठारह-प्रकृतिक स्थान का संक्रम चार-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानों में होता है। चौदह-प्रकृतिक स्थान का संक्रम छह-प्रकृतियों वाले प्रतिग्रहस्थान में एवं तेरह-प्रकृतिक स्थान का संक्रम छह और पाँच-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानों में जानना चाहिए।
- 36) बारह-प्रकृतिक स्थान का संक्रम पाँच और चार तथा ग्यारह-प्रकृतिक स्थान का संक्रम पाँच, चार और तीन-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानों में होता है। दश प्रकृतिक स्थान का संक्रम पाँच और चार में एवं नौ-प्रकृतिक स्थान का संक्रम तीन-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान में जानना चाहिए।
- 37) आठ-प्रकृतिक स्थान का संक्रम दो, तीन और चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानों में होता है। सात-प्रकृतिक स्थान का संक्रम चार और तीन-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानों में, छह प्रकृतिक स्थान का संक्रम नियम से दो प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान में तथा पाँच-प्रकृतिक स्थान का संक्रम तीन, दो और एक-प्रकृतिक प्रतिग्रह स्थान में होता है।
- 38) चार-प्रकृतिक स्थान का संक्रम तीन और चार में, तीन-प्रकृतिक स्थान का संक्रम तीन और एक-प्रकृतिक प्रतिग्रह स्थान में जानना चाहिए। दो-प्रकृतिक स्थान का संक्रम दो और एक प्रतिग्रह स्थानों में तथा एक-प्रकृतिक स्थान का संक्रम एक प्रकृतिक प्रतिग्रह स्थान में समझना चाहिए।
- 39) प्रकृति स्थान संक्रम में आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी, दर्शनमोह क्षय एवं अक्षय निमित्तक, चरित्र मोह के उपशामना तथा क्षपणानिमित्तक, ये छः संक्रम स्थानों के अनुमार्गण के उपाय हैं।

संकाय-पत्रिका-२

- 40- एक-एक प्रतिग्रह, संक्रम तथा तदुभय स्थान में गति आदि मार्गणा स्थान
- 41) युक्त जीवों का मार्गण करने पर भव्य और अभव्य जीव कितने स्थान पर होते हैं तथा गति आदि शेष मार्गणा युक्त जीव किन-किन स्थानों पर होते हैं ? औदयिकादि पाँच भाव विशिष्ट जीवों के किस गुणस्थान में कितने संक्रम स्थान तथा प्रतिग्रह स्थान होते हैं तथा किस संक्रम या प्रतिग्रह स्थान की समाप्ति कितने काल में होती है ?
- 42) नरकगति, अमरगति, संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यचों में सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस, तेईस और इक्कीस प्रकृतिक पाँच ही संक्रमस्थान होते हैं। मनुष्यगति में समस्त तथा शेष एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय तथा असंज्ञी जीवों में सत्ताईस, छब्बीस और पच्चीस-प्रकृतिक, ये तीन ही संक्रमस्थान होते हैं।
- 43) मिथ्यात्व गुणस्थान में सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस और तेईस प्रकृतिवाले चार संक्रमस्थान, मिश्र में पच्चीस और इक्कीस ये दो संक्रमस्थान और सम्यक्त्व युक्त गुणस्थानों में तेईस संक्रमस्थान होते हैं। संयमयुक्त प्रमत्तसंयतादि में सत्ताईस, छब्बीस, तेईस, बाईस और इक्कीस-प्रकृतिक पाँच संक्रमस्थान होते हैं। अविरत में सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस, तेईस, बाइस, और इक्कीस-प्रकृतिक ये छह संक्रमस्थान होते हैं।
- 44) शुक्ललेश्या में तेईस संक्रमस्थान हैं। तेजोलेश्या और पद्मलेश्या में सत्ताईस से इक्कीस तक के छह संक्रमस्थान, कापोत नील और कृष्ण लेश्या में सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस, तेईस और इक्कीस प्रकृतिवाले पाँच संक्रमस्थान कहे गये हैं।
- 45) अपगत-नपुंसक-स्त्री एवं पुरुष वेदों में आनुपूर्वी से—क्रमशः अठारह, नौ, एकादश तथा त्रयोदश संक्रमस्थान होते हैं।
- 46) क्रोधादि चारों कषायों से उपयुक्त जीवों में आनुपूर्वी से सोलह, उन्नीस, तेईस और तेईस संक्रमस्थान होते हैं।
- 47) मति, श्रुत और अवधिज्ञानों में तेईस संक्रमस्थान होते हैं। एक अर्थात् मनःपर्यय में पच्चीस और छब्बीस प्रकृतिक स्थानों को छोड़कर शेष इक्कीस संक्रमस्थान होते हैं। कुमति-कुश्रुत और विभंग, इन तीन अज्ञानों में सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस, तेईस और इक्कीस-प्रकृतिक पाँच संक्रमस्थान हैं।
- 48) आहारक एवं भव्यों में तेईस संक्रमस्थान होते हैं। अनाहारकों में सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस, तेईस और इक्कीस-प्रकृतिक पाँच संक्रमस्थान होते हैं। अभव्यों में एक पच्चीस-प्रकृतिक स्थान ही होता है।

- 49) अपगतवेदी जीव के छब्बीस, सत्ताईस, तेईस, पच्चीस और बाईस-प्रकृतिक ये पाँच शून्यस्थान हैं, इसमें संक्रमस्थान नहीं पाए जाते हैं ।
- 50) नपुंसक वेदियों में उन्नीस, अठारह, चौदह तथा ग्यारह को आदि लेकर शेष (ग्यारह, दश, नौ, आठ, सात, छह, पाँच, चार, तीन, दो और एक) चौदह स्थान शून्य हैं ।
- 51) स्त्रीवेदियों में अट्टारह और चौदह ये दो स्थान, तथा दश को आदि लेकर एक तक के दश स्थान, इस तरह बारह शून्य स्थान समझना चाहिए ।
- 52) पुरुषवेदियों में, उपशामक और क्षपक में चौदह प्रकृतिक स्थान एवं नौ से लेकर एक तक के नौ स्थान, ये दश स्थान शून्य हैं ।
- 53) प्रथम कषाय से उपयुक्त जीवों में नौ, आठ, सात, छह, पाँच, दो और एक-प्रकृतिक सात शून्य स्थान हैं ।
- 54) द्वितीय कषाय से उपयुक्तों में सात, छह, पाँच और एक-प्रकृतिक ये चार स्थान शून्य हैं । इस प्रकार आनुपूर्वी से शून्य स्थान कहे गये हैं ।
- 55) इस प्रकार वेदमार्गणा में और कषायमार्गणा में संक्रमस्थानों के शून्य और अशून्य स्थानों के दृष्टिगोचर हो जाने पर (जान लेने पर) शेष मार्गणाओं में भी आनुपूर्वी से संक्रमस्थानों की गवेषणा करनी चाहिए ।
- 56) कर्मांशिकस्थानों में (मोहनीय के सत्त्व स्थानों में) और बंधस्थानों में संक्रमस्थानों की गवेषणा करना चाहिए । एक-एक बन्ध स्थान और सत्त्वस्थान के साथ संयुक्त संक्रमस्थानों के एक संयोगी तथा द्विसंयोगी भंगों को निकालना चाहिए ।
- 57- प्रकृतिकस्थानसंक्रम अधिकार में सादिसंक्रम, जघन्यसंक्रम, अल्पबहुत्व, काल,
- 58) अन्तर, भागाभाग और परिमाण अनुयोगद्वार होते हैं । इस प्रकार नय के ज्ञाताओं को श्रुतोपदिष्ट, उदार और गम्भीर संक्रमण द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और सन्निपात (अर्थात् सन्निकर्ष) की अपेक्षा जानना चाहिए ।
- 59) प्रयोग विशेष के द्वारा कितनी कर्म प्रकृतियों को उदयावली में प्रवेश करता है ? तथा किसके कितनी कर्म प्रकृतियों को उदीरणा के विना ही स्थिति क्षय से उदयावली में प्रवेश करता है ? क्षेत्र, भव, काल और पुद्गल द्रव्य का आश्रय लेकर जो स्थिति विपाक होता है, उसे उदीरणा कहते हैं और उदय-क्षय को उदय कहते हैं ।

- 60) कौन किस स्थिति में प्रवेशक है ? कौन किस अनुभाग में प्रवेश कराता है ? इनका सांतर तथा निरन्तरकाल कितने समय प्रमाण जानना चाहिए ?
- 61) विवक्षित समय से अनन्तरवर्ती समय में कौन जीव बहुत की अर्थात् अधिक से अधिकतर कर्मों की, और कौन जीव स्तोक से स्तोकतर कर्मों की उदीरणा करता है ? प्रतिसमय उदीरणा करता हुआ यह जीव कितने समय तक निरन्तर उदीरणा करता रहता है ?
- 62) जो जीव स्थिति, अनुभाग और प्रदेशाग्र में जिसे संक्रमण करता है, जिसे बाँधता है, जिसकी उदीरणा करता है, वह द्रव्य किससे अधिक होता है (और किससे कम होता है ?) ।
- 63) किस कषाय में एक जीव का उपयोग कितने काल तक होता है ? कौन उपयोग काल किससे अधिक है और कौन जीव किस कषाय में निरन्तर एक सदृश उपयोग से उपयुक्त रहता है ?
- 64) एक भव के ग्रहण-काल में और एक कषाय में कितने उपयोग होते हैं, तथा एक उपयोग तथा एक कषाय में कितने भव होते हैं ?
- 65) किस कषाय में उपयोग सम्बन्धी वर्गणाएँ कितनी होती हैं ? किस गति में कितनी वर्गणाएँ होती हैं ?
- 66) एक अनुभाग में और एक कषाय में एक काल की अपेक्षा कौन सी गति सदृश रूप से उपयुक्त होती है ? कौन सी गति विसदृश रूप से उपयुक्त होती है ?
- 67) सदृश कषाय—उपयोग वर्गणाओं में कितने जीव उपयुक्त हैं, तथा चारों कषायों से उपयुक्त सर्वजीवों का कौन सा भाग एक-एक कषाय में उपयुक्त है ? किस किस कषाय से उपयुक्त जीव कौन-कौन सी कषायों से उपयुक्त जीवराशि के साथ गुणाकार और भागहार की अपेक्षा हीन अथवा अधिक होते हैं ?
- 68) जो जो जीव वर्तमान समय में जिस जिस कषाय में उपयुक्त पाये जाते हैं, वे क्या अतीत काल में उसी कषाय के उपयोग से उपयुक्त थे अथवा क्या वे आगामी काल में उसी कषाय रूप उपयोग से उपयुक्त होंगे ? इसी प्रकार सर्वत्र मार्गणाओं में जानना चाहिए ।

- 69) कितनी उपयोग वर्गणाओं के द्वारा कौन सा स्थान अविरहित और कौन विरहित पाया जाता है ? प्रथम समय में उपयुक्त जीवों के द्वारा और इसी प्रकार अन्तिम समय में उपयुक्त जीवों के द्वारा स्थानों को जानना चाहिए ।
- 70) क्रोध चार प्रकार का कहा गया है । मान भी चार प्रकार का होता है । माया चार प्रकार की कही गयी है और लोभ भी चार प्रकार का है ।
- 71) क्रोध चार प्रकार का है—नगराजिसदृश—पर्वत की रेखा के समान, पृथिवी-राजिसदृश—पृथिवी की रेखा के समान, बालुकाराजिसदृश—धूल की रेखा के समान, और उदकराजिसदृश—जल की रेखा के समान । मान के भी चार भेद हैं—शैलघन (शिला स्तम्भ) समान, अस्थिसमान, दाह (लकड़ी) समान तथा लता के समान ।
- 72) माया भी चार प्रकार की कही गई है—बांस की जड़ के समान, मेंढे के सींग के सदृश, गोमूत्र के समान तथा अवलेखनी (दातौन या जीभी) के समान ।
- 73) लोभ भी चार प्रकार का कहा गया है—कृमिराग के रंग समान, अक्षमल (गाड़ी का औँगन) के समान, पांशुलेप (धूलि) के समान तथा हरिद्रा (हल्दी) से रंगे वस्त्र के समान ।
- 74) इन अनंतर-निर्दिष्ट चारों कषायों सम्बन्धी सोलहों स्थानों में स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों की अपेक्षा कौन स्थान किससे अधिक होता है (अथवा कौन स्थान किससे हीन होता है) ?
- 75) लता समान मान में उत्कृष्ट वर्गणा (अन्तिम स्पर्धक की अन्तिम वर्गणा) जघन्यवर्गणा से (प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा से) प्रदेशों की अपेक्षा नियम से अनन्तगुणी हीन है । (किन्तु अनुभाग की अपेक्षा जघन्य वर्गणा से उत्कृष्ट वर्गणा निश्चय से अनन्तगुणी अधिक जानना चाहिए ।)
- 76) लता समान मान से दाह समान मान प्रदेशों की अपेक्षा नियम से अनन्तगुणित हीन है । इसी क्रम से शेष अर्थात् दाह समान मान से अस्थि समान मान और अस्थि समान मान से शैल समान मान नियम से अनन्तगुणित हीन है ।
- 77) लता समान मान से शेष स्थानीय मान अनुभागाग्र (अनुभाग समुदाय) और वर्गणाग्र (वर्गणा समूह) की अपेक्षा क्रमशः नियम से अनन्तगुणित अधिक होते हैं ।

- 78) विवक्षित सन्धि से अग्रिम सन्धि अनुभाग की अपेक्षा नियम से अनन्तभागरूप विशेष से अधिक होती है और प्रदेशों की अपेक्षा नियम से अनन्तभाग से हीन होती है ।
- 79) दारु समान स्थान में जो उत्कृष्ट अनुभाग अंश है, वह सर्वावरणीय (सर्वघाती) है । उससे अधस्तन भाग देशावरण (देशघाती) है और उपरितन भाग सर्वावरण (सर्वघाती) है ।
- 80) यही क्रम नियम से मान, माया, लोभ और क्रोध कषाय सम्बन्धी चारों स्थानों में निरवशेष रूप से जानना चाहिए ।
- 81) इन उपर्युक्त स्थानों में से कौन स्थान किस गति में बद्ध, बध्यमान, उपशान्त या उदीर्ण रूप से पाया जाता है ?
- 82) पूर्वोक्त सोलह स्थान यथासम्भव संज्ञियों, असंज्ञियों में, पर्याप्त में, अपर्याप्त में, सम्यक्त्व में मिथ्यात्व में और मिश्र सम्यग्मिथ्यात्व में जानना चाहिए ।
- 83) विरति में, अविरति में, विरताविरत में, अनाकार उपयोग में, साकार उपयोग में, योग में तथा लेश्या में पूर्वोक्त सोलह स्थान जानना चाहिए ।
- 84) किस स्थान का वेदन करता हुआ कौन जीव किस स्थान का बंधक होता है और किस स्थान का अवेदन करता हुआ कौन जीव किस स्थान का अबंधक रहता है ?
- 85) असंज्ञी नियम से लता समान और दारु समान अनुभाग स्थान को बांधता है । संज्ञी चारों स्थानों में भजनीय है । इसी प्रकार से सभी मार्गणाओं में बंध और अबंध का अनुगम करना चाहिए ।
- 86) क्रोध, कोप, रोष, अक्षमा, संज्वलन, कलह, वृद्धि, क्षंशा, द्वेष और विवाद, ये दश क्रोध के नाम हैं ।
- 87) मान, मद, दर्प, स्तम्भ, उत्कर्ष, प्रकर्ष, समुत्कर्ष, आत्मोत्कर्ष, परिभव तथा उत्सिक्त ये दश नाम मानकषाय के हैं ।
- 88) माया, सातियोग, निकृति, वंचना, अनूजुता, ग्रहण, मनोज्ञमार्गण, कल्क, कुहक, गूहन और छन्न ये ग्यारह नाम मायाकषाय के हैं ।
- 89- काम, राग, निदान, छंद, स्वत, प्रेय, द्वेष, स्नेह, अनुराग, आशा, इच्छा,
- 90) मूर्च्छा, गृद्धि, साशता या शाश्वता, प्रार्थना, लालसा, अविरति, तृष्णा, विद्या तथा जिह्वा ये बौस लोभ के एकार्थक नाम कहे गये हैं ।

- 91) दर्शनमोह के उपशामक का परिणाम किस प्रकार का होता है, किस योग, कषाय और उपयोग में वर्तमान, किस लेश्या और वेदयुक्त जीव दर्शनमोह का उपशामक होता है ?
- 92) दर्शनमोह का उपशम करनेवाले के कौन-कौन कर्म पूर्वबद्ध हैं तथा वर्तमान में कौन-कौन कर्मों को बांधता है ? कौन-कौन प्रकृतियाँ उदयावली में प्रवेश करती हैं तथा कौन-कौन प्रकृतियों का यह प्रवेशक है, (अर्थात् किन-किन प्रकृतियों की यह उदीरणा करता है ?)
- 93) दर्शनमोह के उपशम के पूर्व बन्ध अथवा उदय की अपेक्षा कौन-कौन से कर्मांश क्षीण होते हैं ? कहाँ पर अन्तर को करता है ? कहाँ पर किन किन कर्मों का उपशामक होता है ?
- 94) दर्शनमोह का उपशामक किस स्थिति तथा अनुभाग सहित किन-किन कर्मों का अपवर्तन करके किस स्थान को प्राप्त करता है और शेष कर्म किस स्थिति और अनुभाग को प्राप्त होते हैं ?
- 95) दर्शनमोह का उपशम करनेवाला जीव चारों ही गतियों में जानना चाहिए । वह नियम से पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी और पर्याप्तक होता है ।
- 96) सभी तरकों में, भवनवासियों, द्वीप समुद्रों, गुह्यों (व्यंतरों) ज्योतिषियों, वैमानिकों, आभियोग्यों और अनभियोग्यों में दर्शनमोह का उपशम होता है, ऐसा जानना चाहिए ।
- 97) दर्शनमोह के उपशामक सर्वजीव निर्व्याघात तथा निरासान होते हैं । दर्शनमोह के उपशान्त होने पर सासादन भाव भजनीय है, किन्तु क्षीण होने पर निरासान ही रहता है ।
- 98) साकारोपयोग स्थित जीव ही दर्शनमोह के उपशमन का प्रस्थापक होता है, किन्तु उसका निष्ठापक तथा मध्यम अवस्था वाला जीव भजितव्य है । मन आदि योगों में से किसी एक योग तथा तेजोलेश्या के जघन्य अंश को प्राप्त जीव दर्शनमोह का उपशमन करता है ।
- 99) उपशामक के मिथ्यात्व वेदनोय कर्म का उदय जानना चाहिए । किन्तु उपशान्त अवस्था के विनाश होने पर उस मिथ्यात्व का उदय भजितव्य है ।
- 100) दर्शनमोह के तीनों (मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति) कर्मांश दर्शनमोह की उपशान्त अवस्था में सर्वस्थिति में विशेषों के साथ उपशान्त

(उदय रहित) होते हैं। एक ही अनुभाग में उन तीनों कर्मांशों के सभी स्थिति विशेष नियम से अवस्थित रहते हैं।

- 101) उपशामक के मिथ्यात्वप्रत्ययक (मिथ्यात्व के निमित्त से मिथ्यात्व और ज्ञानावरणादि, कर्मबन्ध जानना चाहिए। किन्तु दर्शनमोह की उपशान्त अवस्था में मिथ्यात्व-प्रत्ययक बन्ध नहीं होता है। उपशान्त दशा के अवसान हो जाने पर मिथ्यात्वनिमित्तकबन्ध भजितव्य है।
- 102) सम्यग्मिथ्यादृष्टि दर्शनमोह का अबन्धक होता है। वेदक, क्षायिकसम्यग्दृष्टि आदि (अर्थात् उपशम और सासादन) भी दर्शनमोह के अबन्धक हैं।
- 103) उपशम सम्यक्त्व के दर्शन मोहनीय कर्म अन्तर्मूर्हूर्तकाल तक सर्वोपशम से उपशान्त रहता है। अन्तर्मूर्हूर्त बीतने पर मिथ्यात्व, मिश्र-सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति में से किसी एक का उदय हो जाता है।
- 104) अनादि मिथ्यादृष्टि को सम्यक्त्व का प्रथमबार लाभ सर्वोपशम से होता है। विप्रकृष्ट सादि मिथ्यादृष्टि भी सर्वोपशम से प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है। अविप्रकृष्ट सादि मिथ्यादृष्टि, जो कि अभीक्षण अर्थात् बार-बार सम्यक्त्व ग्रहण करता है, वह सर्वोपशम और देशोपशम से भजनीय है।
- 105) सम्यक्त्व की प्रथम बार प्राप्ति के अनन्तर और पश्चात् मिथ्यात्व का उदय होता है। किन्तु अप्रथम बार सम्यक्त्व की प्राप्ति के पश्चात् वह भजनीय है।
- 106) जिस जीव के मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति, ये तीन कर्म सत्ता में होते हैं, अथवा मिथ्यात्व या सम्यक्त्व प्रकृति के विना शेष दो कर्म सत्ता में होते हैं, वह नियम से संक्रमण की अपेक्षा भजितव्य है। जिस जीव के एक ही कर्म सत्ता में होता है, वह संक्रमण की अपेक्षा भजितव्य नहीं है।
- 107) सम्यग्दृष्टि जीव सर्वज्ञोपदिष्ट प्रवचन का तो नियम से श्रद्धान करता है, किन्तु अज्ञानवश सदभूत अर्थ को स्वयं नहीं जानता हुआ गुरु के नियोग से असदभूत अर्थ का भी श्रद्धान करता है।
- 108) मिथ्यादृष्टि नियम से सर्वज्ञ द्वारा उपदिष्ट प्रवचन का तो श्रद्धान नहीं करता, किन्तु अल्पज्ञों पुरुषों द्वारा उपदिष्ट अथवा अनुपदिष्ट असद्भाव का, वस्तु के अयथार्थ स्वरूप का श्रद्धान करता है।
- 109) सम्यग्मिथ्यादृष्टि साकारोपयोगी तथा अनाकारोपयोगी भी होता है। किन्तु

व्यंजनावग्रह (विचारपूर्वक अर्थग्रहण) की अवस्था में साकारोपयोगी ही होता है, ऐसा जानना चाहिए ।

- 110) कर्मभूमि में उत्पन्न हुआ और मनुष्यगति में वर्तमान जीव ही नियम से दर्शनमोह की क्षपणा का प्रस्थापक (प्रारम्भ करने वाला) होता है । किन्तु उसका निष्ठापक (पूर्ण करने वाला) चारों गतियों में पाया जाता है ।
- 111) मिथ्यात्व वेदनीय कर्म के सम्यक्त्व प्रकृति में अपवर्तित (संक्रमित) किये जाने पर जीव दर्शनमोह की क्षपणा का प्रस्थापक होता है । उसे जघन्य तेजोलेश्या में वर्तमान होना चाहिए ।
- 112) अन्तर्मुहूर्त काल तक दर्शनमोह का नियम से क्षपण करता है । दर्शनमोह के क्षीण हो जाने पर देव और मनुष्य गति-सम्बन्धी नामकर्म की प्रकृतियों का और आयुकर्म का स्यात् बन्ध करता है ।
- 113) दर्शनमोह की क्षपणा में प्रवर्तमान (प्रस्थापक) जीव जिस भव में प्रस्थापक होता है, उससे अन्य तीन भवों को नियम से उल्लंघन नहीं करता है । दर्शनमोह क्षीण हो जाने पर तीन भव में नियम से मुक्त हो जाता है ।
- 114) मनुष्यों में क्षीणमोही नियम से संख्यात सहस्र होते हैं । शेष गतियों में क्षीणमोह-क्षायिक सम्यक्दृष्टि जीव नियम से असंख्यात होते हैं ।
- 115) संयमासंयम की लब्धि तथा चरित्र की लब्धि, भवों की उत्तरोत्तर वृद्धि और पूर्वबद्ध कर्मों की उपशामना इस अनुयोगद्वार में वर्णनीय है ।
- 116) उपशामना के कितने भेद हैं ? किस-किस कर्म का उपशम होता है ? किस अवस्था में कौन कर्म उपशान्त रहता है और कौन कर्म अनुपशान्त रहता है ?
- 117) चारित्र मोह की स्थिति, अनुभाग और प्रदेशाग्रों का कितना भाग उपशमित होता है ? कितना भाग संक्रमण और उदीरणा करता है और कितना भाग बंध को प्राप्त होता है ?
- 118) चरित्रमोह की प्रकृतियों का कितने काल पर्यन्त उपशमन होता है ? कितने काल पर्यन्त संक्रमण, उदीरणा होती है, तथा कौन कर्म कितने काल तक उपशान्त या अनुपशान्त रहता है ?
- 119) कौन करण व्युच्छिन्न होता है ? कौन करण अव्युच्छिन्न होता है ? कौन करण उपशान्त रहता है ? कौन करण अनुपशांत रहता है ?

संकाय-पत्रिका-२

- 120) प्रतिपात कितने प्रकार का है तथा वह किस कषाय में होता है। वह प्रतिपात होते हुए भी किन-किन कर्मांशों का बंधक होता है ?
- 121) प्रतिपात दो प्रकार का है एक प्रतिपात भव भय से, दूसरा उपशमकाल के क्षय से होता है। वह प्रतिपात सूक्ष्मसांपराय तथा बादर राग (लोभ) नामक गुणस्थान में होता है, ऐसा जानना चाहिए।
- 122) उपशामना काल के क्षय होने पर सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान में प्रतिपात होता है। भवक्षय से होनेवाला प्रतिपात नियम से बादर राग में होता है।
- 123) उपशामना काल के समाप्त होने पर गिरने वाला जीव यथानुपूर्वी से कर्मों को बांधता है। इसी प्रकार वह आनुपूर्वी क्रम से कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है।
- 124) संक्रमण-प्रस्थापक के पूर्वबद्ध कर्म किस स्थिति वाले हैं ? वे किस अनुभाग में वर्तमान हैं और उस समय कौन कर्म संक्रान्त हैं और कौन कर्म असंक्रान्त हैं ?
- 125) संक्रमण-प्रस्थापक के मोहनीय की दो स्थितियाँ होती हैं—एक प्रथम स्थिति और दूसरी द्वितीय स्थिति। इनका प्रमाण कुछ न्यून मुहूर्त है। तत्पश्चात् नियम से अन्तर होता है।
- 126) जो उदय या अनुदयरूप कर्मप्रकृतियाँ परिक्षीण स्थितिवाली हैं, उन्हें उपर्युक्त जीव दोनों ही स्थितियों में वेदन करता है। किन्तु जिन कर्मांशों को वेदन नहीं करता है, उन्हें तो द्वितीय स्थिति में ही जानना चाहिए।
- 127) संक्रमण प्रस्थापक के पूर्व-बद्ध कर्म मध्यम स्थितियों में पाये जाते हैं तथा अनुभागों में सातावेदनीय, शुभनाम तथा उच्चगोत्र उत्कृष्ट रूप से पाये जाते हैं।
- 128) आठ मध्यम कषायों की क्षपणा के पश्चात् स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा तथा प्रचलाप्रचला तथा नरकगति सम्बन्धी त्रयोदश नामकर्म की प्रकृतियाँ संक्रमण प्रस्थापक के द्वारा अन्तर्मुहूर्त पूर्व ही सर्वसंक्रमण आदि में क्षीण की जा चुकी हैं।
- 129) (हास्यादि छह नोकषाय के पुरुषवेद के चिरन्तन सत्त्व के साथ) संक्रामक होने पर नियम से नाम, गोत्र और वेदनीय असंख्यात वर्षप्रमाण अपने-अपने स्थिति सत्त्व में प्रवृत्त होते हैं। शेष ज्ञानावरणादि घातिया कर्म संख्यात वर्षप्रमाण स्थिति सत्त्व वाले होते हैं।

- 130) संक्रमण-प्रस्थापक किन-किन कर्मांशों को बाँधता है, किन कर्मांशों का संक्रमण करता है और किन-किन कर्मांशों का असंक्रामक रहता है ।
- 131) द्विसमयकृत अन्तरावस्था में वर्तमान संक्रमण-प्रस्थापक के मोहनीय तो वर्षशतसहस्र स्थिति संख्या रूप बंधता है और शेष कर्म असंख्यात शतसहस्र प्रमाण बंधते हैं ।
- 132) भय, शोक, अरति, रति, हास्य, जुगुप्सा, नपुंसक वेद, स्त्री वेद, असाता वेदनीय, नीच गोत्र, अयशःकीर्ति और शरीर नाम कर्म को नियम से नहीं बाँधता है ।
- 133) जिन सर्वावरणीय (अर्थात् सर्वघातिया) कर्मों की अपवर्तना होती है, उनका तथा निद्रा, प्रचला और आयुर्कर्म का भी अबंधक होता है । शेष कर्मों का बंध करता है ।
- 134) निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, नीचगोत्र, अयशःकीर्ति, और छह नोकषाय, इतने कर्मों का तो संक्रमण-प्रस्थापक नियम से प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशरूप सर्व अंशों में अवेदक रहता है ।
- 135) वह संक्रमण-प्रस्थापक वेदों का, वेदनीय कर्म को, सर्वावरणीय-सर्वघाती प्रकृतियों को तथा कषायों को वेदन करता हुआ भजनीय है । उनके अतिरिक्त शेष प्रकृतियों का वेदन करता हुआ अभजनीय है ।
- 136) मोहनीय कर्म की सर्वप्रकृतियों का आनुपूर्वी से संक्रमण होता है, किन्तु लोभ कषाय का संक्रमण नहीं होता, ऐसा नियम से जानना चाहिए ।
- 137) (नव नोकषाय और चार संज्वलन रूप तेरह प्रकृतियों का संक्रमण करने वाला क्षपक) नपुंसक वेद को आदि करके क्रोध, मान, माया और लोभ, इन सब कर्मों को यथानुपूर्वी से संक्रान्त करता है ।
- 138) स्त्री वेद तथा नपुंसक वेद का नियम से पुरुष वेद में संक्रमण करता है । पुरुष वेद और हास्यादि छह, इन सात नोकषायों का नियम से संज्वलन क्रोध में संक्रमण करता है ।
- 139) क्रोध संज्वलन को मान संज्वलन में संक्रान्त करता है । मान संज्वलन को माया संज्वलन में संक्रान्त करता है । माया संज्वलन को लोभ संज्वलन में संक्रान्त करता है । इनका प्रतिलोम अर्थात् विपरीत क्रम से संक्रमण नहीं होता है ।

संकाय-पत्रिका-२

- 140) जो जीव बध्यमान जिस प्रकृति में संक्रमण करता है, वह नियम से बन्ध सदृश प्रकृति में ही संक्रमण करता है अथवा बन्ध की अपेक्षा हीनतर स्थितिवाली प्रकृति में संक्रमण करता है। किन्तु अधिक स्थितिवाली प्रकृति में संक्रमण नहीं होता।
- 141) मानकषाय का वेदन करनेवाला संक्रमण-प्रस्थापक क्रोध संज्वलन को वेदन नहीं करते हुए भी उसे मानकषाय में संक्रान्त करता है, शेष कषायों में यही क्रम है।
- 142) संक्रमण-प्रस्थापक के अनुभाग और प्रदेश-सम्बन्धी बन्ध, उदय और संक्रमण परस्पर में क्या समान हैं, अथवा अधिक हैं अथवा हीन हैं? इसी प्रकार प्रदेशों की अपेक्षा वे संख्यात, असंख्यात या अनन्तगुणितरूप विशेष से परस्पर हीन हैं, या अधिक हैं?
- 143) बन्ध से उदय अधिक होता है तथा उदय से संक्रमण अधिक होता है। इस प्रकार अनुभाग के विषय में गुणश्रेणी अनन्तगुणी जानना चाहिए।
- 144) बन्ध से उदय अधिक होता है। उदय से संक्रमण अधिक होता है। इस प्रकार प्रदेशाग्र की अपेक्षा गुणश्रेणी असंख्यातगुणी जानना चाहिए।
- 145) अनुभाग की अपेक्षा साम्प्रतिक-बन्ध से साम्प्रतिक-उदय अनन्तगुणा है। इसके अनन्तरकालीन उदय से साम्प्रतिक-बन्ध अनन्तगुणा है।
- 146) यह अनुभाग का प्रतिसमय अनन्तगुणित हीन गुणश्रेणी रूप से वेदक है। प्रदेशाग्र की अपेक्षा उसे गणनातिक्रान्त (असंख्यात गुणित) श्रेणी रूप से वेदक जानना चाहिए।
- 147) बन्ध, संक्रम और उदय स्व स्व स्थान पर तदनन्तर तदनन्तर काल की अपेक्षा क्या अधिक हैं, हीन हैं अथवा समान हैं?
- 148) अनुभाग, बन्ध और उदय की अपेक्षा तदनन्तर काल में नियम से अनन्त-गुणित हीन होता है, किन्तु संक्रमण भजनीय है।
- 149) प्रदेशाग्र की अपेक्षा संक्रमण और उदय उत्तरोत्तर काल में असंख्यात गुणित श्रेणीरूप होते हैं, किन्तु बन्ध प्रदेशाग्र में भजनीय है।
- 150) अनुभाग में गुणश्रेणी की अपेक्षा नियम से अनन्तगुणा हीन वेदन करता है। किन्तु प्रदेशाग्र में गणनातिक्रान्त गुणितरूप श्रेणी के द्वारा अधिक है।

- 151) अन्तर को करता हुआ क्या वह स्थिति और अनुभाग को बढ़ाता है, अथवा घटाता है ? स्थिति और अनुभाग की वृद्धि या हानि करते हुए निरूपक्रम (अन्तररहित) वृद्धि अथवा हानि कितने काल तक होती है ?
- 152) जघन्य अपवर्तना का प्रमाण त्रिभाग से ऊन आवली है। यह जघन्य अपवर्तना स्थितियों के विषय में ग्रहण करना चाहिए। अनुभाग विषयक जघन्य-अपवर्तना अनन्त स्पर्धकों से प्रतिबद्ध है।
- 153) जो कर्म रूप अंश संक्रमित, अपकर्षित या उत्कर्षित किये जाते हैं, वे आवली पर्यन्त अवस्थित रहते हैं। तदनन्तर समय में वे भजनीय हैं।
- 154) जो कर्मांश अपकर्षित किये जाते हैं, वे अनन्तर काल में वृद्धि, अवस्थान, हानि, संक्रमण तथा उदय की अपेक्षा भजनीय हैं।
- 155) एक स्थितिविशेष को कितने स्थिति विशेषों में बढ़ाता है और एक स्थिति विशेष को कितने स्थितिविशेषों में घटाता है ? इसी प्रकार की पृच्छाएँ अनुभाग विशेषों में जानना चाहिए।
- 156) एक स्थिति विशेष को असंख्यात स्थिति विशेषों में बढ़ाता है और घटाता भी है। इसी प्रकार अनुभाग विशेष को अनन्त अनुभाग स्पर्धकों में बढ़ाता तथा घटाता है।
- 157) स्थिति और अनुभाग-सम्बन्धी कौन-कौन अंशों (कर्मप्रदेशों) को बढ़ाता अथवा घटाता है अथवा किन किन अंशों में अवस्थान करता है ? और यह वृद्धि, हानि और अवस्थान किस-किस गुण से विशिष्ट होता है ?
- 158) स्थिति का अपकर्षण करता हुआ कदाचित् अधिक, हीन और बन्ध समान स्थिति का अपकर्षण करता है। स्थिति का उत्कर्षण करता हुआ बन्ध समान या बन्ध से हीन स्थिति का ही उत्कर्षण करता है, किन्तु अधिक स्थिति को नहीं बढ़ाता है।
- 159) उदयावली के बाहर स्थित सभी अनुभागों का अपकर्षण करता है, किन्तु आवली प्रविष्ट अनुभाग का अपकर्षण नहीं करता है। बन्ध समान अनुभाग का उत्कर्षण करता है, उससे अधिक का नहीं। आवली—बन्धावली निरूपक्रम होती है।
- 160) वृद्धि (उत्कर्षण) से हानि (अपकर्षण) अधिक होती है। हानि से अवस्थान अधिक है। यह अधिक का प्रमाण प्रदेशाग्र की अपेक्षा असंख्यात गुणित श्रेणी-रूप जानना चाहिए।

- 161) अपवर्तन (अपकर्षण) और उद्वर्तन (उत्कर्षण) कृष्टि-वर्जित कर्मों में होता है, किन्तु अपवर्तना नियम से कृष्टिकरण में जानना चाहिए ।
- 162) कृष्टियाँ कितनी होती हैं और किस कषाय में कितनी कृष्टियाँ होती हैं ? कृष्टि करने में कौन-सा कारण होता है और कृष्टि का लक्षण क्या है ?
- 163) संज्वलन क्रोधादि कषायों की बारह, नौ, छह और तीन कृष्टियाँ होती हैं, अथवा अनन्त कृष्टियाँ होती हैं । एक-एक कषाय में तीन-तीन कृष्टियाँ हैं अथवा अनन्त कृष्टियाँ होती हैं ।
- 164) चारों कषायों की स्थिति और अनुभाग का नियम से अपवर्तन करता हुआ ही कृष्टियों को करता है । स्थिति और अनुभाग को बढ़ाने वाला कृष्टि का अकारक होता है, ऐसा मानना चाहिए ।
- 165) लोभ की जघन्य कृष्टि को आदि लेकर क्रोधकषाय की सर्वपश्चिमपद (अन्तिम उत्कृष्ट कृष्टि) पर्यन्त यथाक्रम से अवस्थित संज्वलन कषाय रूप कर्म के अनुभाग में गुणश्रेणी अनन्तगुणित है, यह कृष्टि का लक्षण है ।
- 166) कितने अनुभागों में तथा कितनी स्थितियों में कौन कृष्टि है ? यदि सभी स्थितियों में सभी कृष्टियाँ सम्भव हैं, तो क्या उनकी सभी अवयव स्थितियों में भी सभी कृष्टियाँ सम्भव हैं, अथवा प्रत्येक स्थिति पर एक-एक कृष्टि सम्भव है ?
- 167) सभी कृष्टियाँ सर्व असंख्यात स्थिति-विशेषों पर नियम से होती हैं । तथा प्रत्येक कृष्टि नियम से अनन्त अनुभागों में होती है ।
- 168) सभी संग्रह कृष्टियाँ और उनकी अवयव कृष्टियाँ समस्त द्वितीय स्थिति में होती हैं, किन्तु वह जिस कृष्टि का वेदन करता है, उसका अंश प्रथम स्थिति में होता है ।
- 169) कौन कृष्टि प्रदेशाग्र, अनुभागाग्र तथा काल की अपेक्षा किस कृष्टि से अधिक है, समान है अथवा हीन है ? एक कृष्टि से दूसरी में गुणों की अपेक्षा क्या विशेषता है ?
- 170) क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि से उसकी ही प्रथम संग्रहकृष्टि प्रदेशाग्र की अपेक्षा संख्यातगुणी होती है । द्वितीय संग्रहकृष्टि से तृतीय संग्रहकृष्टि विशेष अधिक होती है । इस प्रकार यथाक्रम से शेष तीनों विशेष अधिक होती हैं ।

- 171) क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि से प्रथम संग्रहकृष्टि वर्गणाओं के समूह की अपेक्षा संख्यातगुणी है। द्वितीय संग्रहकृष्टि से तृतीय विशेषाधिक है। इसी क्रम से शेष संग्रहकृष्टियाँ विशेषाधिक जानना चाहिए।
- 172) जो वर्गणा अनुभाग की अपेक्षा हीन है, वह प्रदेशाग्र की अपेक्षा अधिक है। ये वर्गणाएँ अनन्तवें भाग से अधिक या हीन जानना चाहिए।
- 173) क्रोध कषाय का उत्तरपद क्रोध की आदि (अर्थात् जघन्य) वर्गणा में से घटाना चाहिए। इससे जो शेष अनन्तवाँ भाग रहता है, वह नियम से क्रोध की आदि (अर्थात् जघन्य) वर्गणा के प्रदेशाग्र में अधिक है।
- 174) क्रोध के विषय में कहा गया यह क्रम नियम से मान, माया, लोभ की कृष्टि में भी प्रत्येक का है, ऐसा जानना चाहिए।
- 175) क्रोध संज्वलन की प्रथम कृष्टि द्वितीय कृष्टि से अनुभाग की अपेक्षा नियम से अनन्तगुणी है। पुनः तृतीय कृष्टि से द्वितीय कृष्टि अनन्तगुणी है। इसी प्रकार मान, माया और लोभ की तीनों-तीनों कृष्टियाँ तृतीय से द्वितीय और द्वितीय से प्रथम अनन्तगुणी जानना चाहिए।
- 176) प्रथम समय में कृष्टियों का स्थितिकाल एक वर्ष, दो वर्ष, चार वर्ष और आठ वर्ष है। द्वितीय स्थिति और अन्तर स्थितियों के साथ प्रथम स्थिति का यह काल कहा गया है।
- 177) जिस कृष्टि को वेदन करता है, उसमें प्रदेशाग्र का अवस्थान यवमध्य रूप से होता है तथा वह यवमध्य प्रथम और द्वितीय इन दोनों स्थितियों में वर्तमान होकर भी अन्तर स्थितियों से अन्तरित होने के कारण सांतर है। जो प्रथम स्थिति है वह गुणश्रेणी रूप है तथा द्वितीय स्थिति उत्तरश्रेणी रूप है।
- 178) द्वितीय स्थिति के आदिपद (प्रथम निषेक के प्रदेशाग्र) में से उसके उत्तरपद (चरम निषेक के प्रदेशाग्र) को घटाना चाहिए। ऐसा करने पर जो असंख्यातवाँ भाग शेष रहता है, वह उस प्रथम निषेक के प्रदेशाग्र से अधिक है।
- 179) उदयकाल से आदि लेकर प्रथम स्थिति सम्बन्धी जितनी स्थितियाँ हैं, उनमें निरन्तर गुणश्रेणी होती है। उदयकाल से लेकर उत्तरोत्तर समयवर्ती स्थितियों में प्रदेशाग्र गणना के अन्त अर्थात् असंख्यातगुणे हैं।

- 180) उदय को आदि लेकर यथाक्रम से अवस्थित प्रथमस्थिति की अवयवस्थितियों में जो कर्मरूपद्रव्य है, वह नियम से आगे आगे ह्रस्व (न्यून) है। उदयस्थिति से ऊपर अनन्तर स्थिति में जो प्रवेशाग्र के क्षय से प्रवेश करते हैं, वे असंख्यात गुणे रूप से प्रवेश करते हैं।
- 181) पश्चिम कृष्टि (संज्वलन लोभ की सूक्ष्मसाम्परायिक अन्तिम बारहवीं कृष्टि) का वेदक काल नियम से अल्प है। पश्चात् अनुपूर्वी से शेष ग्यारह कृष्टियों का वेदक काल क्रमशः संख्यातवें भाग से अधिक है।
- 182) कितनी गतियों में, भवों में, स्थितियों में, अनुभागों में और कषायों में पूर्वबद्ध कर्म कितनी कृष्टियों में और उनकी कितनी स्थितियों में पाये जाते हैं ?
- 183) पूर्वबद्ध कर्म दो गतियों में अभजनीय हैं तथा दो गतियों में भजनीय हैं। एकेन्द्रिय जाति और पंच स्थावरकायों में भजनीय है। शेष चार जातियों में और त्रसकाय में भजनीय नहीं हैं।
- 184) क्षपक के असंख्यात एकेन्द्रिय-भवग्रहणों के द्वारा बद्धकर्म नियम से पाया जाता है तथा एक को आदि लेकर दो, तीन आदि संख्यात भवों के द्वारा संचित कर्म पाया जाता है।
- 185) उत्कृष्ट अनुभागयुक्त तथा उत्कृष्ट स्थितियुक्त पूर्वबद्ध कर्म भजनीय हैं। कषायों में पूर्वबद्ध कर्म नियम से अभजनीय हैं।
- 186) पर्याप्त और अपर्याप्त अवस्था के साथ तथा स्त्री, पुरुष और नपुंसकवेद के साथ मिश्र प्रकृति, सम्यक्त्व प्रकृति तथा मिथ्यात्व प्रकृति के साथ और किस योग और उपयोग के साथ पूर्वबद्ध कर्म क्षपक के पाये जाते हैं ?
- 187) पर्याप्त, अपर्याप्त दशा में, मिथ्यात्व, नपुंसकवेद और सम्यक्त्व अवस्था में बाँधे हुए कर्म अभाज्य हैं। तथा स्त्रीवेद, पुरुषवेद और सम्यग्मिथ्यात्व अवस्था में बाँधे हुए कर्म भाज्य हैं।
- 188) औदारिक काययोग, औदारिकमिश्र काययोग, चतुर्विध मनोयोग और चतुर्विध वचनयोग में बाँधे हुए कर्म अभाज्य हैं। शेष योगों में बाँधे हुए कर्म भाज्य हैं।
- 189) श्रुत, कुश्रुतरूप उपयोग में, मति, कुमतिरूप उपयोग में पूर्वबद्ध कर्म अभाज्य हैं, किन्तु दोनों प्रत्यक्ष छद्मस्थज्ञानों में पूर्वबद्ध कर्म भाज्य हैं।

- 190) अनाकार अर्थात् चक्षुदर्शनोपयोग और अचक्षुदर्शनोपयोग में पूर्वबद्ध कर्म अभाज्य हैं। अवधिदर्शनोपयोग में पूर्वबद्ध कर्म कृष्टिवेदक क्षपक के भाज्य हैं।
- 191) किस लेश्या में, किन-किन कर्मों में तथा किस क्षेत्र में (किस काल में) वर्तमान जीव के द्वारा बाँधे हुए, तथा साता, असाता और किस लिंग के द्वारा बाँधे हुए कर्म कृष्टिवेदक क्षपक के पाये जाते हैं ?
- 192) सर्व लेश्याओं में, तथा साता और असाता में वर्तमान जीव के पूर्वबद्ध कर्म अभाज्य हैं, असि, मषि आदि कर्मों में, शिल्प कार्यों में सभी पाखण्डी लिंगों में तथा सभी क्षेत्रों में बद्ध कर्म भाज्य हैं। समा अर्थात् उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप काल के विभागों में पूर्वबद्ध कर्म अभाज्य हैं।
- 193) ये पूर्वबद्ध (अभाज्य) कर्म सर्व स्थिति विशेषों में, सर्व अनुभागों में तथा सर्व कृष्टियों में नियम से होते हैं।
- 194) एक समय में प्रबद्ध कितने कर्मप्रदेश किन-किन स्थितियों में अछूते हैं (उदय-स्थिति को अप्राप्त) रहते हैं ? इस प्रकार कितने भवबद्ध कर्मप्रदेश किन-किन स्थितियों में असंक्षुब्ध रहते हैं ?
- 195) अन्तरकरण करने में उपरिम अवस्था में वर्तमान क्षपक के छह आवलियों के भीतर बँधे हुए समयप्रबद्ध नियम से अछूते हैं। (क्योंकि अन्तरकरण के पश्चात् छह आवली के भीतर उदीरणा नहीं होती है।) वे अछूते समय-प्रबद्ध चारों ही संज्वलन कषाय सम्बन्धी सम स्थितिविशेषों में और सभी अनुभागों में अवस्थित रहते हैं।
- 196) जो बध्यमान आवली है, उसके कर्मप्रदेश क्रोध संज्वलन की प्रथम कृष्टि में पाये जाते हैं। इस पूर्व आवली के अनन्तर जो उपरिम अर्थात् द्वितीयावली है, उसके कर्मप्रदेश नियम से क्रोध संज्वलन की तीन और मान संज्वलन की एक, इन चार संग्रह कृष्टियों में पाए जाते हैं।
- 197) तीसरी आवली सात कृष्टियों में, चौथी आवली दश कृष्टियों में और उससे आगे की शेष सर्व आवलियाँ सर्व कृष्टियों में पायी जाती हैं।
- 198) ये ऊपर कहे गये छहों आवलियों के इस वर्तमान भव में ग्रहण किए गये समय-प्रबद्ध नियम से असंक्षुब्ध रहते हैं। उदय या उदीरणा को प्राप्त नहीं होते हैं, किन्तु शेष भवबद्ध उदय में संक्षुब्ध रहते हैं।

संकाय-पत्रिका-२

- 199) एक समय में बँधे हुए और नाना समयों में बँधे हुए समय प्रबद्धों के शेष कितने कर्म-प्रदेश कितने स्थिति और अनुभाग विशेषों में पाये जाते हैं ? इसी प्रकार एक भव और नाना भवों में बँधे हुए कितने कर्मप्रदेश कितने स्थिति और अनुभागविशेषों में पाये जाते हैं ? एक समय रूप एक स्थितिविशेष में वर्तमान कितने कर्मप्रदेश एक-अनेक समयप्रबद्ध और भवबद्धों के शेष पाये जाते हैं ?
- 200) एक स्थितिविशेष में नियम से एक-अनेक भवबद्धों के समयप्रबद्ध शेष, एक-अनेक समयों में बँधे हुए कर्मों के समयप्रबद्ध शेष असंख्यात होते हैं, जो नियम से अनन्त अनुभागों में वर्तमान होते हैं ।
- 201) एक को आदि लेकर एक-एक बढ़ाते हुए जो स्थिति वृद्धि होती है, उसे 'स्थिति उत्तर श्रेणी' कहते हैं । इस प्रकार की स्थिति उत्तरश्रेणी में असंख्यात भवबद्ध शेष तथा समयप्रबद्ध शेष पाये जाते हैं ।
- 202) जिस एक स्थिति विशेष में समयप्रबद्ध शेष तथा भवबद्ध शेष सम्भव हैं, वह सामान्यस्थिति और जिसमें वे सम्भव नहीं, वह असामान्यस्थिति कहलाती है । उस क्षपक के वर्ष पृथकत्वमात्र विशेष स्थिति में तादृश अर्थात् भवबद्ध और समयप्रबद्ध शेष से विरहित असामान्य स्थितियाँ अधिक से अधिक आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण पायी जाती हैं ।
- 203) इस अनन्तर प्ररूपित आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर से उपलब्ध होने वाली अपश्चिम (अन्तिम) असामान्य स्थिति के समय में अर्थात् तदनन्तर समय में पायी जानेवाली उपरिम स्थिति में भवबद्ध शेष और समय प्रबद्ध शेष नियम से पाये जाते हैं और उसमें अर्थात् क्षपक की अष्ट वर्ष प्रमाण स्थिति के भीतर उत्तरपद होते हैं ।
- 204) मोह के निरवशेष अनुभाग सत्कर्म के कृष्टिकरण करने पर कृष्टिवेदन के प्रथम समय में वर्तमान जीव के पूर्वबद्ध (ज्ञानावरणीयादि) कर्म किन स्थितियों में और किन अनुभागों में शेष रूप से पाये जाते हैं ? बध्यमान और उदीर्ण कर्म किन-किन स्थितियों और अनुभागों में पाये जाते हैं ?
- 205) मोहनीय कर्म के कृष्टिकरण कर देने पर नाम, गोत्र और वेदनीय ये तीन कर्म असंख्यात वर्षोंवाले स्थितिसत्त्वों में पाये जाते हैं । शेष चार घातिया कर्म संख्यात वर्ष प्रमाण सत्त्व युक्त होते हैं ।

- 206) मोह के कृष्टिकरण करने पर वह क्षपक सातावेदनीय, यशःकीर्ति नामक शुभ-नामकर्म और उच्चगोत्र कर्म संख्यात शतसहस्र वर्ष प्रमाण स्थिति बाँधता है। इनके योग्य उत्कृष्ट अनुभाग को बाँधता है।
- 207) मोह के कृष्टि रूप होने पर कौन-कौन कर्म को बाँधता है तथा कौन-कौन कर्मांशों का वेदन करता है? किन किन कर्मों का संक्रमण करता है और किन किन कर्मों में असंक्रामक रहता है?
- 208) क्रोध—प्रथम कृष्टिवेदक के चरम समय में मोहनीय को छोड़कर शेष तीन घातिया कर्मों की नियम से अन्तर्मुहूर्त कम दश वर्ष प्रमाण स्थिति का बन्ध करता है। घातिया कर्मों में जिनकी अपवर्तना सम्भव है उनका देशघाती रूप से ही बन्ध करता है।
- 209) चरम समयवर्ती बादर सांपरायिक क्षपक नाम, गोत्र और वेदनीय को वर्ष के अन्तर्गत बाँधता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय रूप घातिया को दिवस के अन्तर्गत बाँधता है।
- 210) चरम समयवर्ती सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवाला क्षपक नाम, गोत्र, वेदनीय को दिवस के अन्तर्गत बाँधता है तथा शेष घातिया त्रय को भिन्न मुहूर्त प्रमाण बाँधता है।
- 211) मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरण कर्मों में जिनकी लब्धि (क्षयोपशम) का वेदन करता है, उनके देशघाति आवरण रूप अनुभाग का वेदन करता है। जिनकी अलब्धि है, उनके सर्वावरणरूप अनुभाग का वेदन करता है। अन्तराय का देशघाति रूप अनुभाग वेदन करता है।
- 212) कृष्टिवेदक क्षपक यशःकीर्ति नाम तथा उच्चगोत्र के अनन्तगुणित वृद्धिरूप अनुभाग का नियम से वेदन करता है। अन्तराय के अनन्तगुणित हानिरूप अनुभाग का वेदन करता है। अनन्तर समय में शेष कर्मों के अनुभाग भजनीय हैं।
- 213) संज्वलन कषाय के कृष्टि रूप से परिणत होने पर मोहनीय के कौन कौन विचार (स्थिति घातादि लक्षण क्रिया विशेष) होते हैं? इसी प्रकार ज्ञानावरणादि शेष कर्मों के भी कौन कौन विचार होते हैं?

संकाय-पत्रिका-२

- 214) क्या क्षपक कृष्टियों को वेदन करता हुआ क्षय करता है अथवा संक्रमण करता हुआ क्षय करता है अथवा वेदन और संक्रमण करता हुआ क्षय करता है ? क्या आनुपूर्वी से या अनानुपूर्वी से कृष्टियों को क्षय करता है ?
- 215) क्रोध की प्रथम, द्वितीय तथा तीसरी कृष्टि को वेदन करता हुआ तथा संक्रमण करता हुआ क्षय करता है । चरम (सूक्ष्म सांपरायिक कृष्टि) को वेदन करता हुआ ही क्षय करता है । शेष को उभय प्रकार से क्षय करता है ।
- 216) कृष्टिवेदक क्षपक जिस कृष्टि का वेदन करता हुआ क्षय करता है, क्या वह उसका बंधक भी होता है ? जिस कृष्टि का संक्रमण करता हुआ क्षय करता है, क्या वह उसका बंध भी करता है ?
- 217) कृष्टिवेदक क्षपक जिस कृष्टि का संक्रमण करता हुआ क्षय करता है, उसका वह बन्ध नहीं करता है । सूक्ष्मसांपरायिक कृष्टि के वेदन काल में वह उसका अबंधक रहता है, किन्तु इतर कृष्टियों के वेदन या क्षपण काल में वह उनका बंधक रहता है ।
- 218) जिस जिस कृष्टि को क्षय करता है, उस उस कृष्टि की स्थिति और अनुभागों में किस किस प्रकार से उदीरणा करता है । विवक्षित कृष्टि का अन्य कृष्टि में संक्रमण करता हुआ किस किस प्रकार से स्थिति और अनुभागों से युक्त कृष्टि में संक्रमण करता है ? विवक्षित समय में जिन स्थिति अनुभाग युक्त कृष्टियों में उदीरणा, संक्रमणादि किए हैं, क्या अनन्तर समय में उन्हीं कृष्टियों में उदीरणा, संक्रमणादि करता है या अन्य कृष्टियों में करता है ?
- 219) विवक्षित कृष्टि का बंध अथवा संक्रमण नियम से क्या सभी स्थितिविशेषों में होता है ? विवक्षित कृष्टि का जिस कृष्टि में संक्रमण किया जाता है, उसके सर्व अनुभागों में संक्रमण होता है, किन्तु उदय मध्यम कृष्टि में जानना चाहिए ।
- 220) क्या क्षपक सर्व स्थिति विशेषों के द्वारा संक्रमण तथा उदीरणा करता है ? कृष्टि के अनुभागों को वेदन करता हुआ वह नियम से मध्यवर्ती अनुभागों का वेदन करता है ।
- 221) जिन कर्मांशों का अपकर्षण करता है, क्या अनन्तर काल में उनको उदीरणा में प्रवेश करता है ? पूर्व में अपकर्षण किये गए कर्मांशों को अनन्तर समय में उदीरणा करता हुआ क्या सदृश को अथवा असदृश को प्रविष्ट करता है ?

- 222) जिन कर्माशों का उत्कर्षण करता है, क्या अनन्तरकाल में उनको उदीरणा में प्रवेश करता है? पूर्व में उत्कर्षण किए गये कर्माश को अनन्तर समय में उदीरणा करता हुआ क्या सदृश रूप से या असदृश रूप से प्रविष्ट करता है?
- 223) कृष्टिकारक के प्रदेश तथा अनुभाग सम्बन्धी बंध, संक्रमण अथवा उदय के बहुत्व तथा स्तोकत्व की अपेक्षा जिस प्रकार पूर्व निर्णय किया गया है उसी प्रकार यहाँ भी निर्णय करना चाहिए।
- 224) जो कर्माश प्रयोग के द्वारा उदयावली में प्रविष्ट किया जाता है, उसकी अपेक्षा स्थिति क्षय से जो कर्माश उदयावली में प्रविष्ट होता है, वह नियम से असंख्यातगुणित रूप से गुणित होता है।
- 225) कृष्टिवेदक क्षपक के प्रयोग द्वारा उदयावली में प्रविष्ट प्रदेशाग्र नियम से उदय से लगाकर आगे आवली पर्यन्त असंख्यातगुणित श्रेणीरूप में पाया जाता है।
- 226) जिन अनन्त वर्गणाओं को उदीर्ण करता है उनमें एक अनुदीर्यमाण कृष्टि संक्रमण करती है। जो उदयावली में प्रविष्ट अनन्त अवेद्यमान वर्गणाएँ (कृष्टियाँ) हैं, वे एक-एक वेद्यमान मध्यम कृष्टि के स्वरूप से नियमतः परिणत होती हैं।
- 227) जितनी अनुभाग कृष्टियाँ प्रयोग द्वारा नियम से उदीर्ण की जाती हैं, उतनी ही पूर्व-प्रविष्ट अर्थात् उदयावली प्रविष्ट अनुभाग कृष्टियाँ परिणत होती हैं।
- 228) एक समय कम पश्चिम आवली में जो उदकृष्ट और जघन्य अनुभाग-स्वरूप कृष्टियाँ हैं, वे मध्यवर्ती बहुभाग कृष्टियों में नियम से परिणमित होती हैं।
- 229) एक कृष्टि से दूसरी कृष्टि को वेदन करता हुआ क्षपक पूर्ववेदित कृष्टि के शेषांग से संक्रमण करता है अथवा प्रयोग द्वारा संक्रमण करता है? पूर्व वेदित कृष्टि के कितने अंश रहने पर अन्य कृष्टि में संक्रमण होता है?
- 230) एक कृष्टि के वेदित शेष प्रदेशाग्र को अन्य कृष्टि में संक्रमण करता हुआ नियम से प्रयोग द्वारा संक्रमण करता है। दो समय कम दो आवलियों में बँधा द्रव्य कृष्टि के वेदित शेष प्रदेशाग्र प्रमाण है।
- 231) एक समय कम आवली उदयावली के भीतर प्रविष्ट होती है और जिस संग्रहकृष्टि का अपकर्षण कर इस समय वेदन करता है उस समय कृष्टि की सम्पूर्ण आवली प्रविष्ट होती है। इस प्रकार संक्रमण में दो आवली होती हैं।

संकाय-पत्रिका-२

- 232) कषायों के क्षीण होने पर शेष ज्ञानावरणादि कर्मों के कौन-कौन क्रिया-विशेषरूप विचार होते हैं? क्षपणा, अक्षपणा, बन्ध, उदय तथा निर्जरा किन-किन कर्मों की कैसी होती है?
- 233) मोहनीय के क्षीण होने पर्यन्त मोहनीय की संक्रमणता, अपवर्तना तथा कृष्टि क्षपणा रूप क्षपणाएँ आनुपूर्वी से जानना चाहिए।
- 234) अनन्तानुबन्धी चार, मिथ्यात्व, मिश्र-सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व प्रकृति, इन सात प्रकृतियों को क्षपक श्रेणी चढ़ने के पूर्व ही क्षपण करता है। फिर क्षपक श्रेणी चढ़ते हुए अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में अन्तरकरण से पूर्व ही आठ मध्यम कषायों का क्षय करता है। इसके बाद नपुंसक, स्त्रीवेद, हास्यादि छह नोकषाय और पुरुषवेद का क्षय करता है। तदनन्तर संज्वलन क्रोधादि का क्षय करता है।
- 235) आठ मध्यम कषायों के क्षय करने के अनन्तर स्त्यानगृद्धि कर्म, निद्रानिद्रा और प्रचलाप्रचला इन तीन दर्शनावरणीय प्रकृतियों को, तथा नरक और तिर्यग्गति नाम कर्म को तेरह प्रकृतियों को संक्रमणादि करते हुए क्षीण करता है।
- 236) मोहनीय की सम्पूर्ण प्रकृतियों का आनुपूर्वी से संक्रमण होता है। किन्तु लोभकषाय का संक्रमण नहीं होता है, ऐसा नियम है।
- 237) वह क्षपक स्त्रीवेद तथा नपुंसक वेद का पुरुषवेद में संक्रमण करता है। पुरुषवेद तथा हास्यादि छह नोकषायों का नियम से क्रोध में संक्रमण करता है।
- 238) संज्वलन क्रोध का मान में, मान का माया में तथा माया का लोभ में नियम से संक्रमण करता है। इनका प्रतिलोम संक्रमण नहीं होता।
- 239) जो जिस बंधने वाली प्रकृति में संक्रमण करता है, वह नियम से बंध सदृश ही प्रकृति में संक्रमण करता है; अथवा बन्ध की अपेक्षा हीनतर स्थितिवाली प्रकृति में संक्रमण करता है, किन्तु बन्ध की अपेक्षा अधिक स्थितिवाली प्रकृति में संक्रमण नहीं होता है।
- 240) बंध से उदय अधिक होता है। उदय से संक्रमण अधिक होता है। इस प्रकार अनुभाग के विषय में गुणश्रेणी अनन्त गुणी जानना चाहिए।

- 241) बंध से उदय अधिक होता है और उदय से संक्रमण अधिक होता है। इस प्रकार प्रदेशाग्र की अपेक्षा गुणश्रेणी असंख्यात गुणी जानना चाहिए।
- 242) अनुभाग की अपेक्षा साम्प्रतिक-बंध से साम्प्रतिक-उदय अनंतगुणा है। इसके अनन्तर काल में होनेवाले उदय से साम्प्रतिक बंध अनन्तगुणा है।
- 243) चरमसमयवर्ती बादर सांपरायिक क्षपक नाम, गोत्र एवं वेदनीय को वर्ष के अन्तर्गत बाँधता है। शेष (ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अन्तराय रूप घातिया कर्मों) को एक दिवस के अन्तर्गत बाँधता है।
- 244) जिस कृष्टि को भी संक्रमण करता हुआ क्षय करता है, उसका वह बंध नहीं करता है। सूक्ष्मसांपरायिक कृष्टि के वेदन काल में वह उसका अबन्धक रहता है, किन्तु इतर कृष्टियों के वेदन वा क्षपण काल में वह उनका बन्ध करता है।
- 245) जब तक वह छद्मस्थ रहता है तब तक ज्ञानावरणादि तीन घातिया कर्मों का वेदक रहता है। इसके अनन्तर क्षण में उनका क्षय करके सर्वज्ञ तथा सर्वदर्शी बनता है।



कसायपाहुडसुत्तस्स गाहानुक्कमो

[अ]			
अट्ट च वस्साणि द्विदी	176	आवलिगा तंखेज्जदि	202
अट्ट दुग तिग च्चुक्के	37	आवलिय अणायारे	15
अट्टारसयं णवयं	45	आवलियं से काले	153
अट्टारस चोद्दसयं	51	आवलियं च पविट्टं	225
अट्टावीस चउवीस	27	आहारय-भविएसु	48
अण मिच्छ मिस्स सम्मं	234	अंतरं वा कहि किच्चवा	93
अणाहारएसु पंच य	48	अंतोमुहुत्तमद्धं	103
अण्णाणमिह य तिविहे	47	अंतोमुहुत्तमद्धं	112
अणुपुब्बमणुपुब्बं	39	[उ]	
अणुसमयमुदीरंतो	61	उक्कहुदि जे अंसे	222
अत्तुक्करिसो परिभव	87	उक्कहुदि बंधसमं	158
अथ थीणगिद्धिकम्मं	128	उक्कहुदि बंधसमं	159
अथ ओहिदंसणे पुग	190	उक्कहुदि च पुब्बं	222
अथणंतरेण खड्दा	245	उक्कस्सय अणुभागे	185
अथ णिरय तिरियणामा	235	उक्कस्समणुक्कस्सं	22
अथ थीणगिद्धिकम्मं	235	उक्कस्स हेट्ठिमा	248
अथ वंजणोग्गहम्मि दु	109	उगुवीसट्टारसयं	50
अथ सुदमदि आवरणे	211	उदओ च अणंतगुणो	145
अथ सुदमदिउवजोगे	189	उदयादि पदेसग्गं	179
अधिका समा व हीणा	169	उदयादि पदेसग्गं	225
अधिगो समो व हीणो	142	उदयादि या द्विदीयो	179
अभियोगमणभियोगो	96	उदयादिसु द्विदीसु य	180
अवगयवेदणवुंसय	45	उदयो च अणंतगुणो	242
अवलेहणी समाणा	72	उवजुत्ता का च गदो	66
अविरहिदसांतरं	57	उवजोगवग्गणाओ	65
असणी खलु बंधइ	85	उवजोगवग्गणाहि	69
असादं णीचगोदं	132	उवसामगो च सव्वो	97
अहिया च पदेसग्गे	150	उवसामणा कदि विधा	116
		उवसामणाखयेण दु	122

उवसामणाखयेण द्रु	123	एदे खलु मोत्तूणं	28
उवसामगे च खवगे	39	एदेण अंतरेण दु	203
उवसामंतय अद्धा	18	एदेसिं द्वाणाणं	74
उवसामंतय अद्धा	20	एदेसिं द्वाणाणं	81
उवसंते आसाणे	99	एदे समयपबद्धा	198
उवसंते आसाणे	101	एदे सुण्णद्वाणा	49
उवसंते भजियव्वा	97	एदे सुण्णद्वाणा	50
[ए]		एदे सुण्णद्वाणा	51
एइंदियकाएसु च	183	एदे सुण्णद्वाणा	52
एइंदियभवग्गहणेहिं	184	एदे सुण्णद्वाणा	53
एकसमयपबद्धाणं	199	एदे सुण्णद्वाणा	54
एक्कम्मिह य अणुभागे	100	एमेव य वेदयते	123
एक्कम्मिह द्विदिविसेसे	200	एयं जस्स दु कम्मं	106
एक्कम्मिह य अणुभागे	66	एवं दब्बे खेत्ते	58
एक्कम्मि य उवजोगे	64	एसा द्दिठदीमु जहण्णा	152
एक्कम्मि द्विदिविसेसे	202	एसो कमो य माणे	80
एक्कम्मि भवग्गहणे	64	एसो कमो य कोषे	174
एक्का संगहणीए	8	[ओ]	
एक्केक्केण समाणय	56	ओकड्ढदि जे अंसे	154
एक्केक्कम्मिह य द्वाणे	40	ओकड्ढदि जे अंसे	221
एक्केक्काए संकमो	25	ओकाड्ढिदे च पुव्वं	221
एक्केक्कम्मिह कसाए	163	ओरालिये सरीरे	188
एक्कं च द्विदिविसेसं	155	ओवट्टण च णियमा	161
एक्कं च द्विदिविसेसं	156	ओवट्टणमुव्वट्टण	161
एगसमयपबद्धा	194	ओवट्टणा जहण्णा	152
एगादेगुत्तरियं	184	ओवट्टणाए तिण्णि दु	7
एगाधिगाए बीसाए	33	ओवट्टेद्वण सेसाणि	94
एगुत्तरमेगादि	201	ओवट्टेदि द्विदि पुण	158
एत्तो अणाणुपुव्वी	19	[क]	
एत्तो अवसेसा	34	कदरिस्से च गदीए	65
एदाओ सुत्तगाहाओ	10	कदि आवलियं पवेसेइ	59
एदाणि पुव्वबद्धाणि	193	कदि आवलियं पविसंति	92
एदे खलु मोत्तूणं	27	कदि कम्मिह होंति ठाणा	41

कदि पयडोयो बंधदि	23	केवदिया किट्टीओ	162
कदि भागुवसाभिज्जदि	117	केवडिया उवजुत्ता	67
कदि भागं वा बंधदि	117	केवडिया च कसाए	67
कदिसु गदीसु भवेसु	182	केवलदंसणणाणे	16
कदिसु च अणुभागसु	166	वे सि कम्मंसाण	120
कम्मस्स य अणुभागे	165	केसु अवट्ठाणं वा	157
कम्मसियट्ठाणसु	56	केसु व अणुभागसु य	124
कम्माणि अभज्जाणि	187	को कदमाए ट्ठिदीए	60
कम्माणि अभज्जाणि	190	कोधादिवग्गणादो	173
कम्माणि जस्स तिण्णि हु	106	को वा कम्मि कसाए	63
कम्माणि पुव्वबद्धाणि	182	कोहादी उवजोगे	46
कम्माणि पुव्वबद्धाणि	204	कोहो चउच्चिवहो वुत्तो	70
काणि वा पुव्वबद्धाणि	92	कोहो य कोवरोसो	86
कामो रागणिदाणो	६9	कोहं च छुहइ माणे	139
किट्टीए अणुभागे	220	कोहं च छुहइ माणे	238
किट्टीए कं करणं	162	कं कम्मं उवसंतं	116
किट्टीए सेसगं पुण	230	कं करणं वोच्छिज्जदि	119
किट्टीकदम्मि कम्मे	204	कं करणं उवसंतं	119
किट्टीकदम्मि कम्मे	205	कं केण होइ अहियं	74
किट्टीकदम्मि कम्मे	206	कं ठाणमवेदंतो	84
किट्टीकदम्मि कम्मे	207	कं ठाणं वेदंतो	84
किट्टीकदम्मि कम्मे	213	कि अंतरं करंतो	151
किट्टीकयवीचारे	9	किचूणियं म्हुत्तं	125
किट्टी च ट्ठिदीविसेसेसु	167	कि ट्ठिदियाणि कम्माणि	94
किट्टी च पदेसग्गे	169	कि लेस्साए बद्धाणि	191
किट्टीदो किट्ठि पुण	230	कि वेदंतो किट्ठि	214
किट्टीदो किट्ठि पुण	229	कि सेसगग्गिह् क्किट्टीय	229
किट्टी करेदि गियमा	164	[ख]	
किमिरायरत्तसमगो	73	खवगा य आणुपुव्वी	233
के अंसे झीयदे पुव्वं	93	खवणा व अखवणा वा	232
केवचिरं उवजोगो	63	खवणाए पट्ठवगो	113
केवचिरं उवसंतं	118	खीणेसु कसाएसु	232
केवचिरमुवसाभिज्जदि	118	खीणो देवमणुस्से	112

खुद्धभवग्गहणं पुण	17	[छ]	
खेत्तम्हि च भज्जाणि	192	छच्चेव णोकसाया	134
खेत्तभवकालपोग्गल	59	छव्वीस सत्तावीसा	49
		छव्वीस सत्तवीसा य	29
[ग]		छक्कं दुग्गम्हि णियमा	37
गणणादियंतसेढी	146	छण्हं आवलियाणं	195
गहणं मणुष्णमग्गण	88	[ज]	
गाहासदे असीदे	2	जसणाममुच्चगोदं	212
गुणहीणमंतरायं	212	जा चावि बज्जमाणी	196
गुणदो अणंतगुणहीणं	150	जाव ण छदुमत्थादो	245
गुणसेढि अणंतगुणा	143	जा वग्गणा उदीरेदि	226
गुणसेढि अणंतगुणा	165	जा हीणा अणुभागेण	172
गुणसेढि अणंतगुणा	240	जे चावि ण वेदयदे	126
गुणसेढि अणंतगुणे	146	जे चावि य अणुभागा	227
गुणसेढि असंखेज्जा	144	जे जे जम्हि कसाए	68
गुणसेढि असंखेज्जा	149	जो कम्मंसो पविसदि	224
गुणसेढि असंखेज्जा	160	जोगे अण्णदरम्हि य	98
गुणसेढि असंखेज्जा	241	जोगे कसाय उवजोगे	91
[च]		जो जम्हि संछुहंतो	239
चक्खू सुदं पुधत्तं	20	जो जम्हि संछुहंतो	140
चत्तारि तिग्ग चट्ठक्के	38	जो जं संकामेदि	62
चत्तारि य खवणाए	8	जं किट्ठि वेदयदे	168
चत्तारि य तिण्णि उभे	11	जं किट्ठि वेदयदे	177
चत्तारि य पट्ठवए	7	जं चावि संछुहंतो	217
चत्तारि वेदयम्मि दु	4	जं चावि संछुहंतो	216
चट्ठुविधमणवचिजोगे	188	जं चावि संछुहंतो	244
चदुर दुग्गं तेवीसा	43	जं जं खवेदि किट्ठि	218
चरिमे बादररागे	243	ज वेदंतो किट्ठि	216
चरिमो य सुहुमरागे	210	[झ]	
चरिमो बादररागे	209	झीणट्ठिठदिकम्मसे	126
चरिमं वेदयमाणो	215	झंझा दोसविवादो	86
चोद्दसग्ग दसग्ग सत्तग्ग	32	[ट]	
चोद्दसग्ग णवग्गमादी	52	ट्ठिठदि अणुभागे अंसे	157
चोद्दस छमु पयडीसु	35	ट्ठिठदि उत्तरसेढीए	201

[ण]

णमपुढविवालुगोदय	71
णाधिगच्छदि तिण्णि भवे	113
णयविहि पयदं पयदे	24
णव अट्ठ सत्त छक्कं	53
णाणम्हि य तेवीसा	47
णिद्दा य णीचगोदं	134
णिरयगइ अमर-	42
णिरुवक्कमा च वड्ढी	151
णियमा अणुभागेसु च	167
णियमा अणुभागेसु य	200
णियमा चडुसु गदीसु	30
णियमा मणुसगईए	32
णियमा मणुसगदीए	110
णियमा लदासमाणो	76
णियमा लदासमाणो	77
णिन्वाघादिणेदा	19
णेहाणुराग आसा	89

[त]

तत्तो परमुदयो खलु	103
तह् णिरयतिरियणामा	128
तदियादो पुण बिदिया	175
तदिया सत्तसु किट्टीसु	197
तिण्णि य चउरो तह्	12
तिण्णेदा गाहाओ	3
तेण परं सेसाओ	197
तेयप्पा अणुभागा	227
तेरसय णवय सत्तय	33
तेवीस सुक्कलेस्से	44
तेवीस संकमो पुण	31
तं केण होइ अहियं	62
[द]	
दसगं चउक्क पणगे	36

दससु च वस्सस्संतो	208
दिट्ठे सुण्णसुण्णे	55
दिवसस्संतो बंधदि	210
दुट्ठो व कम्मि दग्गे	21
दुविहो खलु पडिवादो	221
दुविहो पडिग्गहविही	26
देसावरणीयाइं	208
दो दुसु एगाए वा	38
दो पंचेव य एक्का	12
दोसु गदीसु अभज्जाणि	183
दोसु वि एक्का गाहा	6
दंसण चरित्तमोहे	14
दंसणमोह उवसामगस्स	91
दंसणमोहक्खवणा	110
दंसणमोहस्सुवसामणाए	5
दंसणमोहस्सुवसामगो	95

[प]

पज्जत्तापज्जत्तेण	186
पज्जत्तापज्जत्ते	187
पच्छिम आवलियाए	228
पणयं पुण काऊए	44
पडिवादुवामेंतय	16
पडिवादो च कदिविधो	120
पढमसमयोवजुत्तेहिं	69
पढमसमयक्किट्टीणं	176
पढमा च अणंतगुणा	175
पढमा जं गुणसेदी	177
पढमं बिदियं तदियं	215
पविसदि ट्ठिठिक्खएण दु	224
पविसदि ट्ठिठिक्खएण दु	180
पयडि पयडिट्ठिठिणेसु	26
पयडीए मोहणिज्जा	22
पयलायुगस्स य तहा	133

पुण्णा जं वेदयवे	231	बंधो व संकमो वा	147
पुठ्व पविट्ठा नियमा	226	बंधो व संकमो वा	223
पुठ्वम्मि पंचमम्मि दु	1	बंधो व संकमो वा	219
पुठ्वावलिया नियमा	196	बंधोदएहि नियमा	148
पेज्ज-दोसविहत्तो	3	[भ]	
पेज्ज-दोसविहत्तो	13	भज्जाणि च पच्चक्खेसु	189
पेज्जं वा दोसो वा	21	भजियग्वाणि अभज्जाणि	185
पेज्जं ति पाहुडम्मि दु	1	भजियग्वो य अभिवर्खं	104
पंच चउक्के बारस	36	भयणिज्जो वेदंतो	135
पंच य तिणिण य दो	11	भयसोगमरदिरदिगं	132
पंविदिय सण्णो पुण	95	भवबद्धा अच्छुत्ता	194
पंचसु च ऊणवीसा	65	भवसमयसेसगाणि	203
पंचेव सुत्तगाहा	5	भवसेसगाणि कदिसु	199
पुवेदं च खवेदि	234	भविया वाभविया वा	40
[ब]		भागेणाणंतिमेण दु	172
बहुगत्ते धोवत्ते	223	[म]	
बहुगदरं बहुगदरं	61	मग्गणगवेसणाए	55
बादररागे नियमा	122	मण-वयण-काय-पासे	15
बद्धं च बज्झमाणं	81	माया य सादिजोगो	88
बारस णव छ तिणिण य	163	माया चउत्विहा वुत्ता	70
बिदियट्ठिदि आदिपदा	178	मायं च छुहइ लोहे	139
बिदियादो पुण तदिया	170	मायं च छुइइ लोहे	238
बिदियादो पुण तदिया	171	माणद्धा कोहद्धा	17
बिदियादो पुण पढमा	171	माणमददएपथंभो	87
बिदियादो पुण पढमा	170	माणे लदासमाणे	75
बंधदि च सदसहस्से	206	मिच्छत्तवेदणीयं	99
बंधेण हीणदरगे	140	मिच्छत्तपच्चओ खलु	101
बंधेण हीणदरगे	239	मिच्छत्तवेदणीए	111
बंधेण होइ उदओ	144	मिच्छाइट्ठो नियमा	108
बंधेण होइ उदओ	240	[ल]	
बंधेण होइ उदओ	241	लद्धी य संजमासंजमस्स	6
बंधेण होई उदयो	143	लद्धी य संजमासंजमस्स	115
बंधो व संकमो वा	142	लद्धी यं वेदयते	211

ल्लेसा साव असादे	192	सत्तेदा गाहाओ	9
लोभकसाए णियमा	236	सत्तेव णोकसाए	138
लोभकसाये णियमा	136	सत्तेव णोकसाए	237
लोभम्हि च किट्टीए	174	सद्दहदि असब्भावं	107
लोभस्स य णामधेज्जा	90	सद्दहदि असब्भावं	108
लंभस्स अपढमस्स	105	समयूणा च पविट्ठा	231
[व]		सम्मत्तदेसविरयी	14
वड्ढावड्ढो उवसामणा	115	सम्मत्तपढमलंभो	104
वड्ढीए अवट्टाणे	154	सम्मत्तपढमलंभ-	105
वड्ढेदु होइ हाणी	160	सम्मत्ते मिच्छत्ते	82
वड्ढेंतो किट्टीए	164	सम्माइट्ठी जीवो	107
वड्ढेदि हरस्सेदि च	156	सम्मामिच्छाइट्ठी	102
वसस्संतो बंधदि	209	सम्मामिच्छाइट्ठी	109
वसस्संतो बंधदि	243	सम्मत्ते मिच्छत्ते	186
वस्सेसु असंखेज्जेसु	205	सव्वणिरय भवणेसु	96
वस्सेसु असंखेज्जेसु	129	सव्वं च कोहकम्मं	80
वस्ससदसहस्साइं	131	सव्वस्स मोहणीयस्स	136
वावीस पण्णरसगे	29	सव्वस्स मोहणीयस्स	336
वावीस पण्णरसगे	31	सव्वाओ किट्टीओ	168
वावीस पणय छक्कं	43	सव्वावरणीयं पुण	79
विरदीए अविरदीए	83	सव्वावरणीयाणं	133
वीसा य संकमदुगे	34	सव्वासु वा ट्टिदीसु च	166
वेदग उवजोगे वि य	13	सव्वे मणुसगईए	42
वेदगकालो किट्टीय	181	सव्वे वि य अणुभागे	159
वेदयसम्माइट्ठी	102	सव्वेहिं ट्टिदिविसेसेहि	100
वेदे च वेदणीए	135	सव्वेसु चाणुभागेसु	193
वोच्छामि सुत्तगाहा	2	सव्वेसु चाणुभागेसु	219
वंसीजण्हगसरिसी	72	सव्वेसु ट्टिदिविसेसा	195
[स]		सव्वं जहाणुपुव्वी	137
सण्णी चदुसु विभज्जो	85	सागारे जोगम्हि	83
सण्णोसु असण्णोसु	82	सागारे पट्टवगो	98
सत्त य छक्कं पणगं	54	सादसुह्णामगोदा	127
सत्तारसेगवीसामु	30	सादि य जहण्णसंकम	57

सादेण असादेण च	191	संक्रामणमोवट्टण	233
सासदपत्थणलालस	90	संक्रामणपट्टवगो	141
सुहमे च संपराए	121	संक्रामेइ कदि वा	23
सुहुमम्हि संपराए	244	संक्रामेदि व के के	130
सुहुमम्हि संपराए	217	संक्रामेदि च के के	207
से काले उदयादो	145	संक्रामेदि उदीरेदि	220
से काले उदयादो	242	संक्रामणपट्टवगस्स	127
से काले से काले	147	संक्रामयपट्टवगस्स	124
से काले से काले	148	संक्रामेदुवकडुदि	153
से काले से काले	149	संक्रामगपट्टवगो	130
सेलघणअट्टिदारुअ	71	संक्रामगो च कोधं	137
सेसा कमेण अहिया	77	संकंतम्हि य णियमा	129
सेसा कमेण हीणा	76	संखेज्जदिभागेण दु	181
सेसा भवबद्धा खलु	198	संखेज्जा च मणुस्सेसु	114
सेसासु खीणमोहा	114	संछुहदि अण्णकिट्टि	218
सेसाणं कम्मणं	213	संछुहदि अवेदंतो	141
सेसो अणंतभागे	173	संछुहदि पुरिसवेदे	237
सेसो असंखेज्जदिमो	178	संछुहदि पुरिसवेदे	138
सोलसग बारसट्टग	28	संधीदो संधी पुण	78
सोलस य ऊणवीसा	46	सांतरणिरंतरं वा	60
सोलस य चउट्टाणे	4	हरसेदि कदिसु एगं	155
संक्रमणपट्टवगस्स	125		
संकमपडिग्गहो वा	41	[ह]	
संकमपडिग्गहविही	25	हालिह्वत्थसमगो	73
संकम उवक्कमविही	24	हीणा च पदेसग्गे	78
संकमणयं णयविदू	58	हीणा च पदेसग्गे	75
संक्रामण ओवट्टण	18	हेट्ठा देसावरणं	79
संक्रामण-ओवट्टण	10	होहिंति च उवजुत्ता	68

कसायपाहुडसुत्तस्स सहानुक्कमो

[अ]		अणंतेसु	167
अकारगो	164	अणंतरा	197
अंतरं	93, 125, 151	अणंतगुणं	212
अंतरेण	203	अणंतगुणा	143, 165
अंतराइए	211	अणंतगुणो	145
अंतोमुहुत्तं	103	अणंतगुणहीणं	150
अंसो	168	अणंतगुणहीणो	76
अंसे	92, 93, 123, 154, 207	अणंतगुणेषूणाए	146
अंसेसु	134	अणंतभागो	175
अक्खमा	86	अणगारे (अनाकारः)	190
अक्खमलसमो	73	अणागारे	83
अखवगा	232	अणागारो	109
अगित्ति	134	अणायारे	15
अचक्खुदंसणं	190	अणाहारएसु	48
अच्छुत्ता	194	अणुपुब्बं	39, 214
अजसं	132	अणाणुपुब्बी	19
अजाणमाणो	107	अणुज्जुगदा	88
अट्ठ	6, 53, 179	अणुपुब्बं	39, 214
अट्ठविहो	24	अणुभागा	227
अट्ठारस	35, 51	अणुभागो	148, 175
अट्ठारसयं	45, 50	अणुभागे	3, 22, 23, 60, 62, 100, 142, 143, 220
अट्ठारसगे	32	अणुभागेण	172
अट्ठावीसं	8, 27	अणुभागेसु	94, 124, 166, 182, 193, 200
अट्ठि	71	अणुभागग्गेण	77
अट्ठे	37	अणुवइट्ठं	108
अणउवसंतं	116	अणुसमयं	61
अणंता	226	अण्णकिट्ठि	218
अणंताओ	163		
अणंतेण	75		

संकाय पत्रिका-२

अण्णदरम्हि	98	अभिजोगो	96
अण्णा	10, 12	अणभिजोगो	96
अण्णाओ	9	अमरो	42
अण्णे	113	अलद्धी	211
अण्णासु	218	अवगयवेदो	45
अण्णिस्से	229	अवगदवेदस्स	49
अण्णाणम्हि	47	अत्रट्ठदा	153
अत्तुक्करिसो	87	अवट्ठाणे	154
अत्थे	3	अवट्ठाणं	157, 160
अत्थम्मि	2	अवल्लेहणी	72
अत्थेसु	3	अवसेसा	34
अत्थि	208	अवायो	15
अथ	128	अविरदि	90
अध	109, 189, 211	अविरदोए	83
अद्धा	14, 18	अविरदे	32, 43
अधवा	163	अविरहिदं	57, 69
अधिओ	147	अवेदगो	134
अधिका	169	अवेदेतो	141
अधिगं	158	अठवोच्छिण्णं	119
अधिगा	160, 172	असण्णी	85
अधिगो	142	असण्णीसु	42; 82
अपच्छिमाए	203	असम्भावं	107
अपज्जत्ते	82	असंकमो	136
अपडिग्गह्विही	26	असंकतं	124
अपढमस्स	105	असंकामगो	130, 207
अबंधगा	84	असंखेज्जा	114, 144
अबंधगो	102, 217	असंखेज्जेहि	184
अभज्जा	188, 192	असंखेज्जेसु	129, 156, 205
अभज्जाणि	183	असंखेज्जदिमो	178
अभज्जगो	135	असादं	132
अभविआ	40	असादे	192
अभविसेसु	48	असादेण	191
अभिवखं	63, 104	असीदे	2

अवि	69, 110, 126, 196, 214	उक्कस्सो	228
अहिओ	143, 224	उक्कासो	87
अहियो	143	उगुवीस	50
अहिए	140	उत्तम-जहणो	25
अहियं	62, 74	उत्तरपदं	173, 178
अहिया	77, 150	उत्तरपदाणि	203
आणुपुव्वी	233	उत्तरसेढी	177
आणुपुव्वीय	136	उत्तरसेढीय	201
आणुपुव्वीए	19, 45, 46, 54, 55	उदओ	144, 219
आदि	178	उदए	154
आवलियं	15, 59, 92, 159, 225	उदएण	93, 143
आवलिया	152, 231	उदयं (उदकं)	71
आवलिया	202	उदयो	142, 223
आवलियाणं	195	उदयादि	179
आवलियासु	230	उदयादिसु	180
आसा	89	उदयादिपदेसगं	225
आसाणे	99, 101	उदयादी	225
आहारयो	48	उदयादो	145
आहो (अथवा)	166	उदिण्णं	81
		उदीरिदा	227
[इ]		उदीरेदि	61, 62, 220
इच्छा	89	उदीरेंतो	61
इत्थी	45	उभे	11
इत्थीसु	51	उभएण	215
इत्थीवेदं	138	उवइट्ठं	107
इह	198	उवक्कमविही	24
ईहा	15	उवजुत्ता	66
[उ]		उवजुत्तो	63
उक्कडुदि	158, 222	उवजुत्तेहि	69
उक्कडुदे	222	उवजोगा	64
उक्कस्सय	185	उवजोगो	63
उक्कस्सं	79	उवजोगे	4, 46, 64, 91, 190
उक्कस्समणुक्कस्सं	22	उवजोगवग्गणाओ	65
उक्कस्सा	19, 75		

उवजोगवग्गणाहि	69	एविकरसे	226
उवरिल्लं	79	एक्केक्कम्हि	40, 163
उवसामगो	93, 97	एक्केक्काए	25
उवसामगे	34, 39, 52	एक्केक्के	57
उवसामगस्स	91, 99, 101	एक्केक्केण	56
उवसामणा	14, 115, 122	एकसमयबद्धाणं	199
उवसामणद्धम्मि	6	एक्ककसाए	64
उवसामणाए	5	एक्ककसायम्मि	64
उवसंतं	81, 116	एक्ककालेण	166
उवसंता	100	एक्कवीसं	10
उवसंते	20, 97, 99, 101	एक्कवीसा	47
उवसंतो	103	एक्कवीसाए	33
उवसमक्खयादो	121	एक्कारस	7, 29, 31, 36, 50
उवसंतकसाय	18	एक्कारसयं	45
उवसामो	96	एगं	155
उवसामो	116	एगा	38
उवसामैत	20	एगाए	38
उवसामैतय	18	एगट्ठिया	90
उस्सिदो	87	एगसमयपबद्धा	194
ऊणवीसा	35, 46	एगसमएण	199
ऊणवीसाए	29	एगादेगुत्तरियं	184
ऊणिया	152	एगाधिगाए	33
[ए]		एगुत्तरमेगादि	201
एइंदियं	184	एत्तो	19, 34
एइंदियकाएसु	183	एदं	165
एक्कं	11, 48, 155	एदा	3
एक्का	6, 8, 12, 226	एदाओ	10
एक्कयं	53	एदाणि	193
एक्काय	11	एदे	27, 49, 50, 53, 197
एक्कग	37	एदेण	203
एक्कगे	38	एदेसि	74, 81
एक्कम्मि	64, 202	एसो	80, 174
एक्कम्हि	47, 66, 100, 200	एमेव	123

एयं	106	कषक	88
एवं	58, 68, 231	कमो	80, 141, 174
[ओ]		कमेण	76, 170, 181
ओकडुदि	154, 159, 221	कदि	23, 41, 59, 64, 92, 162
ओकडुदे	221	कदमं	81
ओरालिये	188	कदमाए	60
ओरालिय-मिस्सये	188	कदमिस्से	81
ओवट्टण	10, 18	कदिसु	155, 182
ओवट्टणा	133, 152, 161, 208	कदीसु	182
ओवट्टणाए	7	कदिण्हं	92
ओवट्टणमुव्वट्टण	161	कदिखुत्तो	57
ओवट्टिदम्मि	111	कदिभागं	57, 117
ओवट्टेत्तो	164	कदिभागो	117
ओवट्टेदि	158	कदिविधा	116
ओवट्टेहण	94	कदिविधो	120
ओहिदंसणे	190	करणं	119, 162
[क]		करेदि	161
कं	62, 74, 94	करेंतो	151
कम्मि	21, 63	कलहं	86
कम्मिह	41, 120, 162, 191	कसाय	16, 91
कस्स	21, 59, 84, 116	कसायाण	1
कम्मं	99, 137	कसाए	63, 135
कम्माणि	94, 106, 182, 204	कसाएसु	46, 67, 74, 182, 232
कम्मे	111, 192, 204	कसायम्मि	21, 63
कम्माणं	213	कसायम्मिह	120, 162
कम्मस्स	101, 165	कसायोवजुत्तेसु	53, 54
कम्मेषु	161, 191	कहि	21, 93, 194
कम्मंसा	100	का	66
कम्मंसे	123, 126	काऊए (कापोते)	44
कम्मंसो	224	काणि	92
कम्मंसाणं	120	कामो	89
कम्मंसियट्ठाणेषु	56	कायो	15
कम्मभूमि	110	कायव्वं	85

कालो	59, 176	केलिया	65, 194
कालं	151	केलियासु	166
कालेण	169	केण	62, 67, 74, 186
काले	58, 61, 145, 212	केणहियो	63
काहि	69	केरिसो	91
कि	94, 124	केवचिरं	41, 57, 63, 118
किचूणियं	125	केवडिया	65
किवा	142	केवदिया	162
किच्चा	93	केवल-दंसण-णाणे	16
किट्टि	177, 229	को	60, 61, 63, 91
किट्टि	229	कोधं	137
किट्टी	10	कोधस्स	173
किट्टीए	7, 162, 174, 196, 220	कोधे	174
किट्टीओ	162	कोध-पच्छिमपदादो	165
किट्टीसु	182	कोधादिवग्गणादो	173
किट्टीकय	9	कोवं	86
किट्टीकरणं	17	कोहं	139
किट्टीकदम्मि	204	कोहो	70, 86
किट्टीकरणम्हि	161	कोहम्मि	138
किट्टीखवणाए	233	कोहेयट्टिया	86
किट्टीदो	229	कोहादी	46
किट्टीय	181, 229	कोहकम्मं	80
किट्टीवज्जेसु	161	कोहद्धा	17
किण्हलेस्साए	44	[ख]	
किण्णु	68, 221	खयो	59
किमिरायरत्तसमगो	73	खयेण	122, 123, 229
कुहक	88	खलु	85
के	60, 67, 92, 93	खवगा	233
केसु	40, 94, 124, 157, 204	खवगे	34, 39
केसुदीरेदि	218	खवगो	112
केसि	120	खवणा	14, 232
केच्चिरं	151	खवणाए	5, 8, 10, 111
केत्तिगा	194	खवेदि	214

खर्वंत	18	गुरुणियोगा	107
खर्वंतए	16	गूहणच्छणो	88
खीणो	102	गोदा	127
खीणे	112	गोमुत्ती	72
खीणसु	232	[घ]	
खीणम्मि	97, 113	घण	71
खीणमोहा	114	घाणं	15
खीणमोहपट्ठवए	9	[च]	
खीणमोहस्स	8	च	3, 45, 65, 66, 69, 79, 110, 126, 196, 214
खीणमोहद्धा	18	चउ	4
खीणमोहंते	233	चउक्क	11, 36
खुद्धभवग्गहणं	17	चउक्के	36
खेत्तं	59	चउट्ठाण	13
खेत्ते	58	चउत्थी	197
खेत्ताहि	192	चउरो	12
खेत्तम्मिह	191	चउव्विहा	70
[ग]		चत्तारि	4, 7, 8, 11, 12, 38
गणणादियंतेण	150, 179	चउव्विहो	24, 70
गणणादियंतसेढी	146	चउण्हं	195
गदी	66	चउवीस	27
गदीए	65, 81	चेय	13
गदीसु	30, 95, 114, 182	चेव	17, 46, 54
गवेसणाए	55	चोद्दस	35, 50
गहो (ग्रहः)	96	चोद्दसा	50
गहणं	88	चोद्दसग	32, 52
गाहा	2	चोद्दसयं	51
गाहाओ	3, 4, 9	चन्निखदिय	15
गिद्धी	89	चक्खू	20
गुणदो	150	चदुक्के	37
गुणेण	75, 142, 150, 175	चदुर	43
गुणविसिट्ठं	23	चदुविधं	188
गुणसेट्ठि	143, 160	चहुसु	29, 35, 46, 74, 80, 95, 196
गुणहोणं	23, 212		

चरित्तस्स	61, 115	जहाणुपुब्बीए	123
चरिमं	215	जहाणुपुब्बीय	123
चरिमो	209	जह	223
चरिमसमए	69	जा	172, 196, 226
[छ]		जिब्भा	90
छ	163, 178	जिब्भाए	15
छसु	35	जीवस्स	49
छक्क	35, 43	जीवा	40
छक्कं	11, 37, 44, 53	जीवो	107
छक्के	34	जे	68, 126, 228
छच्च	134	जेप्पि	133, 208
छण्हं	195	जो	62, 224
छदुमत्थणाणेसु	189	जोगम्हि	83
छंदो	89	जोगे	91, 98, 188
छप्पि	33	जोगोवजोगेण	186
छब्बीस	29, 49	जोदिसि	96
छुहइ	139	[क्ष]	
[ज]		झञ्जा	86
जं	62, 177, 209	झीणट्टिदि	126
जत्थ	202	झीणमझीणं	22, 39
जण्हग	72	झीणा	128
जम्हि	2, 68, 113, 140	झीयदे	93
जस्स	106	[ढ]	
जयि	2	ढाणं	48
जसणाममुच्चगोदं	212	ढाणस्स	84
जवमज्झं	177	ढाणा	51
जहणणा	152	ढाणाणं	74, 81
जहणणाओ	19	ढाणे	40
जहणणगो	98, 111	ढाणेसु	29, 55, 80
जहणणादो	75	ट्टिदि	3, 23, 59, 62, 176, 204
जहणणसंकम	57	ट्टिदीए	22, 60
जहणणमुक्कस्सं	23	ट्टिदीसु	126, 152
जहाणुपुब्बी	137	ट्टिदि-अणुभागे	13, 74, 117

ट्टिदि-अणुभागेसु	204	णवुंसयं	138
ट्टिदिउक्कस्सगाणि	185	णवुंसये	187
ट्टिदीओ	125, 179	णाणह्ति	47
ट्टिदिक्खएण	180, 224	णादव्वा	3
ट्टिदिमगुभागेसु	206	णाधिगच्छदि	113
ट्टिदियाणि	94	णाम	1, 132, 205
ट्टिदिविसेसं	155	णामं	134
ट्टिदिविसेसाणुभागेसु	195	णमाउगो	112
ट्टिदिविसेसे	200, 202	णामा	209
ट्टिठदिविसेसा	100	णामागोदाणि	129, 209
ट्टिठदिविसेसेसु	155, 193	णामधेज्जा	90
ट्टिठदिविसेसेहि	100, 220	णायव्वो	136
ट्टिठदिसंखाए	131	णिकखेवो	24
[ठ]		णिरग्गो	24
ठाणं	81, 84	णिट्ठवगो	98, 110
ठाणा	41	णिदाणो	89
ठाणे	94, 147	णिहा	134
ठाणेसु	40	णिहाए	133
ठिदियं	22	णिहाणिहा	128
[ण]		णिहेसो	14
ण	106, 183	णिबंधदि	92
णंतगुणहीणो	148	णियदी	88
णत्थि	139	णियम	29
णयविहू	58	णियमा	37, 75, 95, 100, 136
णयविहि	24	णियमसा	80, 107, 150, 195, 212
णयस्स	21	णिरय	128
णव	53, 163	णिरयगह्	42
णवणं	36, 52	णिरंतरं	60, 179
णवयं	45	णिरासाणो	97
णवय	33	णोरासाणो	97
णवुंसए	50	णिरुवक्कम	159
णवुंसगो	132	णिरुवक्कमा	151
णवुंसयो	45	णिब्वात्तादो	19, 97
		णीचगोदं	132

णीलाए	44	तिगे	37
णु	61	तिगादिगधिगा	28
णेया	58	तिष्णिण	3, 7, 11, 12, 100
णेहाणुराम	89	तिष्णिणय	163
णोकसाया	134	तिष्णेक्कदरस्स	103
णोकसाये	138	तिष्णिणभवे	113
[त]		तिभागेण	152
तत्तो	103	तिविहे	30, 47
तदियं	215	तिस्से	168, 173, 178, 216
तदिया	170, 197	तिरियणामा	128
तदिए	1	तु	10
तदियादो	175	ते	68, 126, 153
तदुभए	40	तेउलेस्साए	98, 111
तदो	113	तेउ-पम्मलेस्सामु	44
तण्हा	90	तेण	99, 101, 224
तध	87	तेयप्पा	227
तधा	186	तेरसय	33
तह	11, 12, 17, 104, 115	तेरसया	45
तहा	6, 82, 83, 97, 115, 127, 152, 155, 156	तेरसयं	35
तहिं	202	तेवीसं	48
तम्हि	203	तेवीस	31, 44
तहेव	20, 137, 213	तेवीसा	43, 46, 49
तहेवेण्हि	223	[थ]	
तसेसु	183	थंभो	87
तसभवेहिं	184	थीणगिद्धि	128
ताव	57	थी	187
तासु	179, 226	थोवत्ते	223
तारिसो	202	[ढ]	
ति	1	दंसणे	39
तिग	36, 163	दंसण-चरित्तमोहे	14
तिगं	42	दंसणमोह-	91
तिगम्मि	36	दंसणमोहस्स	5, 102, 112
		दंसणमोहम्मि	113

दंसणमोहस्सुवसामगो	94	देसावरणं	79
दंसणमोहस्सुवसामणाए	5	देसावरणीयाइं	208
दंसणमोहक्खवगा	110	देसिदं	58
दप्प	87	देसेण	104
दब्बे	58	दो	38, 78, 176, 231
दस	52, 86	दो छक्क	11
दसग	32	दोस	3, 86
दसगं	36	दोसो	21
दसगमादीय	51	दोसु	6, 126, 183
दसभे	1	[प]	
दससु	197, 208	पओगेण	227
दसलक्खणो	87	पओगसा	224
दारुअ	71	पंच	4, 11, 36, 37, 48
दारुसमाणो	76, 79	पंचगे	36
दारुयसमगं	85	पंचेव	5, 12, 42, 47
दिट्ठीगए	30	पंचम्मि	1
दिट्ठे	55	पंचसु	3, 31, 35, 183
दिवसस्संतो	209	पंचिदिय	95
दीवससुहे	96	पंचिदियेसु	31, 42
दु 1, 4, 7, 55, 59, 80, 94, 95		पंचविहे	41
दुक्कस्सं	206	पंचविहो	24
दुग	12, 37	पंचवीस	49
दुगं	43, 53	पंचवीसाए	30
दुगे	34, 37	पंसुलेवसमो	73
दुगहि	37	पगास	87
दुगुणा	20	पचला	134
दुगुंछा	132	पच्चक्खेसु	189
दुट्ठो	21	पच्छदो	105
दुविहो	25, 26, 121	पच्छिमाए	181
दुसु	38, 177	पच्छिम-भावल्लियाए	228
देवमणुस्से	112	पज्जत्तापज्जत्ते	187
देसमावरणं	211	पज्जत्तापज्जत्तेण	186
देसविरयी	14	पज्जत्ते	82

पञ्जत्तो	95	पदेसग्गेण	144, 169
पट्टवण	7	पयडीए	22
पट्टवगो	98, 110	पयडीयो	23
पडिग्गहे	40	पयडीसु	35
पडिवज्जदि	95	पयडिट्टाणेसु	26
पडिवादो	16, 120	पयदं	24
पडिवदिदो	120	पयलपयला	128
पडिलोमो	139	पयलायुगस्स	133
पढम	53	पयोगेण	229
पढमं	69, 215	परं	99, 101
पढमा	169	परिभवो	87
पढमाए	168	परमुदयो	103
पढमकिट्टीए	231	परिमाणं	57
पढमसमयकिट्टीणं	176	परिणामो	91
पणग	53	परिणमंति	227
पणगं	54	परिवदिदो	122
पणगहि	35	पवयणं	107
पणगे	34, 36	पविट्ठं	225
पणय	33	पविट्ठा	231
पणयं	44	पविसदि	180
पण्णरसधा	2	पविसंति	92
पण्णरसधा	2	पविस्संति	59
पण्णारस	5	पवेसेइ	59
पण्णरसा	27	पवेसेदि	221
पण्णरसगे	29	पवेसगो	60, 92
पत्तेगं	174	पाहुडं	1
पत्तेयं	166	पाहुडे	1
पत्थण	90	पाहुडम्मि	1
पदेस	142	पासे	15
पदेसअग्गेण	146	पि	74, 147, 195
पदेश-अणुभागे	223	पियायदे	21
पदेसग्गं	179	पुढवि	71
पदेसग्गे	62, 74, 117, 149, 170	पुण	8, 17, 44, 78, 169

संकाय पत्रिका-२

पुण्णा	231	बद्धाणि	191
पुधत्तं	20	बहुगत्ते	223
पुधत्ते	16	बहुगदरं	61
पुव्वं	93, 221	बादररागो	209
पुव्वम्मि	1	बादररागे	121
पुव्वबद्धाणं	115	बारस	28, 36, 51, 163
पुव्वबद्धाणि	92, 124, 182	बिदियं	215
पुव्वावलिया	196	बिदिया	175
पुव्वपविट्ठा	226	बिदियादो	169
पुरिसवेदे	138	बिदियट्ठिदि	178
पुरिसेसु	45, 52	बिदियट्ठिदीए	168, 176
पेज्जं	1, 3, 21	बोद्धव्वं	99, 155, 233
पेज्ज-दोसो	89	बोद्धव्वा	17, 68, 82, 172
पेज्ज-दोसविहत्ती	3, 13	बोद्धव्वो	95, 164, 174
पोगल	59	[भ]	
[ब]		भज्जा	183, 187, 188, 212
बंधइ	85	भज्जाणि	183
बंधगिदरासिं	217	भजियव्वा	19, 97, 154
बंधगे	3, 13	भजियव्वो	98
बंधगो	84, 133, 216	भजियव्वाणि	185
बंधट्ठाणेसु	56	भजिदव्वा	153
बंधदि	23, 62, 117, 123, 206	भज्जो	148
बंधसमं	158	भणिदा	72, 90
बंधसमगं	158	भणिदो	73
बंधसरिसम्हि	140	भयणिज्जो	135
बंधेण	56, 93, 140, 143	भयसोगमरदि	132
बंधो	101, 112, 142, 219	भव	59
बंधोदएहिं	148	भवक्खया	121, 122
बंधोदयणिज्जरा	232	भवग्गहणे	64
बज्झमाणं	81	भवणेमु	96
बज्झमाण	204	भवन्ति	197
बज्झमाणी	196	भवबद्धा	194, 198
बद्धं	81, 184, 230	भवा	64

भवे	70, 91	माणे	75, 80, 139, 174
भवेसु	182	माणो	70, 71, 87
भवम्मि	198	माणोवाओ	20
भवसेसगाणि	199	मायं	139
भवसप्रयसेसगाणि	203	माया	70, 88
भवसेस-समयपबद्धसेसाणि	201	मायाए	80, 139, 174
भव-सेसगसमयपबद्धसेसाणि	200	मायद्धा	17
भद्विया	40	मिच्छत्तं	105
भविएसु	48	मिच्छत्त	43, 99, 187
भागो	178	मिच्छत्ते	82, 186
भागेण	172	मिच्छत्तपच्चओ	101
भावविधि	41	मिच्छत्तवेदणीए	111
भावे	58	मिच्छाइट्ठी	108
भासगाहाओ	10	मिस्सगे	43, 82, 182
भिण्णमुहुत्तं	210	मिस्से	32, 43
भूदपुक्वा	68	मुच्छा	89
[म]		मुहुत्तं	125
मग्गण	55, 88	मेढ	72
मग्गणोवाया	39	मोत्तूणं	27
मज्झिमो	98, 219	मोहणिज्जा	22
मज्झिमासु	228	मोहणीयं	131
मज्झिमट्ठिदीसु	127	मोहणीयस्स	125, 136, 213, 233
मण	15	मोहे	39
मणुण्ण	88	[य]	
मणुसगईए	32, 42	य	4, 35, 40, 43, 48, 57, 58, 60, 66, 73, 78, 82, 88, 89, 212
मणुसगदीए	110	[र]	
मणुस्सेसु	114	रदि	132
मद	87	रागो	89
माणं	137	रोसो	86
माण	87	[ल]	
माणकसाये	141	लंभस्स	105
माणकसायस्स	141	लक्खणं	165
माणद्धा	17		

कसायपाहुडसुत्तं

१८१

लदा	71	वस्सं	170
लदासमाणं	85	वस्साणि	176
लदासमाणे	75	वस्सस्संतो	208, 209
लदासमाणो	76	वस्ससदसहस्साइं	131
लद्धी	6, 115, 211	वस्सेसु	129, 205
लालसा	90	वा 40, 41, 60, 63, 81, 82, 92,	
ल्लिगेण	191	215, 232	
लेस्सा	91, 192	वावीस	42, 43
लेस्साए	83, 191	वावीसा	49
लोभं	137	वालुगोदय	71
लोभो	70	वि 6, 52, 70, 72, 73, 78, 88, 95,	
लोभम्हि	174	102	
लोमस्स	90	विज्जा	90
लोभादी	165	विभज्जो	85
लोभकसाये	136	विमाणे	96
लोहे	139	विदिय	54
लोहद्धा	17	विदियाए	126
[व]		वियंजणे	4
व	60, 63, 128	वियड्डेण	104
वंजणोग्गहम्मि	109	वियंजणे	13
वंसी	72	विरदे	32, 43
वंचणा	88	विरदीए	83
वग्गणा	66, 172, 226	विरदाविरदे	83
वग्गणग्गेण	77, 171	विरहिदं	69
वट्टमाणेण	191	विवागोदय	59
वड्ढी	86, 151	विवादो	86
वड्ढीए	154	विहत्ती	3
वड्ढीदु	160	विहत्तम्मि	2
वड्ढिदि	151	विसरिसं	66
वड्ढेदि	155	विसाणं	72
वड्ढेतो	164	विसिस्सदे	67
वत्थुम्मि	1	विसेसहिया	170
वयणं	15	विसेसेण	78, 142, 169

संकाय पत्रिका-२

विसेसम्हि	41	संकमेण	106
वीचारा	213, 232	संकमट्टाणा	42, 47
वीचारे	9	संकमट्टाणे	56
वीसं	20, 90	संकमपडिग्गहो	41
वीसाए	33	संकमपडिग्गह्विही	25
वीसाय	34	संकमदे	230
वुत्ता	70	संकमविही	25
वुत्तो	70	संकमणयं	58
वेदंती	84	संकमणपट्टवगस्य	125
वेदेंतो	135, 214	संक्रामणपट्टवगो	130
वेदकसाएसु	55	संक्रामणो	137
वेदणीयं	99, 129, 205	संक्रामण	10, 18
वेदणीए	135	संक्रामणपट्टवगो	141
वेदयम्मि	4	संक्रामणमोवट्टण	233
वेदगो	141, 146	संक्रामयपट्टवगस्स	124
वेदग-उवजोगे	13	संक्रामेइ	23
वेदगकालो	181	संक्रामेदि	62, 130, 207
वेदयदि	130, 150, 207, 212	संक्रामेदुक्कहुदि	153
वेदयदे	123, 211, 231	संखेज्ज	171
वेदयमाणो	215	संखेज्जा	114, 205
वेदयसम्माइट्ठी	102	संखेज्जे	129
वेदादी	137	संखेज्जेहि	184
वेदे	135	संखेज्जगुणा	170
वेदो	91:	संखेज्जदिभागो	202
वोच्छामि	2	संखेज्जदिभागेण	181
वोच्छिज्जदि	119	संगहणी	9
[स]		संगहणीए	8
संकम	24, 34	संछुडा	198
संकंतं	124	संछुहंतो	140, 214
संकंतम्हि	129	संछुहइ	139
संकमो	25, 33, 35, 136, 219	संछुहदि	137, 218
संकमे	39, 231	संछोहणमुदएण	214
संकमाए	7	संछोहणादीसु	128

संजम	14	समयूगा	231
संजमम्हि	34	समयूणाए	228
संजमासंजमस्स	6, 115	समा	176
संजलण	86	समाणा	72
संघी	78	समाणो	71
संघीदो	78	समाणणा	41
संपराए	16, 121, 217	समाणय	56
संपहिबंधो	145	समाविभागे	192
संपहिबंधेण	145	समासेण	8
सांतरं	57, 60, 177	समुक्कस्सो	87
सगे	147	समो	142
सणंतेसु	152	सम्मत्तं	14
सण्णिवादे	58	सम्मत्ते	33, 43, 82, 111, 186
सत्त	4, 9, 37, 138	सम्मत्तपढमलंभो	104
सत्तग	31, 32	सम्मत्तपढमलंभस्स	105
सत्तय	33, 51	सम्माइट्टी	107
सत्तसु	197	सम्मामिच्छाइट्टी	202
सत्तरस	27	सण्णी	85, 85
सत्तारस	30, 33	सण्णीसु	82
सत्तवीसा	29	सरिसं	221
सत्तावीसा	49	सरिसी	72
सदे	2	सरिसो	71
सदसहस्से	206	सरिसीसु	67
सदसहस्सेसु	131	सरीरे	188
सद्दहद	107	सव्वं	80
सद्दहदि	107	सव्वो	97
सभासगाहाओ	9	सव्वे	42, 110
समया	60	सव्वाओ	168
समयो	69	सव्वस्स	136
समए	203	सव्वासु	166, 197
समये	61	सव्वेसु	193
समयपबद्धा	195, 197	सव्विस्से	168
समगो	73	सव्वेहि	100, 220

सव्वोवसमेण	103	सुद्धं	173, 178
सव्वावरणं	79, 211	सुहणाम	127
सव्वावरणीयं	79	सुहणाममुच्चगोदं	206
सव्वावरणीयाणं	133	सुहुमम्हि	217
सव्वावरणे	135	सुहुमरागम्हि	122
सव्वकिट्टीसु	193	सुहुमरागो	210
सव्वत्थ	68, 85, 110	सुहुमे	121
सव्वणिरय	96	से	61, 125, 145
सविसेसा	20	सेल	71
सहस्ससो	114	सेसं	209, 210
सागारो	109	सेसगं	230
सागारे	83, 98	सेसगा	129, 205, 212
साद	127, 192	सेसगो	135
सादि	57	सेसगम्हि	229
सादिजोगो	88	सेसगे	188, 208
सादेण	191	सेसगाणं	181
सामण्णा	202	सेसा	20, 50, 51, 76, 171, 198
सारीरगं	132	सेसो	173
सासद	90	सेसाओ	197, 215
सिया	112	सेसाणि	28, 94, 131, 199, 204
सुक्कलेस्से	44	सेसाणं	27, 213, 232
सुण	10	सेसासु	114
सुण्णट्ठाणा	49, 50	सेसे	133, 141
सुण्णासुण्णे	55	सेसेसु	42
सुत्तं	2	सो	95, 106
सुत्तगाहा	5	सोद	15
सुत्तगाहाओ	10	सोलस	4, 46
सुदो	89	सोलसग	28
सुदं	20	सोलसण्हं	74
सुददेसिदं	58	सोलसेव	27
सुदमदि-आवरणे	211	[ह]	
सुद-मदिउवजोगे	189	होदि	8, 105, 134
सुदुक्कस्सा	127	हवदि	1, 71
सुदुस्सासे	15	होइ	24, 57, 62, 74, 79, 84, 95, 143

कसायपाहुडमुत्तं

१८५

होंति	4, 5, 7, 12, 41, 65, 86	हायदि	15
होहिति		हाणी	151
हवन्ति	52	हाणीए	154
हरस्सं	180	होणा	14
हरस्सो	181	हीणो	142
हरसेदि	155	हीणदरगे	140
हस्स	132	हु	167
हरस्सेदि	156	हेट्टा	79
हालिह्वत्थ	73	हेट्टिमा	228

संकाय पत्रिका-२

DAVVASŔGAHO with AVACŪRI
[A Prakrit Text with Sanskrit Commentary]

Edited by

Dr. GOKUL CHANDRA JAIN
RISHABH CHANDRA JAIN

SAMPURNANAND SANSKRIT VISHVAVIDYALAYA
VARANASI

अवचूरिजुदो दव्वसंगहो

[अवचूरिनामसंस्कृतटीकायुतः प्राकृतद्रव्यसंग्रहः]

सम्पादन

डां. गोकुलचन्द्र जैन

श्री ऋषभचन्द्र जैन

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

वाराणसी

प्रस्तावना

‘द्वयसंगहो’ प्राकृत गाथाओं में निबद्ध एक लघु कृति है। इसमें मात्र ५८ गाथाएँ हैं। द्रव्यसंग्रह नाम से यह बहु प्रचलित है। हिन्दी तथा अंग्रेजी अनुवाद और ब्रह्मदेव कृत संस्कृत टीका के साथ इसके अलग-अलग संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत संस्करण में अब तक अप्रकाशित अज्ञात कर्तृक अवचूरि नामक संस्कृत टीका को प्रथम बार प्रकाशित किया जा रहा है।

सम्पादन का आधार

अवचूरि की एक मात्र प्राचीन प्रति जैन सिद्धान्त भवन, आरा में उपलब्ध हुई है। कागज पर देवनागरी लिपि में लिखी इस प्रति में १०" × ४१" इंच के २४ पत्र हैं। प्रथम पत्र में नव तथा शेष में १० पंक्तियाँ हैं। काली तथा बीच बीच में लाल स्याही का प्रयोग किया गया है। अन्त में प्रतिलिपिकार ने निम्नलिखित सूचना दी है—

“इति द्रव्यसंग्रहटीकावचूरिसम्पूर्णः। संवत् १७२१ वर्षे चैत्रमासे शुक्लपक्षे पंचमीदिवसे पुस्तिका लिखायितं सा० कल्याणदासेन।”

संभवतया किसी प्राचीन कन्नड लिपि में लिखित ताडपत्रीय प्रति से यह देवनागरी लिपि में लिखी गयी है। प्रति अशुद्धि बहुल है।

विषय परिचय

द्वयसंगहो की गाथाओं में जैन तत्त्वज्ञान के कतिपय प्राचीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। प्रथम २७ गाथाओं में ‘षड् द्रव्य’ तथा ‘पञ्चास्तिकाय’ विवेचन है। गाथा २८ से ३८ तक ‘सप्त तत्त्व’ और ‘नव पदार्थ’ प्रतिपादित हैं। इसके बाद २० गाथाओं में ‘मोक्षमार्ग’ का प्रतिपादन किया गया है।

पञ्चास्तिकाय

जैन दर्शन में ‘पञ्चास्तिकाय सिद्धान्त’ के अन्तर्गत जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय तथा आकाशास्तिकाय के स्वरूप का प्रतिपादन किया जाता है। यह सिद्धान्त पञ्च भूतवाद तथा पञ्च स्कन्धवाद से सर्वथा भिन्न है। भारतीय दर्शनों में जैन दर्शन के अतिरिक्त किसी अन्य दर्शन में धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय जैसे द्रव्यों या तत्त्वों का प्रतिपादन नहीं मिलता। आकाशास्तिकाय की तुलना आकाश द्रव्य से, पुद्गलास्तिकाय की तुलना सांख्यों के प्रकृति या प्रधान

से या परमाणुवाद से की जा सकती है। इसी तरह जीवास्तिकाय की तुलना आत्म-द्रव्य से की जा सकती है। वास्तव में जैन दर्शन का विवेचन अन्य दर्शनों के विवेचन से पूर्णतया मेल नहीं खाता। काय-शरीर की तरह प्रदेशों का प्रचय रूप होने से ये पाँचों अस्तिकाय कहे जाते हैं।

षड् द्रव्य

उक्त पञ्चास्तिकाय के साथ काल को मिलाकर 'षड् द्रव्य' कहे जाते हैं। काल का प्रत्येक अणु स्वतन्त्र होने से इसे अस्तिकाय नहीं माना गया। सुदूर अतीत में काल को स्वतन्त्र द्रव्य मानने के विषय में जैन आचार्यों में मत भिन्नता रही, किन्तु द्रव्य की परिभाषा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य के आधार पर काल की गणना स्वतन्त्र द्रव्य के रूप में कर ली गयी। आचार्य कुन्दकुन्द के प्राकृत ग्रन्थ पञ्चत्थियसंगहो तथा तत्त्वार्थ सूत्र के श्वेताम्बर परम्परा सम्मत 'कालश्चेत्येके' सूत्र और उसके भाष्य से इन तथ्यों की जानकारी मिलती है। कुन्दकुन्द ने पञ्चास्तिकाय के विवेचन के साथ काल को स्वतन्त्र द्रव्य मानने के आधारों का प्रतिपादन किया है। भाष्यकार ने 'इत्येके' द्वारा इसका उल्लेख तो किया, किन्तु उसके समर्थन या विरोध में कुछ नहीं लिखा। इस प्रकार षड् द्रव्य का सिद्धान्त प्रचलित हुआ। इन छह द्रव्यों में जीवास्तिकाय के अतिरिक्त शेष पाँच अजीव हैं तथा पुद्गल के अतिरिक्त शेष सभी अमूर्तिक हैं।

लोक विज्ञान

जैन दार्शनिकों ने पञ्चास्तिकाय सिद्धान्त के आधार पर लोक विज्ञान का निरूपण किया है। यह लोक पञ्चास्तिकायों का समवाय है। अकृत्रिम, अनादि और अनन्त है। काल द्रव्य परिवर्तन का हेतु है। छह द्रव्यों के अतिरिक्त लोक का अन्य कोई जनक या कर्ता नहीं है। ये सभी द्रव्य स्वतन्त्र अस्तित्व वाले हैं और कभी भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते। प्रत्येक द्रव्य के गुण और पर्यायों के कारण उसका परिवर्तन लक्षित होता है। द्रव्यत्व रूप से वह सदा अपने स्वभाव में अवस्थित रहता है। यही द्रव्य का 'उत्पादव्ययध्रौव्य' रूप लक्षण है और उसके 'गुणपर्याय युक्त' स्वरूप को अभिव्यक्त करता है। पर्यायों के परिवर्तन से लोक में वैविध्य दृष्टिगोचर होता है। जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय की क्रियाशीलता के कारण यह विविधता और अधिक बढ़ जाती है। जीव और कर्म पुद्गल का अनादि सम्बन्ध संसार की विचित्रता का हेतु है। बन्धन और मुक्ति का सिद्धान्त इसी में से प्रतिफलित होता है। इस प्रकार पञ्चास्तिकाय और षड्द्रव्य सिद्धान्त के द्वारा लोक

संकाय-पत्रिका-२

विज्ञान का निरूपण किया गया। इसी प्रक्रिया में से सप्त तत्त्व और नव पदार्थ का विवेचन प्रतिफलित हुआ।

सप्त तत्त्व, नव पदार्थ

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सप्त तत्त्व हैं। इनमें पुण्य और पाप को सम्मिलित करने पर नव पदार्थ हो जाते हैं। नव पदार्थों के प्रतिपादन की परम्परा प्राचीन है। बाद में पुण्य और पाप को आस्रव-बन्ध में समाहित कर लेने के कारण सप्त तत्त्वों का विवेचन प्रमुख हो गया। तत्त्वार्थसूत्रकार ने सप्त तत्त्वों का ही विवेचन किया है। प्राचीन परम्परा में नव पदार्थों के क्रम में भी भिन्नता दिखाई देती है। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष, यह क्रम प्राचीन सैद्धान्तिक परम्परा में प्रचलित था। कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में नव पदार्थों का इसी क्रम से विवेचन मिलता है। द्रव्यसंग्रह में पुण्य-पाप सहित नव पदार्थों का कथन है।

मोक्षमार्ग

जैन दर्शन में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप त्रयात्मक मोक्षमार्ग माना गया है। “सम्मद्सगणानं चरणं मोक्खस्स कारणं हवदि” कहकर द्रव्यसंग्रह में इसका प्रतिपादन किया गया है। इसे रत्नत्रय मार्ग भी कहते हैं। इस सिद्धान्त के द्वारा जैन दार्शनिकों ने भक्ति, ज्ञान और तपश्चर्या को सम्मिलित रूप से मोक्ष का कारण माना। मात्र भक्ति अथवा मात्र ज्ञान को मुक्तिमार्ग मानने का निषेध इससे व्यक्त होता है। दर्शन और ज्ञान के विना मात्र तपश्चरण भी मोक्ष का कारण नहीं हो सकता।

छद्मस्थ व्यक्ति के ज्ञान दर्शन पूर्वक होता है। उसके दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग क्रमशः होते हैं, युगपत् नहीं होते। केवलज्ञानी में दोनों युगपत् होते हैं। दर्शन और ज्ञान के क्रमशः और युगपत् होने का यह विचार सैद्धान्तिक परम्परा में प्राचीन समय से होता रहा है। आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में इसका प्रतिपादन मिलता है। सिद्धसेन ने सन्मति तर्क में दर्शन और ज्ञान को क्रमशः तथा युगपत् मानने वाली दो परम्पराओं का उल्लेख किया है। द्रव्यसंग्रह में कुन्दकुन्द की तरह छद्मस्थ में क्रमशः और केवली में युगपत् का कथन किया गया है।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होने पर भी चारित्र के विना मोक्ष संभव नहीं है। व्यवहार में व्रत, समिति और गुप्ति रूप चारित्र आवश्यक है। बाह्य और आभ्यन्तर क्रिया का निरोध रूप ध्यान संसार के कारणों का नाश करता है। ध्यान में

पञ्च परमेष्ठी—अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु के स्वरूप का ध्यान और उनके वाचक णवकार तथा अन्य मन्त्रों का जप बताया गया है। ध्यान का चरमोत्कर्ष सर्वथा विकल्प रहित होकर आत्मा का आत्मा में रमण है। यही उत्कृष्ट ध्यान है—“अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवइ ज्ञाणं।” मोक्ष प्राप्ति का यही उपाय है।

इस प्रकार मोक्षमार्ग के प्रतिपादन के बाद अन्तिम गाथा में कहा गया है कि निर्दोष पूर्ण सुत्तधारक मुनिश्रेष्ठ, अल्पसुत्तधर नेमिचन्द मुनि द्वारा कथित इस द्रव्य संग्रह का संशोधन कर लें।

द्रव्यसंग्रह का विवेचन कुन्दकुन्द के पंचत्थियसंग्रहो की पद्धति तथा क्रम के अनुसार है। संक्षेप में इतना व्यवस्थित और स्पष्ट विवेचन अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता।

द्रव्यसंग्रह अवचूरि

द्रव्यसंग्रह की प्राकृत गाथाओं पर ब्रह्मदेव की विस्तृत संस्कृत टीका प्रसिद्ध है। प्रस्तुत अवचूरि का प्रकाशन प्रथम बार हो रहा है। अवचूरि का अर्थ निचोड़ है। इस टीका में गाथाओं के अर्थ को संक्षेप में सार या निचोड़ रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रारम्भ की १४ गाथाओं की टीका अपेक्षाकृत विस्तृत है। उसमें ग्रन्थान्तरों के उद्धरण भी यत्र तत्र दिये गये हैं। बाद की टीका गाथा के अर्थ को अपेक्षाकृत संक्षेप में स्पष्ट करती है। टीका में गाथा के प्राकृत प्रतीक देकर उनका संस्कृत अर्थ दिया गया है। मूल गाथा देकर उसकी अवचूरि लिखी गयी है। इससे गाथाओं का वह पाठ भी सुरक्षित हो गया है, जो अवचूरिकार को उपलब्ध था। संस्कृत के माध्यम से पठन-पाठन के लिए यह टीका विशेष उपयोगी है।

टीका में कहीं भी टीकाकार का नामोल्लेख नहीं है, किन्तु टीका से ज्ञात होता है कि टीकाकार को जैन सिद्धान्तों की विस्तृत जानकारी थी, तभी वे गाथाओं के शास्त्रीय अर्थ को सरलतापूर्वक स्पष्ट कर सके। शब्दार्थ की दृष्टि से गाथाएँ सरल हैं, किन्तु उनमें प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावलि को सिद्धान्त ग्रन्थों का विशेष अध्येता ही समझ सकता है। अवचूरिकार ने गाथाओं का अर्थ पारम्परिक सैद्धान्तिक आधार पर स्पष्ट किया है। प्रारम्भ की १४ गाथाओं की टीका में १० गाथाएँ ग्रन्थान्तरों की उद्धृत हैं।

सिद्धान्त गाथाओं की परम्परा

द्रव्यसंग्रह की प्राकृत गाथाओं में महत्त्वपूर्ण पारम्परिक सिद्धान्तों का समावेश है। आचार्य परम्परा द्वारा मौखिक रूप से चला आ रहा सैद्धान्तिक ज्ञान समय

संकाय-पत्रिका-२

के दीर्घ अन्तराल में जब लुप्त होने लगा तो स्मृति के आधार पर उसे लिपिबद्ध करने के प्रयत्न किये गये। इन्हीं प्रयत्नों का सुफल है कि पारम्परिक गाथाओं के अनेक छोटे-बड़े संग्रह तैयार हुए। ऐसे ग्रन्थ प्रायः 'संगहो' या 'सारो' नाम से निबद्ध किये गये। गाथाओं की प्राचीनता या पारम्परिकता को 'भणियं' या 'कहियं' कहकर व्यक्त किया गया। आचार्य कुन्दकुन्द अथवा उनके पूर्व से ही यह परम्परा देखी जाती है। सिद्धान्तों को निबद्ध करने के कारण ऐसे आचार्य सिद्धान्ती या सैद्धान्तिक कहलाये। कई आचार्यों ने स्वयं को सिद्धान्ती कहने में गौरव समझा। इसी क्रम में द्रव्यसंग्रह जैसे लघुकाय और त्रिलोकसार, गोम्मटसार (गोम्मटसंगहसुत्तं) जैसे विशालकाय ग्रन्थ तैयार हुए। १२-१३ वीं शती तक सैद्धान्तिकों की परम्परा चलती रही। लघुकाय ग्रन्थ तैयार करने के पीछे ग्रन्थकर्ता का एक विशेष उद्देश्य यह होता था कि अध्येता उसे सहज रूप से हृदयंगम और कंठस्थ कर सके। गेय होने के कारण गाथाएँ वैसे भी कंठस्थ करने में आसान होती हैं। द्रव्यसंग्रह की गाथाएँ भी अर्थगर्भ होते हुए भी सहज और गेय हैं। यही कारण है कि कंठस्थ करने की परम्परा अब तक चली आ रही है।

प्राचीन पारम्परिक गाथाओं को स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में निबद्ध करने के अतिरिक्त अनेक आचार्यों ने अपने ग्रन्थों की टीकाओं में उनका समावेश किया है। यही कारण है कि दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं के बहुत से ग्रन्थों में अनेक समान गाथाएँ उपलब्ध होती हैं। ऐसी समान गाथाओं को देखकर अपनी परम्परा के ग्रन्थ को प्राचीन बताकर दूसरे ग्रन्थ में उस ग्रन्थ से गाथाओं के लिए जाने की बात कहना प्रायः सामान्य हो गया है। वास्तव में ऐसी गाथाएँ उस अविभाजित श्रमण परम्परा की धरोहर हैं, जिसे बाद के आचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में समान रूप से अपनाया। इस दिशा में गहन अनुसन्धान अपेक्षित है। द्रव्यसंग्रह जैसे लघुग्रन्थ से इस प्रकार के अनुसन्धान कार्य को प्रारम्भ किया जा सकता है। ऊपर लिखा जा चुका है कि द्रव्यसंग्रह की गाथाएँ प्रतिपाद्य विषय, भाषा और गठन की दृष्टि से आचार्य कुन्दकुन्द के अधिक निकट हैं। कर्म सिद्धान्त से सम्बद्ध गाथाओं की परम्परा कसायपाहुड, छक्खंडागम, गोम्मटसार-कर्मकाण्ड आदि में देखी जा सकती है।

सैद्धान्तिकों ने आचार्य परम्परा से प्राप्त सुत्त गाथाओं को लिपिबद्ध करने के जो प्रयत्न किये, उनका ऐतिहासिक महत्त्व है। संस्कृत में मौलिक ग्रन्थ रचना का प्राबल्य हो जाने के युग में प्राचीन परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने का सैद्धान्तिकों का दाय जैन श्रमण परम्परा के इतिहास की बहुत बड़ी थाती है। द्रव्यसंग्रह का

मूल्यांकन इस विराट सन्दर्भ में किया जाना चाहिए। तभी नेमिचन्द्र के अवदान का महत्त्व आँका जा सकेगा। ऐतिहासिक तथ्यों का आकलन और निर्णय कल्पना तथा अनुमान के द्वारा नहीं हो सकता। कई बार टीकाकारों या बाद के सन्दर्भों से जो भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है, उसे बहुत सावधानीपूर्वक जाँचा-देखा जाना चाहिए।

ग्रन्थकार नेमिचन्द्र

द्रव्यसंग्रह की अन्तिम गाथा में ग्रन्थकार का नाम नेमिचन्द्र मुनि आया है। गाथा इस प्रकार है—

“दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा दोससंसयचुदा सुदपुण्णा ।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण नेमिचंदमुणिणा भणियं जं ॥”

तिलोयसारो या त्रिलोकसार के अन्त में निम्नलिखित गाथा उपलब्ध है—

“इदि नेमिचंदमुणिणा अप्पसुदेणभयणंदिसिस्सेण ।
रइओ तिलोयसारो खमंतु तं बहुसुदाईरिया ॥”

द्रव्यसंग्रह और त्रिलोकसार की उक्त गाथाओं से स्पष्ट है कि दोनों ग्रन्थ एक ही नेमिचन्द्र द्वारा निबद्ध हैं। दोनों में वे अपनी विनम्रता व्यक्त करते हुए स्वयं को अल्पश्रुतधर कहते हैं। द्रव्यसंग्रह में वे पूर्णश्रुतधारी मुनिनाथों से द्रव्यसंग्रह को संशोधित कर लेने की प्रार्थना करते हैं और त्रिलोकसार में बहुश्रुत आचार्यों से क्षमा-याचना करते हैं। त्रिलोकसार में नेमिचन्द्र ने अपने को अभयनन्दि का शिष्य कहा है। उक्त ग्रन्थों की तरह लब्धिसार में भी ‘अप्पसुदेण नेमिचंदेण’ (गाथा ६४८) पद आया है।

गोम्मटसार नाम से प्रसिद्ध ‘गोम्मटसंगहसुत्त’ में अनेक गाथाओं में ग्रन्थकर्ता नेमिचन्द्र और उनके गुरुजन आदि का उल्लेख है। इसी ग्रन्थ में वह बहुचर्चित गाथा है, जिसके आधार पर नेमिचन्द्र को सिद्धान्तचक्रवर्ती अभिहित किया जाता है। गाथा इस प्रकार है—

“जह चक्केण य चक्की छक्खंडं साहियं अविग्घेण ।
तह मइ-चक्केण मया छक्खंडं साहियं सम्मं ॥”

—गोम्मटसारकर्मकाण्ड गाथा ३९७

द्रव्यसंग्रह या दव्वसंगहो, त्रिलोकसार या तिलोयसारो तथा गोम्मटसार या गोम्मटसंगहसुत्त एक ही नेमिचन्द्र द्वारा निबद्ध माने जाते रहे हैं; किन्तु ब्रह्मदेवकृत संस्कृत टीका के प्रकाशन के बाद टीका के सन्दर्भों के आधार पर द्रव्यसंग्रहकार को

संकाय-पत्रिका-२

त्रिलोकसार आदि के कर्ता से भिन्न सिद्ध करने की शुरुआत हुई। अलग गुरु-शिष्य परम्परा का भी अनुमान किया गया, यहाँ तक कि 'तणुसुत्तधर' का अर्थ आंशिक श्रुतज्ञान का धारक न करके 'अल्पज्ञ' अर्थ किया गया है। यहाँ इस विषय पर विस्तार से विचार करना उपयुक्त नहीं है, तथापि इस भ्रम के मूल कारण पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है।

द्रव्यसंग्रह के संस्कृत टीकाकार ब्रह्मदेव ने टीका के प्रस्तावना वाक्य में लिखा है कि नेमिचन्द्र सिद्धान्तदेव ने मालवा के धारा नगर के अधिपति भोजदेव के श्रीपाल नामक मंडलेश्वर के आश्रम नगर में मुनिसुव्रत चैत्यालय में सोम नामक राजश्रेष्ठी के निमित्त पहले २६ गाथाओं का लघु द्रव्यसंग्रह बनाया बाद में विशेष तत्त्वज्ञान के लिए बृहद् द्रव्यसंग्रह की रचना की।

ब्रह्मदेव ने अपनी इस जानकारी का कोई आधार नहीं दिया। २६ गाथाओं को लघुद्रव्यसंग्रह तथा ५८ गाथाओं को बृहद्द्रव्यसंग्रह नाम भी ब्रह्मदेव का दिया हुआ है। लघुद्रव्यसंग्रह के नाम से वर्तमान में प्रचलित कृति के विषय में निम्नलिखित तथ्य विशेष रूप से ध्यातव्य हैं—

१. ग्रन्थकार ने इसे लघुद्रव्यसंग्रह या द्रव्यसंग्रह नाम न देकर 'पयत्थलक्षण' कहा है।

२. इसकी उपसंहार गाथा इस प्रकार है—

“सोमच्छलेण रइया पयत्थलक्षणकराउ गाहाओ ।
भव्वुरयारणिमित्तं गणिणा सिरिणेमिचंदेण ॥”

इस गाथा में ग्रन्थ के नाम के साथ इसके कर्ता को नेमिचन्द्र गणि बताया गया है और 'सोमच्छलेण' पद के द्वारा सोमश्रेष्ठी का भी उल्लेख है।

३. इस ग्रन्थ की गाथाओं में से मात्र दो गाथाएँ (१२.१४) पूरी तथा चार (८-११) का पूर्वार्ध ५८ गाथाओं वाले द्रव्यसंग्रह की गाथाओं से मिलता है। शेष सभी गाथाएँ भिन्न हैं।

द्रव्यसंग्रह पर लिखी ब्रह्मदेव की वृत्ति विद्वत्तापूर्ण है, किन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि द्रव्यसंग्रह को सोमश्रेष्ठी के निमित्त लिखे जाने का भ्रम २६ गाथाओं वाले नेमिचन्द्र गणि के 'पदार्थलक्षण' की उपर्युक्त गाथा से उत्पन्न होता है। दोनों की गाथाओं तथा ग्रन्थकर्ता को एक व्यक्ति मान लेने पर ब्रह्मदेव द्वारा नेमिचन्द्र

गणि के विषय में ज्ञात सूचनाओं को द्रव्यसंग्रहकार नेमिचन्द्र के साथ भी जोड़ दिया गया हो तो आश्चर्य की बात नहीं।

५. इस सन्दर्भ में यह भी महत्त्वपूर्ण है कि द्रव्यसंग्रह पर लिखी प्रभाचन्द्र की संस्कृत वृत्ति तथा प्रस्तुत संस्कृत अवचूरि में ब्रह्मदेव की वृत्ति की तरह का कोई भी उल्लेख नहीं है।

६. ब्रह्मदेव की टीका के आधार पर द्रव्यसंग्रहकार नेमिचन्द्र के विषय में विचार करने वाले विद्वानों ने त्रिलोकसार तथा लब्धिसार के ऊपर उद्धृत सन्दर्भों को सर्वथा छोड़ दिया है।

७. वसुनन्दि द्वारा उल्लिखित नेमिचन्द्र को नाम साम्य के कारण द्रव्यसंग्रह का कर्ता मान लेने का सुझाव प्रमाणों के अभाव में स्वीकार्य नहीं हो सकता। दोनों की गुरु परम्परा भिन्न है। वसुनन्दि द्वारा उल्लिखित नेमिचन्द्र के गुरु नयनन्दि हैं तथा त्रिलोकसार के उल्लेख के अनुसार द्रव्यसंग्रहकार नेमिचन्द्र अभयनन्दि के शिष्य हैं। इसी प्रकार अपभ्रंश सुदंसणचरिउ के रचयिता नयनन्दि माणिक्यनन्दि के शिष्य हैं तथा वसुनन्दि द्वारा उल्लिखित नयनन्दि श्रीनन्दि के शिष्य हैं। वसुनन्दि कृत प्राकृत उवासयाज्झयणं तथा नयनन्दि कृत अपभ्रंश सुदंसणचरिउ में प्रशस्तियाँ उपलब्ध हैं। इसलिए उनके विवरणों में किसी प्रकार के विवाद की स्थिति नहीं है।

८. ब्रह्मदेव की टीका में नेमिचन्द्र को जहाँ सिद्धान्तिदेव कहा है वहीं अनेक स्थलों पर उन्हें 'भगवन्' जैसे पदों से भी सम्बोधित किया है। पारस्परिक सिद्धान्तों के संरक्षण के लिए विशेषरूप से प्रयत्नशील आचार्यों के लिए प्रयुक्त 'सिद्धान्तिदेव' एक गरिमामय अभिधान है।

९. द्रव्यसंग्रह अवचूरि में नेमिचन्द्र को महामुनि सिद्धान्तिक कहा गया है।

१०. उक्त तथ्यों के आलोक में यह कहना उपयुक्त होगा कि द्रव्यसंग्रह के कर्ता, समय, स्थान, गुरु-शिष्य परम्परा के विषय में ब्रह्मदेव के विवरण के समर्थक अन्य पुष्ट प्रमाण जब तक उपलब्ध नहीं हो जाते तब तक ऐसे महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक विषयों पर कल्पना और अनुमान के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत करना उचित नहीं है। द्रव्यसंग्रह और त्रिलोकसार के रचयिता को एक मानने का स्पष्ट आधार उपलब्ध है ही।

११. ब्रह्मदेव की टीका के विषय में श्री एस० सी० घोषाल ने द्रव्यसंग्रह की अपनी अंग्रेजी प्रस्तावना में विचार करने के बाद लिखा है—

संकाय-पत्रिका-२

“Thus it is clear that the commentator, Brahmadeva, was born several centuries after Nemichandra. Consequently, the statement which he makes about the composition of works by Nemichandra must be read with caution and accepted only when the same are confirmed by other proofs. Keeping this fact in view, we are not inclined to accept without any further evidence, the statement made by Brahmadeva.

इस प्रकार द्रव्यसंग्रह तथा त्रिलोकसार आदि के कर्ता एक ही नेमिचन्द्र हैं, यह मानने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं है। नेमिचन्द्र का समय उनके ग्रन्थों, शिलालेखों तथा अन्य साक्ष्यों के आधार पर शक संवत् ९०० ईस्वी सन् ९७८ निश्चित किया गया है। वे गंगवंशी राजा राचमल्ल के प्रधान सेनापति चामुण्डराय के गुरु थे। विशेष विवरण के लिए गोम्मटसार आदि की प्रस्तावना द्रष्टव्य है।

द्रव्यसंग्रह की भाषा

द्रव्यसंग्रह की गाथाएँ जैन शौरसेनी में निबद्ध हैं। दिगम्बर परम्परा के प्राकृत ग्रन्थों की भाषा के अध्ययन के बाद डॉ० पिशेल ने ‘जैन शौरसेनी’ एक विशेष नामकरण किया। संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त शौरसेनी से यह भिन्न है।

प्राचीन ग्रन्थों के प्रतिलिपिकारों के कारण तथा विशेष रूप से प्राकृत ग्रन्थों पर लिखी गयी संस्कृत टीकाओं के कारण प्राचीन गाथाओं का गठन बहुत प्रभावित हुआ है। इसलिए जब तक सही मानों में समालोचनात्मक संस्करण तैयार नहीं होते, किसी भी ग्रन्थ का भाषाशास्त्रीय अध्ययन प्रमाणिक नहीं हो सकता। प्रस्तुत संस्करण की गाथाएँ संस्कृत टीका पर आधारित हैं। परिशिष्ट में दिया प्राकृत शब्दकोश भाषायी अध्ययन की दृष्टि से उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रस्तुत संस्करण

प्रस्तुत संस्करण में द्रव्यसंग्रह अपने प्राकृत ‘द्व्वसंगहो’ नाम से प्रकाशित किया जा रहा है। मूल ग्रन्थ में स्पष्ट नामोल्लेख होने पर भी प्राकृत ग्रन्थों को भी प्रायः संस्कृत या हिन्दी नाम से प्रकाशित करने की परम्परा कब से कैसे चल पड़ी, इस बात पर विचार की अपेक्षा सम्पादकों से हम यह निवेदन करना चाहते हैं कि भविष्य में मूल नाम से ही ग्रन्थों को प्रकाशित किया जाना चाहिए। इसी क्रम में हमने ‘परमागमसारो’, ‘तच्चवियारो’, ‘कसायपाहुडसुत्त’ का प्रकाशन किया है।

अवचूरि का सम्पादन मात्र एक प्रति से किया गया है, इस कारण इसमें त्रुटियाँ संभव हैं। हमारी अपेक्षा है कि भविष्य में ‘द्व्वसंगहो’ का प्रकाशन पूर्ण

पाठालोचन पूर्वक संस्कृत टीका और हिन्दी अनुवाद के साथ किया जाना चाहिए । दव्वसंगहो के कर्ता के विषय में हमने जो विचार किया है, उससे भ्रान्त धारणाओं का निराकरण होना चाहिए ।

इस संस्करण के तैयार करने में जिनका भी प्रत्यक्ष-परोक्ष सहयोग प्राप्त हुआ, उन सबके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए हम आशा करते हैं कि इसके प्रकाशन से प्राचीन ग्रन्थों के सम्पादन-प्रकाशन में श्रीवृद्धि होगी ।

डॉ० गोकुलचन्द्र जैन

अध्यक्ष

प्राकृत एवं जैनागम विभाग

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

विषय सूची

विषय	गाथा संख्या
मंगलाचरण	1
जीवद्रव्य का लक्षण	2
निश्चय और व्यवहार नय से जीव का लक्षण	3
उपयोग के भेद, दर्शनोपयोग के चार भेद	4
ज्ञानोपयोग के आठ भेद	5
निश्चय नय से जीव का लक्षण	6
जीव अमूर्तिक है	7
जीव अपने कर्मों का स्वयं कर्ता है	8
जीव अपने कर्मों का स्वयं भोक्ता है	9
जीव स्वदेह परिमाण होता है	10
समुद्घात का लक्षण	10
समुद्घात के भेद	10
संसारी जीव के भेद	11
स्थावर जीव का लक्षण	11
पंचेन्द्रिय जीव के भेद	12
मार्गणा और गुणस्थानों द्वारा संसारी जीवों का वर्णन	13
सिद्ध का लक्षण	14
जीव के ऊर्ध्वगति स्वभाव का वर्णन	14
अजीव द्रव्य के भेद	15
पुद्गल द्रव्य का लक्षण	16
पुद्गल द्रव्य के भेद	16
धर्मद्रव्य का लक्षण	17
अधर्मद्रव्य का लक्षण	18
आकाशद्रव्य का लक्षण	19
लोकाकाश का लक्षण	20

संकाय पत्रिका-२

अलोकाकाश का लक्षण	20
कालद्रव्य का लक्षण	21
व्यवहार काल का लक्षण	21
निश्चय काल का लक्षण	22
अस्तिकायों का वर्णन	23
अस्तिकाय का लक्षण	24
द्रव्यों के प्रदेशों का वर्णन	25
कालद्रव्य अस्तिकाय नहीं है	25
पुद्गल द्रव्य का उपचार से कायत्व वर्णन	26
प्रदेश का लक्षण	27
तत्त्व और पदार्थ के भेद	28
आस्रव तत्त्व का लक्षण	29
भावास्रव का लक्षण और भेद	30
द्रव्यास्रव का लक्षण और भेद	31
द्रव्य तथा भाव बन्ध का लक्षण	32
बन्ध के भेद और कारण	33
भाव तथा द्रव्य संवर का लक्षण	34
भावसंवर के भेद	35
भाव तथा द्रव्य निर्जरा का लक्षण	36
भाव तथा द्रव्य मोक्ष का लक्षण	37
पुण्य तथा पाप का लक्षण	38
मोक्षमार्ग	39
रत्नत्रय मोक्ष का कारण	40
सम्यग्दर्शन का लक्षण	41
सम्यग्ज्ञान का लक्षण	42
दर्शन और ज्ञान का भेद	43
दर्शन पूर्वक ज्ञान का वर्णन	44
सम्यक् चारित्र	45
व्यवहार चारित्र का लक्षण	45
निश्चय चारित्र का लक्षण	46
दोनों प्रकार का चारित्र मोक्ष का कारण	47

ध्यान करने वाले का स्वरूप	48
ध्येय का लक्षण	49
ध्येय मन्त्र	49
अरिहन्त का लक्षण	50
सिद्ध का लक्षण	51
आचार्य का लक्षण	52
उपाध्याय का लक्षण	53
साधु का लक्षण	54
निश्चय ध्यान का लक्षण	55
निश्चय ध्यान की प्राप्ति का उपाय	56
ध्याता का लक्षण	57
उपसंहार	58
ग्रन्थकर्त्ता का आत्म निवेदन	58

अवचूरिजुदो दव्वसंगहो

अथेष्टदेवताविशेषं नमस्कृत्य महामुनिसिद्धान्तकश्रीनेमिचन्द्रप्रतिपादितानां षड्द्रव्याणां स्वल्पबोधप्रबोधनार्थं संक्षेपार्थतया विवरणं करिष्ये ।

1) जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं ।

देविदविदवदं वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥

अर्हन्तं जिनवरं वंदे नमस्करोमि, कथम्भूतं देविदविदवदं देवानाम् इन्द्राः देवेन्द्राः तेषां वृन्दाः समूहाः तेषां वन्द्यं पूज्यम्, कदा वन्दे सव्वदा सर्वकालं यावत् सरागपरणतिस्तावद्वन्दे, न वीतरागावस्थायां तदात्मनस्तत्पदप्राप्तेर्न कस्यापि कोऽपि वन्द्यः अतीतानागतवर्तमानकाले वा, केन वन्दे सिरसा मस्तकेन, तं कं वन्दे जेण जिणवरवसहेण णिद्दिट्ठं येन जिनवरवृषभेण निर्दिष्टं प्रतिपादितम्, जिनवराः गणधर-देवादयस्तेषां मध्ये वृषभः प्रधानः, जिनवरश्चासौ वृषभनाथश्च तेन जिनवरवृषभेण किं निर्दिष्टं जीवमजीवं दव्वं जीव-द्रव्यमजीवद्रव्यं च, जीवद्रव्यस्य का व्युत्पत्तिः व्यवहारनयेन दशभिः प्राणैः सह जीवति वर्तमानकाले, जीविष्यति भविष्यत्काले जीवितः पूर्वं अतीतकाले, निश्चयनयेन चतुर्भिः प्राणैः सत्तासुखबोधचैतनैर्जीवति स जीवः । तत्प्राणमाह—

“पंच वि इंदियपाणा मणवच्चिकायेण तिण्णि बलपाणा ।

आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण हुंति दस पाणा ॥”^१ इति जीवः ।

[गोम्मटसारजीव० गा० १३०]

अजीवद्रव्यस्य किं स्वरूपम्, पुद्गलधर्माधर्माकाशकालरूपम्, द्रव्यस्य किं लक्षणम्—द्रवति द्रोष्यति अदुद्बुवदिति द्रव्यम् । द्रवति पर्यायं गच्छति, द्रोष्यति पर्यायं यास्यति, अदुद्बुवदितिपर्यायं गतवत्पूर्वं, तदपि गुणपर्ययवत्, गुणपर्ययवद् द्रव्यम् । अन्वयेन सह संभवाः गुणाः । व्यतिरेकिणो भिन्नाः पर्याया । ते च गुणाः द्विभेदाः, साधारण-असाधारणश्च । पर्याया उत्पादव्ययरूपाः । तत्र जीवस्य साधारणाः, अस्तित्वं वस्तुत्वं द्रव्यत्वं प्रमेयत्वं अगुरुलघुत्वं प्रदेशत्वं चेतनत्वं अमूर्त्तत्वं चेति । असाधारणाः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राख्यानि, पर्यायाः देवमानुषनारकतिर्यक्त्वेकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियपंचेन्द्रिया इति । पुद्गलस्य स्वरूपमाह—“अविभागीपरमाणुद्रव्यपुद्गलः तथा च जलानलादिभिर्नाशं यो न याति स पुद्गलः” [] इति वचनात् । स च

१. कायेसु, ह्योन्ति, दह । गो. सा. ।

द्विविधः, अणुरूपः स्कन्धरूपश्च, अत्र साधारणगुणाः अस्तित्वं वस्तुत्वं द्रव्यत्वं प्रमेयत्वं अगुरुलघुत्वं प्रदेशत्वं अचेतनत्वं मूर्तित्वम् चेति । असाधारणाः स्पर्शरसरूपगन्धवर्णाः पर्यायाः गलनपूरणस्वभावः, घटितस्य पुनः स्तंभादेः गलनपूरणं नास्ति । कथं नास्ति संप्रति सूत्रतंतुना स्तंभस्य मानं गृह्यते, वर्षशतेनापि पुनस्तन्मात्रं भूमौ स्थितानां दृश्यते । धर्मद्रव्यस्य साधारणगुणाः, अस्तित्वं वस्तुत्वं द्रव्यत्वं प्रमेयत्वं अगुरुलघुत्वं प्रदेशत्वं अमूर्तत्वमचेतनत्वं चेति । असाधारणाः जीवपुद्गलयोर्गतिसहकारित्वम्, पर्याया उत्पादव्ययाः । अधर्मद्रव्यस्य साधारणगुणाः—अस्तित्वं वस्तुत्वं द्रव्यत्वं प्रमेयत्वं अगुरुलघुत्वं प्रदेशत्वममूर्तत्वमचेतनत्वं चेति । असाधारणाः जीवपुद्गलयोः स्थितिसहकारित्वम्, पर्याया उत्पादव्ययाः । कालद्रव्यस्य साधारणगुणाः—अस्तित्वादयः पूर्वोक्ताः ज्ञातव्याः, असाधारणः द्रव्याणां परिणमयितृत्वम् । आकाशद्रव्यस्य साधारणगुणाः—अस्तित्वं वस्तुत्वं द्रव्यत्वं अमूर्तत्वं प्रदेशत्वं अचेतनत्वं चेति । असाधारणाः सकलपदार्थानामवकाशदायक इति प्रतिपादिते सति उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकं वस्तुप्रतिपादितं कथितम् ।

इदानीं जीवस्वरूपमाह—

2) जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो ।

भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥

जीवोऽस्ति चेतनालक्षणः स्वपररूपसंवेदकः तथा उवओगमओ उपयोगमयः ज्ञानदर्शनलक्षणोपयोगेन युक्तः । अनेन प्रकृतिगुणाः ज्ञानादय इत्यपास्तं मोक्षे ज्ञानाद्य-भाव इति च । तथा अमुत्ति अमूर्तिः कर्मनोकर्मभिः सदा संबन्धेऽपि नैव मूर्तिः स्वकोयस्वभावस्तु अमूर्तस्वरूप-अपरित्यागात् तथा कत्ता कर्ता, केषां कर्मणां तन्निमित्तात्मपरिणामानां च कर्ता । अनेन प्रकृतेरेव कर्मकर्तृत्वं नात्मन इत्येकांतो निरस्तः । तथा सदेहपरिमाणो नामकर्मोदयवशादुपात्तानुमहच्छरीरप्रमाणो न न्यूनो नाप्यधिकः । अनेनात्मनः सर्वगतत्वं वटकणिकामात्रं च प्रत्याख्यातम् । तथा भोत्ता भोक्ता केषां शुभाशुभकर्मसंपादितेष्टानिष्टविषयाणां तत्प्रभवसुखदुखपरिणामानां च । तथा संसारत्थो त्रसस्थावरपर्यायैर्युक्तः संसारे संसरतीति । तथा सिद्धो सो सः प्रागुक्तात्मा सकलकर्म-क्षयात् सिद्धो भवति । पुनः किं विशिष्टः विस्ससोड्ढगई सिद्धः सन् विश्वस्य त्रैलोक्य-स्योर्ध्वं गच्छति अथवा विश्वस्य स्वभावेन ऊर्ध्वं गच्छति । किंचन एरण्डबीजवत्, अग्निशिखावच्च, जलमध्ये आलाबुवदिति । अनेन यत्रैव मुक्तस्तत्रैव स्थित इति निरस्तः । अत्रौदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्माणशरीराणि नोकर्म ।

सो जीवो व्यवहाररूपतया परमार्थरूपतया च द्विविध उच्यते, इत्याह—

3) तिक्काले चदुपाणा इंदियबलमाउ आणयाणो य ।

विवहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेषणा जस्स ॥

संकाय पत्रिका-२

विवहारा सो जीवो व्यहारनयात् सो जीवो भण्यते, स कः जस्स विद्यन्ते, के ते चट्ठु पाणा चत्वारः प्राणाः किं नामानाः—इंद्रियबलमाउभाणपाणो य इंद्रियप्राणाः बलप्राणाः आयुप्राणः आणपाणप्राणश्च एवं चत्वारो भेदेन । पुनर्दश कथं पंच इंद्रिय-पाणादिगाथाप्रथमसूत्रव्याख्यानेन प्रथमोक्तम् । इंद्रियं पंचेन्द्रियसंज्ञिजीवापेक्षया प्रति-पादितं न पुनः सर्वजीवापेक्षया । कस्मिन् काले ते चत्वारः प्राणाः भवन्ति । तिवकाले अतीतानागतवर्तमानकालत्रयेऽपि, एकेन्द्रियापेक्षया विकल्पः, णिच्छयणयदो दु निश्चय-नयात्पुनः चेषणा जस्स चैतन्यमेवोदयं यस्य ।

तस्य जीवस्य उपयोगद्वयमाह—

4) उवओगो दुवियप्पो दंसणणाणं च दंसणं चट्ठुधा ।

चक्खु-अचक्खु-ओही-दंसणमह केवलं णेयं ॥

उवओगो दुवियप्पो उपयोगो द्विविधविकल्पः कथमित्याह—दंसणणाणं च दर्शनोपयोगो ज्ञानोपयोगश्च, तत्र दर्शनोपयोगः—चट्ठुधा चतुः प्रकारः, कथमित्याह—चक्खुअचक्खुओही चक्षुदर्शनं अचक्षुदर्शनं अवधिदर्शनं, अह अथ केवलं केवलदर्शनं चेति, णेयं ज्ञातव्यमिति । अत्र चक्षुदर्शनमेकप्रकारम्, अचक्षुदर्शनं स्पर्शरसगन्धश्रोत्र-भेदाच्चतुर्भेदम् ।

ज्ञानमष्टविकल्पं भवतीत्याह—

5) णाणं अट्ठु वियप्पं मदिसुदिओही अणाणणाणाणि ।

मणपज्जयकेवलमवि पच्चक्खपरोक्ख भेयं च ॥

णाणं अट्ठुवियप्पं ज्ञानमष्टविकल्पं भवति, कथम्, मदिसुदिओही अणाणणाणाणि मणपज्जयकेवलमह मतिश्रुतावधिज्ञानानि, कथंभूतानि अणाणणाणाणि अज्ञानसंज्ञानानि, मतिश्रुतावधिज्ञानानि, मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं अवधि-अज्ञानं विभगज्ञानविज्ञानानि, मनःपर्ययं केवलमथानंतरं तत्र विशिष्टमत्यावरणकर्मक्षयादिन्द्रियैर्मनसा च यज्जानाति तन्मतिज्ञानं षट्त्रिंशत्त्रयभेदाः । ३३६ । किं विशिष्टम्, श्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमे सति निरूप्यमाणं श्रुतं यज्जानाति तच्छ्रुतज्ञानम्, तन्मतिपूर्वकं कथम्, यथांकुरो बीजपूर्वकः, तच्च द्विभेदमनेकभेदं च । द्वौ भेदौ तावदुच्येते—अंगबाह्यमंगप्रविष्टं च, अंगबाह्यमनेकविधं दशवैकालिकोत्तराध्ययनादि । अथ चतुर्दशप्रकीर्णकाः सामायिकोत्तरादिपुंडरीकांताः । अंगप्रविष्टं द्वादशांगानि आचारादि । अनेकभेदाः पर्यायादि । विशिष्टावधिज्ञानावरणक्षयोपशमात् मनसोऽवष्टंभेन यत्सूक्ष्मान् पुद्गलान् परिच्छिनन्ति स्वपरयोश्च पूर्वजन्मान्तराणि जानाति, भविष्यजन्मान्तराणि तदवधिज्ञानम्, तद्देशावधि-परमावधि-सर्वावधिभेदात् त्रिविधम् । विशिष्टं क्षयोपशमान्मनसोऽवष्टंभेन परमनसि-स्थितं अर्थं यज्जानाति तन्मनःपर्ययज्ञानम् । तदृजुविपुलमतिविकल्पाद्विभेदम् । ज्ञाना-

संकाय पत्रिका-२

वरणीयमोहनीयान्तरायरूपघातिकर्मचतुष्टयनिर्मूलोन्मूलनात् वेदनीयायुगोत्रनामकर्मणां दग्धरज्जुवत् स्थिते यदुत्पन्नं त्रैलोक्योदरवर्तिसमस्तवस्तुयुगपत्सकलपदार्थप्रकाशकमसहायं तत्केवलज्ञानम् । अत्र मतिश्रुते परोक्षे अवधिमनःपर्याये देशप्रत्यक्षे, केवलं सकल-प्रत्यक्षमिति ।

तस्य जीवस्य सामान्येन व्यवहारलक्षणं विशेषेण निश्चयलक्षणं चाह—

6) अट्ट चट्टु णाणदंसणसामण्णं जीवलक्खणं भणियं ।

ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥

जीवलक्खणं भणियं जीवानां लक्षणं स्वभावो भणितम्, कथंभूतं सामण्णं सामान्यम् । अयमर्थः—केषांचित् शक्तिरूपेण केषांचित् व्यक्तिरूपेण विद्यमानत्वात् । कदा सामान्यं ववहारणया व्यवहारनयापेक्षया किं लक्षणं अट्ट चट्टु णाणदंसण अष्टप्रकारं ज्ञानं चतुःप्रकारं दर्शनम् एते व्याख्येते प्रागेव । सुद्धं पुण दंसणं णाणं शुद्धनयापेक्षया सुद्धं पुनर्दर्शनं ज्ञानं च, दृष्टत्वं ज्ञातृत्वम् च ।

स च जीवो मूर्तिर्भवत्यमूर्तिश्चेत्याह—

7) वण्ण रस पंच गंधा दो फासा अट्ट णिच्छया जीवे ।

णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बंधादो ॥

सो जीवो अमुत्ति तदो अमूर्तिः ततः, कारणाद्यस्मान्नो संति नैव विद्यन्ते । के ते वण्णरसपंच गंधा दो फासा अट्ट, वर्णाः पंच रक्तपीतनीलकृष्णश्वेताः । रसाः पंच कटुतिक्तकषायमधुरलवणास्लाः । गंधौ द्वौ सुरभिदुरभिश्च । स्पर्शाः अष्ट मृदुकर्कश-गुहलघुस्निग्धरूक्षशीतोष्णाः एते न संति, कदा न संति, णिच्छया निश्चयनयापेक्षया, ववहारा व्यवहारनयापेक्षया पुनः मुत्ति मूर्तियुक्तः उक्तः ।

बंधादौ कर्मनोकर्मबंधवशात् सः व्यवहारकर्ता परमार्थकर्ता च भवतीत्याह—

8) पुगलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो ।

चेदणकम्माणदा सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥

स आदा आत्मा, कत्ता कर्ता भवति । कदा ववहारा दो व्यवहारनयापेक्षया, केषां कर्ता, पुगलकम्मादीणं पुद्गलकर्मादीनां, णिच्छयदो निश्चयनयापेक्षया, दु पुनः, चेदणकम्माण चेतनकर्मणां क्रोधादीनां कर्ता शुद्धनयापेक्षया शुद्धभावानाम्, अनन्त-दर्शनज्ञानवोर्यसुखानामुत्तरोत्तरप्रकृष्टपरिणामानां कर्ता ।

स च व्यवहारभोक्ता भवतीत्याह—

9) ववहारा सुहदुक्खं पुगलकम्मप्फलं पभुंजेदि ।

आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स ॥

संकाय पत्रिका-२

स आदा पभुंजेदि स आत्मा प्रभुङ्क्ते किं तत्, पुग्गलकम्मफलं पुद्गल-
सम्बन्धात्कर्मणः फलं सः चेतनानां कर्मणामित्यर्थः । किं फलं सुहृदुक्खं सुखं दुःखं च,
भुङ्क्ते, कदा भुङ्क्ते व्यवहारा व्यवहारनयापेक्षया, णिच्छयदो निश्चयनयापेक्षया पुनः
चेदणभावं खु आदस्स आत्मनः परमानंदस्वरूपतामुपभुंक्ते स्फुटम् ।

स आत्मा व्यवहारपरमाथपेक्षयेत्थं प्रमाण इति वदन्नाह—

10) अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।

असमुहदो व्यवहारा णिच्छयणयदो असंखदेसो वा ॥

चेदा अणुगुरुदेहपमाणो, स आत्मा व्यवहारनयमासृत्य सूक्ष्मस्थूलदेह-
प्रमाणो यदा कर्मवशात् कुंथुपर्यायं ग्रहणाति, तदा तद्देहप्रमाणः यदा हस्तिप्रमाणं
पर्यायं गृहणाति तदा तद्देहप्रमाणः । कुतः, उवसंहारप्पसप्पदो उपसंहारप्रसर्पणतः,
यत उपसंहारविस्तारधर्मो ह्यात्मा, कोऽत्र दृष्टान्तः । यथा प्रदीपो महद्भाजनप्रच्छा-
दितस्तद्भाजनांतरं प्रकाशयति, लघुभाजनपृच्छादितस्तद्भाजनान्तरं प्रकाशयति इति ।
किंतु असमुहदो समुद्घातसप्तकं वर्जयित्वा, तत्राणुगुरुत्वाभावः । समुद्घातभेदानाह—

“वेयण-कसाय-विउव्वण तह मारणंतिओ समुग्घाओ ।

तेजाहारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु ॥”

[गो० जी० ६६७]

समुद्घातलक्षणमाह—

“मूलशरीरमच्छंडिय उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स ।

णिग्गमणं देहादे. हवदि समुग्घादयं णाम ॥”

[गो० जी० ६६८]

तत्प्रत्येकं यथा—तीव्रवेदानुभवंमूलशरीरमत्यक्त्वा आत्मप्रदेशानां वहिर्निर्गमन-
मिति वेदानासमुद्घातः । तीव्रकषायोदयात्मूलशरीरमत्यक्त्वा परस्य घातार्थमात्म-
प्रदेशानां वहिर्निर्गमनमिति कषायसमुद्घातः । मूलशरीरमत्यज्य किमपि विकुर्वयितु-
मात्मप्रदेशानां वहिर्निर्गमनमिति विकुर्वणासमुद्घातः । मारणांतिकसमये मूलशरीर-
मत्यज्य यत्र कुत्रचिद्बद्धमायुस्तत्प्रदेशं स्पृष्टुमात्मप्रदेशानां वहिर्निर्गमनमिति मार-
णांतिकसमुद्घातः । स्वस्य मनोऽनिष्टजनकं किञ्चित्कारणांतरमवलोक्य समुत्पन्नक्रोधस्य
संयमनिधानस्य महामुनिर्मूलशरीरमत्यज्य सिंदूरपुंजप्रभो दीर्घत्वेन द्वादशयोजनप्रमाणः
सूच्यगुलसंख्येयभागो मूलविस्तारः नवयोजनाप्रविस्तारः काहलाकृतिपुरुषो वाम-
स्कन्धान्निर्गत्य वामप्रदक्षिणेन हृदयनिहितं विरुद्धं वस्तु भस्मसात्कृत्य तेनैव
संयमिना सह स च भस्मतां व्रजति, द्वीपायनवत् । असावशुभरूपस्तेजः समुद्घातः ।
लोकं व्याधिदुर्भिक्ष्यादिपीडितमवलोक्य समुत्पन्नक्रुपस्य परमसंयमनिधानस्य महर्षे-

संकाय पत्रिका-२

मूलसरीरमत्यज्य शुभ्राकृतिः, प्रागुक्तदेहप्रमाणः पुरुषो दक्षिणस्कंधान्निर्गत्य दक्षिणेन व्याधिदुर्भिक्षादिकं स्फेटयित्वा पुनरपि स्वस्थाने प्रविशति असौ शुभरूपस्तेजः समुद्घातः । समुत्पन्नपदपदार्थभ्रांते परमर्द्धिसंपन्नस्य महर्षेर्मूलशरीरमत्यज्य शुद्ध-स्फटिकाकृतिरेकहस्तप्रमाणः पुरुषो मस्तकमध्यान्निर्गत्य यत्र कुत्रचिदन्तर्मुहूर्तमध्ये केवलज्ञानिनं पश्यति तदर्शनाच्च स्वाश्रयस्य मुनेः पदपदार्थनिश्चयं समुत्पादयिष्यतः असावाहारसमुद्घातः । सप्तमः केवलानां दंडकपाटप्रतरपूरणस्वभावः सोऽयं केवलिसमुद्घातः । स एव निच्छयणयदो निश्चयनयापेक्षया, असंखदेसो वा असंख्याता लोकमात्रा वा शब्दोऽत्र स्फुटवाची इत्युक्तस्वदेहप्रमाणं प्रतिपादितः ।

जीवलक्षणं अनतानंतजीवास्ते च संसारावस्थाः भवंतीत्याह—

- 11) पुढविजलतेउवाऊवणफ्फदी विविहथावरे इंदी ।
विग तिग चडु पंचक्खा तसजीवा होंति संखादी ॥
- 12) समणा अमणा णेया पंचिदियणिम्मणा परे सव्वे ।
वायरसुहुमे इंदिय सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥ १ युग्मम्

पुढविजलतेउवाऊवणफ्फदी पृथिवीकायिकाः अपकायिकास्तेजकायिकाः वात-कायिकाः वनस्पतिकायिकाश्च । विविहथावरेइंदी एते विविधाः स्थावराः एकेंद्रियाः, एतेषां किं स्वरूपम्—

“अंडेसु पवड्हंता गब्भत्या माणुसा य मुच्छगया ।

जारिसया तारिसया जीवा एगेंदिया णेया ॥”

[पञ्चा० गा० ११३]

एतेषामनुक्ता अपि समारोप्य प्राणाः कथ्यन्ते । तदेकेन्द्रियस्य कति प्राणाः—स्पर्शनेन्द्रियप्राणः कायबलप्राण उश्वासनिश्वासप्राण आयुप्राणश्चेति चत्वारः । ते चैकेन्द्रियाः वादराः सूक्ष्माः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च । एतेषां लक्षणं कथ्यते, वाग्गोचराः स्थूलाश्चिर-स्थायिनो वादराः, अवाग्गोचराः सूक्ष्माः, प्रतिक्षणविनाशिनः सूक्ष्मसप्रतिघाता वादराः परैर्मूर्तद्रव्यैर्बाध्यमाना इत्यर्थः । अप्रतिघाताः सूक्ष्माः परैर्मूर्तद्रव्यैर्बाध्यमानाः । पर्याप्तापर्याप्तयोः स्वरूपमाह—आहारशरीरिन्द्रिय-आणव्याणभाषामनसां परिपूर्णत्वे सति गर्भान्निर्गमणं पर्याप्तस्य लक्षणम् । एतेषामपरिपूर्णत्वे सति गर्भाच्च्यवनं अपर्याप्तस्य-लक्षणम् । गर्भ इत्युपलक्षणमेतत् । नत्वेकेन्द्रिया ग्राह्याः । इयं गाथा लेखनीया । तत्रैकेन्द्रियस्य आहारशरीरस्पर्शनेन्द्रियाणप्राणाश्चत्वारः पर्याप्तयः । भाषामनसोरा-खणीयं (?) । पर्याप्तस्य षड्भिः परिपूर्णः । विगतिगचडुपंचक्खातसजीवा होंति संखादी ।

१. वादर ।

संकाय पत्रिका-२

द्वित्रिचतुपंचेन्द्रिया त्रससंज्ञाजीवाः शंखादयो ज्ञेयाः । अत्र द्वीन्द्रियाः शंखादयाः । तेषां कति प्राणाः । षट् प्राणाः, पूर्वोक्ताश्चत्वारो रसनभाषा द्वे, एते पर्याप्ता अपर्याप्ताः । अत्र पर्याप्तस्य आहारशरीरस्पर्शनेन्द्रियाणप्राणभाषाः पंच, मनसोऽभावः । अपर्याप्तस्य चत्वारः पर्याप्तयः भाषाया अभावः । त्रीन्द्रियाः कुंथुमत्कुणादयः, प्राणाः सप्त । पूर्वोक्ताः षट् प्राणाः घ्राणश्च । एते पर्याप्तापर्याप्ताः । अत्र पर्याप्तस्य पर्याप्तयः पंच मनसोऽभावः । अपर्याप्तस्य पूर्ववत् चत्वारः । चतुरिन्द्रियस्य प्राणाः अष्टौ, पूर्वोक्ताः सप्त चक्षुप्राणश्च । एते पर्याप्तापर्याप्ताः । अत्र पर्याप्तस्य पर्याप्तयः पंच । मनसोऽभावः । अपर्याप्तस्य पूर्ववच्चत्वारः । पंचेन्द्रियस्य तिर्यञ्चसंज्ञिनां प्राणा नव । पूर्वोक्ताष्टौ श्रोत्रप्राणश्च । एते-पर्याप्तापर्याप्ताः । अज्ञपर्याप्तस्य पर्याप्तयः पंच, मनसोऽभावः । अपर्याप्तस्य पूर्ववत् चत्वारः । पंचेन्द्रियस्य संज्ञिनः प्राणाः दश, पूर्वोक्ता नव मनोबलप्राणश्च । एते पर्याप्तापर्याप्ताश्च । पर्याप्तस्य पर्याप्तयः षट् । अपर्याप्तस्य पर्याप्तयश्चत्वारः । भाषामनसोऽभावः । ते च जीवाः समनस्का अमनस्काश्च भवन्तीत्याह—समणा अमणा णेया पंचिन्द्रिया समनस्का अमनस्काश्च भवति । तत्र तिर्यंचसमनस्का अमनस्काश्च । ये अमनस्कास्ते गोरखरादयो जालंधरमरुदेशादिषु देशेषु दृश्यन्ते । गिम्मणा परे सव्वे एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-निर्मनसः । ननु ते अमनस्कास्तदा कथ्यन्ते । तेषां पंचेन्द्रियाप्रवृत्तिर्यतो मनः पूर्वकेन्द्रियप्रवृत्तिरिति शास्त्रवचनम् । अत्रोत्तरमाह—सर्वेषामेव जीवानां स्वभावत एवाहारभयमैथुनपरिग्रहस्वरूपसंज्ञाचतुष्टयं विद्यत एव प्रतीतश्च दृश्यते । यथा वृक्षस्य जलसिचनाद् वृद्धिः । कुठारायुधपुरुषदर्शनात्कम्पः । वनिताचरणत्राटकनात्पुष्पनिर्गमो वृक्षमूलप्ररोहावष्टम्भनिधानग्रहणमिति । तस्मात्तेषां मनोव्यापाररहिता प्रवृत्तिः पुनः प्रोच्यते । तेषां सर्वथा मनसोऽभाव इति न, किन्तु शक्तिरूपत्वेन नास्ति । कुतः, पूर्वो-पाजितमतिज्ञानावरणकर्मादयवशात् । सर्वथा यदि मनसो अभावो भण्यते, तदा अन्य जन्मनि मनुष्यपर्याये गृहीते सति विमनस्कत्वमायाति । एवं सति सर्वज्ञवचनविरोधः स्यात् । यतः सुरतरनेरइया समनस्काः आगमे प्रतिपादिताः । तिर्यंचो विकल्पनीयाः । तस्मात् कर्मादयवशात् व्यवहारनयापेक्षया तेषाममनस्कत्वं न परमार्थतः, इति स्थिते च ।

मार्गणागुणस्थानैः संसारिणो ज्ञातव्याः, इत्याह—

13) मग्गणगुणठाणेहि य चउदसहि हवंति तह असुद्धणया ।

विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥

ते च जीवा चतुर्दशमार्गणाभिश्चतुर्दशगुणस्थानैश्च ज्ञातव्या भवन्ति । कथंभूताः संसारिणा । कदा असुद्धणया । असुद्धणयापेक्षया हु पुनः । सव्वे सुद्धा शुद्धनिश्चयनया-पेक्षया सर्वे जीवाः शुद्धाः । अनन्तचतुष्टयात्मका इत्यर्थः । मार्गणाः प्राह—

“गइ इंदियं च काए जोए वेए कसायणाणे य ।

संयमदंसणलेस्सा भविया सम्मत्तसण्णिआहारे ॥” (गो० जी० १४२) ।

संकाय पत्रिका-२

अत्र गत्यादिषु जीवा अन्विष्यन्ते । गइ देवगति मनुष्यनारक-तिर्यक्-सिद्धगतिश्चेति इंदिया एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियाः । अतीन्द्रियाः सिद्धा इत्यर्थः । काए—पृथ्वीकायकाः, अपकायकाः, तेजकायकाः, वातकायकाः, वनस्पतिकायकाः, त्रसकायकाः, अकायकाश्चेति^१ । जोए—सत्यमनयोगी । मृषामनयोगी । सत्यमृषामनयोगी । नसत्यमृषामनयोगी । सत्यवचोयोगी । असत्यवचोयोगी । सत्यमृषावचोयोगी, नसत्यमृषावचोयोगी । औदारिककाययोगी । औदारिकमिश्रकाययोगी । परमौदारिककाययोगी च । तत्रौदारिको मनुतिरश्चाम् । मिश्रौ अपर्याप्तानाम् । परसौदारिकः केवलिनाम् । वैक्रियककाययोगी । वैक्रियकमिश्रकाययोगी । तत्र वैक्रियको देवनारकाणां । मिश्रः अपर्याप्तानां । आहारककाययोगी आहारकमिश्रकाययोगी । तत्राहारककाययोगपरमर्द्धिमाहात्म्यषष्ठगुणस्थाने महर्षीणां भवति । यदा पदपदार्थसदेहः समुत्पद्यते तदा उत्तमाङ्गे पुत्तलको निर्गच्छति । यत्रस्य तीर्थकरदेवमन्तर्मुहुर्तमध्ये पश्यति । तत्प्रस्तावे यतेनिश्चयः समुत्पद्यते । पुनस्तत्रैव प्रवेशं करोति । मिश्रो पर्याप्तपद्मलेश्या । स्वपरपक्षरहितो निदानशोकभयरागद्वेषपरिवर्जितः शुक्ललेश्या इति । भवियः सिद्धयोग्याः जीवाः भव्याः, तद्विपरीता अभव्याः । भव्यत्वाभव्यत्वरहिताश्च । सम्मत्तं—आप्तप्रतिपादितेषु पदार्थेषु जिनाज्ञया शास्त्राकर्णानात् श्रद्धापर उपशमसम्यग्दृष्टिः । क्षायकसम्यग्दृष्टिः । क्षायोपशमसम्यग्दृष्टिः । सासादनसम्यग्दृष्टिः । सम्यग्मिथ्यादृष्टिः । मिथ्यादृष्टिश्चेति । तत्र सम्यक्त्वस्य किमुपादानं कृतं अत्रोच्यते । यथा आम्रवने मध्ये निबोऽपि तद्गृह्णन्ते गृह्यते, यतो मिथ्यात्वं त्रिधा मिथ्यात्वं-सासादन-सम्यग्मिथ्यात्वंभेदात् । को दृष्टान्तः । यथा यन्त्रमध्ये निक्षिप्ताः कोद्रवाः केचित्समस्ताः निर्गच्छति, केचिदद्धदलिताः, केचिच्चूर्णीभूताः । इति, एतदेव व्याख्येयम् । तत्रानन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वसासादनसम्यग्मिथ्यात्वसप्तानां प्रकृतीनामुपशमादौपशमिकसम्यग्दृष्टिः । अत्र सम्यक्त्वस्यावरणोपशमो न सम्यक्त्वस्य मूलकारणस्योपशमः । एतासां सप्तानां प्रकृतीनां क्षयात्क्षायिकसम्यग्दृष्टिः । अनन्तानुबन्धादीनां षण्णां उदयाभावात् क्षयः । सदवस्थोदयात्सम्यक्त्वप्रकृत्युदयाद्वेदकसम्यग्दृष्टिः । सम्यक्त्वात्पतितो मिथ्यात्वमद्यापि न प्राप्नोति अंतराले वर्त्तमानः सासादनसम्यग्दृष्टिः । सर्वे देवाः वन्दनीयाः न च निन्दनीयाः, इति मिश्रपरिणामः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः । आप्तागमपदार्थेषु विपरीताभिनिवेशो मिथ्यादृष्टिः । सण्णि मनोबलेन शिक्षालापग्राही संज्ञी, तद्विपरीत असंज्ञी । संज्ञासंज्ञत्वरहिताश्च । आहारो विग्रहगतिप्राप्ताः जीवाः समुद्घातकेवलिनश्च । अयोगिनः सिद्धाश्च अनाहाराः । शेषा आहारकाः जीवाः । एवं चतुर्दशमार्गणा व्याख्याताः ।

१. मुक्तजीव इत्यर्थः ।

संकाय पत्रिका-२

गुणठाणेहिय । चतुर्दशभिर्गुणस्थानैश्च जीवाः ज्ञातव्याः । तत्रासागमपदार्थानाम-
रुचयो मिथ्यादृष्टयः । सम्यक्त्वं परित्यज्य मिथ्यात्वमप्राप्तान्तराले वर्तमानाः सासादन-
सम्यग्दृष्टयः । सर्वे देवा वंदनीया न च निदनीयाः, सम्यग्मिथ्यादृष्टयः । प्राणेन्द्रियेष्व-
विरतास्तत्त्वश्रद्धापरा असंयताः सम्यग्दृष्टयः । त्रसवधाद्विरताः स्थावरवधात्
अविरताः संयतासंयतसम्यग्दृष्टयः । व्यक्ताव्यक्तविकथाकषायेन्द्रियनिद्राप्रणयप्रमाद-
वशा ते महाव्रतधारकाः प्रमत्तसंयताः । नष्टाशेषप्रमादाव्रतशीलगुणान्विता ध्यानोपयुक्ता
अप्रमत्तसंयताः । अतीतसमयस्थितपरिणामैः सर्वथा असदृशपरिणामाः मोहस्योपशम-
क्षपणोद्यताः अपूर्वकरणास्ते चोपशमकाः क्षपकाश्च । एकस्मिन् समये संस्थाना-
दिभिरेव परिणामैः परस्परं न व्यावर्तते, इत्यनिवृत्तयस्ते क्षयोपशमकाः क्षपकाश्च ।
पूर्वापूर्वस्यादकं यद्वेदकत्वं तस्मादनंतगुणहीनाः, सूक्ष्मलोभे स्थिताः, सूक्ष्मसांपराया-
स्ते चोपशमकाः क्षपकाश्च । कतकफलसंयोगादवस्थितपंकस्वच्छजलवदुपशान्ताशेष-
मोहा उपशान्तकषायाः वीतरागाः छद्मस्था इत्यर्थः । छद्म इति ज्ञानावरणदर्शनावरण-
स्यास्तित्वात् । स्फटिकमणिभाजनस्थितनिर्मलजलवत् क्षपितशेषमोहाः विशुद्ध-
परिणामाः क्षीणकषायाः वीतरागाः छद्मस्थाः । केवलज्ञानप्रकाशध्वस्ताज्ञानांधकारः,
नवकेवललब्धिसमन्वितः । द्रव्यमनोवाक्काययोगसहायाद्दर्शनज्ञाने युगपज्जातकाः सयोग-
केवलिनः । लब्धयः—

“दाणे लाहे भोए उवभोए वीरियसम्मत्ते ।

दंसणणाणचरित्ते एदे णव जीवसत्त्वावा ॥”

चतुरसीतिलक्षणगुणाधिपतयः निरुद्धा अशेषयोगास्त्रवा अयोगिकेवलिनः । एतानि
चतुर्दशगुणस्थानानि ।

ते च जीवाः सकलकर्मक्षयात्सिद्धा भवन्तीत्याह—

14) णिवक्कम्मा अट्टगुणा किंचूणा चरमवेहदो सिद्धा ।

लोयागगठिदा णिच्चा उप्पादवएहि संजुत्ता ॥

ते च पूर्वोक्ताः जीवाः सिद्धाः भवन्ति कथंभूता संतः, णिवक्कम्मा ज्ञानावरणीय-
दर्शनावरणीयवेदनीयमोहनीयआयुर्नामगोत्रांतराया इत्यष्टकर्मरहिताः । अट्टगुणा—

“सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहमं तहेव अवगहणं ।

अगुरुलहुमव्वावाहं अट्टगुणा हुंति सिद्धाणं ॥”

अत्रानंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वसंज्ञानां सप्त-
प्रकृतीनां क्षयः क्षायिकं सम्यक्त्वम् । अशेषविशेषतः सकलपदार्थेषु रुचि इत्यर्थः ।
तस्माच्च ये उत्पन्नाः दर्शनज्ञानमूलभूताः परमानन्दस्वरूपसंवेदका आत्मपरिणामास्ते
एव सम्यक्त्वम् । एतदेवानंतसुखमुच्यते । युगपत्सकलपदार्थज्ञातृत्वं ज्ञानम् । युगपदशेष-
पदार्थावलोकनं दर्शनं उक्तानामनंतसुखादीनां सप्तानां गुणानां निरवधिकालनिरवधि-

संकाय पत्रिका—२

मर्यादिकृत्य एकसमयांतरमपि न कदाचिदन्यथाभावो वीर्यम् । केवलज्ञानी एव यदमूर्त्तसिद्धस्वरूपं परिचेत्तुं शक्नोति नान्यः । सूक्ष्मत्वम् एकस्मिन्सिद्धस्वरूपे असंख्यातानां सिद्धानामेकत्रसमवस्थितानामवकाशोऽवगाहनम् । नैव गुह्यत्वं नैव लघुत्वमगुह्यलघुत्वम् । असंख्यातानां सिद्धानामेकत्रसमवस्थितानां परस्परसंघर्षणाभावोऽव्याबाधम् चेति । एवमष्टगुणसमन्विताः । किञ्चूणा चरमदेहदो चरमदेहतः किञ्चूनत्रिभागेन हीनाः, लोयग्गठिदा लोकाग्रस्थिताः, णिच्चा नित्याः तेषां काले कल्प इति गतेऽपि गतिप्रच्युतिर्नास्ति । तथा उप्पादवएहि संजुता उत्पादव्ययाभ्यां युक्तास्तौ द्वौ चोत्पादव्याववागोचरौ सूक्ष्मौ, प्रतिक्षणविनाशिनौ । उक्तं च—

“सूक्ष्मद्रव्यादिभित्नाश्च व्यावृताश्च परस्परम् ।

उत्पद्यन्ते विपद्यन्ते जलकल्लोलवज्जले ॥”

इदानीं जीवद्रव्यं व्याख्याय अजीवद्रव्यपंचप्रकारं स्वरूपमाह—

15) अज्जीओ पुण णेओ पुग्गलधम्मो अधम्म आयासो ।

कालो पुग्गल मुत्तो रूढादिगुणो अमुत्ति सेसा दु ॥’

पुद्गलमूर्तः रूपादिगुणः, शेषाः पुनरमूर्ताः । अत्र व्याख्यानं पूर्वमेव कृतम् ।

तस्य पुद्गलस्य किं स्वरूपं पर्याया इत्याह—

16) सहो बंधो सुहुमो थूलो संठाणभेदतमछाया ।

उज्जोदादवसहिया पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥

पुग्गलदव्वस्स पज्जाया एते पुद्गलद्रव्यस्य पर्यायाः, के ते आत्मनः परिस्पन्दान्नानाप्रकाराणुसंघटनात्तल्लोषपुटव्यापारेण करचरणकाष्ठपाषाणादिपरस्परं संघर्षणे च निष्पद्यते शब्दः । बंधो स्निग्धं परमाणुद्वयेन सह रूक्षपरमाणूनां चतुर्णां संश्लेषः एकेन स्निग्धेन सह त्रयाणां रूक्षाणां संश्लेषः, स्निग्धपरमाणुत्रयेण सह पंचानां रूक्षाणां संश्लेष इति, बंधमुपलक्षणमेतत्, सुहुमो परमाणुः सूक्ष्मः, थूलो, स्कन्धरूपत्वस्थूलः, संठाणभेद, समचतुरस्रसंस्थानं न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानं, स्वातिसंस्थानं वामलूराकृतिरित्यर्थः, वामनसंस्थानं, हुंडकसंस्थानं चर्मकरदृतिरिव प्रकृतिरित्यर्थः । कुब्जकसंस्थानमिति, तम अंधकारः, छाया वृक्षादिभवा, उज्जोदा ताराचंद्रमणिमाणिक्यादिभवा । आदव आतपोऽग्निसूर्यभवः ।

जीवपुद्गलयोर्धर्मगतिसहकारी भवतीत्याह—

17) गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी ।

तोयं जह मच्छाणं अच्छंताणेव सो णेई ॥

गइ सहयारी, गति सहकारी भवति कोऽसौ, धम्मो, धर्मद्रव्यं, केषां, पुद्गलजीवानां, कथंभूतानां, गइपरिणयाण गतिकर्मोदयाच्चतुर्गतिपरिणतानाम्, अत्राह— यदि तस्य गतिसहकारित्वे तादृशी शक्तिरस्ति तदा स्थिति कुर्वतस्तेषां किन्तु नान-

१. अज्जीवो । आयासं ।

संकाय पत्रिका-२

यति कुतो अथ, अच्छंताणेव सो णेइ, धर्मस्तेषां अच्छंतां तान् जीवपुद्गलान् स्थिति कुर्वतां न नयति, कुतो अधर्मद्रव्योदयात्, अस्यैवार्थस्य समनार्थमुपमानमाह, तोयं जह मच्छाणं, यथा तोयं पानोयं मत्स्यानां सहकारित्वे भवति स तान्मत्स्यान् स्थिति- कुर्वतो न नयति, एवं धर्मः ।

पुद्गलजीवान्मपि स्थितिकारित्वेऽधर्मो भवतीत्याह—

18) ठाणजुयाण अहम्मो पुग्गलजीवाण ठाण सहयारी ।

छाया जह पहियाणं गच्छंता णेव सो धरई ॥^१

ठाण सहयारी स्थितिः सहकारी भवति कोऽसौ, अहम्मो, अधर्मः, केषां, पुग्गलजीवाण, पुद्गलजीवानां, कथंभूतानां, ठाणजुयाण स्थितिकर्मोदयात् स्थिति कुर्वतां, अत्राह, यदि तस्य स्थितिकारित्वे तादृशी शक्तिरस्ति, तदा गच्छंतास्तान् किन्न स्थितं कारयति, अत्रोच्यते—गच्छंताणेव सो धरई, स अधर्मो गच्छंतान् नैव धरति तान् जीवपुद्गलानां गच्छंतान् नैव स्थिति कारयति, कुतो धर्मद्रव्योदयात्, अस्यै- वार्थस्य समनार्थमुपमानमाह छाया जह पहियाणं, यथा छाया पथिकान् स्थिति सहकारित्वे भवति सति तान् पथिकान् गच्छतोऽपि न स्थिति कारयति एवमधर्मः पुद्गलजीवानामपि ।

इदानीं पंचानामपि द्रव्याणामवकाशदाने आकाशद्रव्यं भवतीत्याह—

19) अवगासदानजोग्गं जीवाईणं वियाण आयासं ।

जोण्हं लोगागासं अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥^२

वियाण विशेषेण जानीहि त्वं हे भव्य ! किं तत् । आयासं आकाशं कथं- भूतम् । अवगासदानजोग्गं अवकाशदानयोग्यं, केषां जीवाईणं जीवादीनां पंचानामपि तदाकाशं, जोण्हं जैनमते, दुविहं द्विप्रकारं कथं लोगागासं अलोगागासमिदि लोका- काशमलोकाकाशमिति, तदेवाकाशद्रव्यम् ।

लोकालोकप्रकारेण द्विप्रकारं भवतीत्याह—

20) धम्माधम्माकालो पुग्गलजीवा य संति जावदिए ।

आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥

सो लोगो सः लोको भवति, सः कः, जावदिए आयासे संति, यावत्परिमाणे आकाशे संति विद्यन्ते के ते, धम्माधम्माकालो धर्माधर्मकालाः । न केवऽमते पुग्गल- जीवा य पुद्गलजीवाश्च, तत्तो परदो अलोगुत्तो, तस्मात् परो अलोक उक्तः ।

१. ठाणजुदाण, अधम्मो, ।

२. जीवादीणं, जेण्हं, ।

इदानीं कालस्वरूपमाह—

21) दव्वपरिवट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारा ।

परिणामादीलक्खो वट्टणलक्खो हु परमट्टो ॥

पुद्गलकर्माणुद्रव्यप्रच्यवनात् उत्पन्नः समयरूपः, मुख्यकालस्य पर्यायाख्यः क्षणध्वंशीव्यवहारकालः; परिणामादीलक्खो, स च व्यवहारकालः परिणामैर्लक्ष्यते नवजीर्णरूपैः । वट्टणलक्खो हु परमट्टो, द्रव्याणि वर्त्तनां याति स्वपरिणतिं नयति, तदेव लक्षणस्य स वर्त्तनालक्षणः हु पुनः परमट्टो परमार्थकालः, अयं उक्तो ज्ञायते, कालः, इति लोकवचनात् । स च नित्योऽन्यथा कथं द्रव्यवत्ता ।

तस्य निश्चयकालस्य किं स्वरूपमित्याह—

22) लोयायासपएसे एककेक्के जेट्टिया हु एककेक्को ।

रयणाणं रासीमिव ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥^१

ते कालाणू असंखदव्वाणि, ते कालाणवोऽसंख्यातद्रव्याणि ज्ञातव्याः । ते के जे ठिया ये स्थिताः हु स्फुटं क्व लोयायासपएसे लोकाकाशप्रदेशे कथं स्थिताः । एककेक्के एकैके एकस्मिन्नाकाशप्रदेशे एकैकपरिपाट्या, अयमर्थः लोकाकाशस्य यावन्तः प्रदेशास्तावन्तः कालाणवो, निष्क्रिया, एकैकाकाशप्रदेशेन एकैकावृत्यालोकं व्याप्य स्थिताः रूपादिगुणविरहिता अमूर्त्ताः । कथं लोकव्याप्यस्थिताः रयणाणं रासीमिव, यथा रत्नानां राशयः संघाततारारामेकं (?) व्याप्य तिष्ठति तथा ते तिष्ठन्ति ।

एतानि षड् द्रव्याणि कालरहितानि पञ्चास्तिकायाः भवन्तीत्याह—

23) एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं ।

उत्तं कालविजुत्तं णादव्वा अत्थिकाया दु ॥

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण उत्तं प्रदिपादितम्, किं तत् दव्वं द्रव्यं इदं प्रत्यक्षीभूतं, कतिभेदं, छब्भेयं, षड्भेदं, कस्मात् जीवाजीवप्पभेददो, जीवाजीवप्रभेदतः । काल-विजुत्तं णादव्वा अत्थिकाया दु, एतानि षड्द्रव्याणि कालरहितानि पञ्चास्तिकायाः ज्ञातव्याः दु पुनः ।

एतेषां पञ्चास्तिकायानामस्तिकायत्वं कथं सिद्धमित्याह—

24) संति जदो ते णिच्चं अत्थि ति भणति जिणवरा जम्हा ।

काया इव बहुदेसा तम्हा काया य अत्थिकाया य ॥^२

१. पदेसे ।

२. तेणेदे—द्र० सं० वृ० ।

सन्ति जदो ते णिच्चं, ते पञ्चापि यतः यस्मात् कारणात् नित्यं सन्ति विद्यन्ते, स्वरूपेण । अत्थि त्ति भणंति जिणवरा तस्मात् कारणात् विद्यन्ते इति जिनवराः वदन्ति । अत्रास्तित्वं साधितम् । जम्हा बहुदेसा, यस्माद्बहुप्रदेशास्ते काया इव शरीराणीव, अत्र कायित्वं साधितम् । तम्हा काया य तस्मात् कायाश्चेति । एवं मिलित्वा अत्थिकाया य, अस्तिकायाञ्च भण्यन्ते ।

अत्रपूर्वपक्षः—ननु कायशब्दः शरीरे व्युत्पादितः, जीवादीनां कथमत्रोच्यते । तेषामुपचारात् अध्यारोप्यते । कुतः उपचारः । यथा शरीरं पुद्गलद्रव्यं प्रचयात्मकं तथा जीवादिष्वपि प्रदेशप्रचयापेक्षया इव काया इति ।

कालस्याकायत्वं कथमित्याह—

25) होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे अणंत आयासे ।

मुत्ते तिविह पएसा कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥^१

होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे पदेसा भवन्ति असंख्याताः प्रदेशाः जीवधर्माधर्मणाम् । अणंत आयासे अनन्तप्रदेशा आकाशस्य । मुत्ते तिविह पएसा मूर्ते पुद्गले त्रिविधाः प्रदेशाः संख्याता असंख्याता अनन्ताश्च, कालस्यैकः प्रदेशः, परमाणूणां रत्नराशिवद्विस्थितत्वात्, ण तेण सो काओ, तेन कारणेन सः कालः काय संज्ञा न लभते ।

अत्रपूर्वपक्षः । ननु पुद्गलपरमाणुरप्येकप्रदेशो, तस्यापि कायत्वानुपपत्तेः । अस्य निराकरणार्थमिदमाह—

26) एयपदेसो वि अणुणाणाखंधप्पदेसदो होदि ।

बहुदेसो उवयारा तेण य काओ भणंति सव्वण्हू ॥

णाणाखंधप्पदेसदो वि अणु होदि बहुदेसो उवयारा—नानापुद्गलस्कन्धरूपस्यैकप्रदेशोऽपि अणु बहुप्रदेशोऽपि भवति, कुत उपचारात्, यतस्तस्य पुद्गलस्य परमाणोः पुनरपि स्कन्धरूपत्वे परिणतिरस्ति, कालाणोः पुनः परिणतिर्नास्ति स्कन्धरूपत्वेन, यतो रत्नानां राशय इव ते स्थितास्तस्मात्, तेण य काओ भणंति सव्वण्हू तेन कारणेन च कायत्वं वदन्ति पुद्गलपरमाणोस्तत्त्वज्ञाः ।

इदानीं प्रदेशलक्षणमाह—

27) जावदियं आयासं अविभागी पुग्गलाणुवट्टद्धं ।

तं खु पदेसं जाणे सव्वानुट्टाणवाणरिहं ॥

१. पदेसा ।

तं खु पवेसं जाणे तं खु स्फुटं प्रदेशं जानामि अहम्, तं कं जावदियं आयासं यावत्प्रमाणमाकाशं किं विशिष्टम्, अविभागी पुग्गलाणुवट्टुद्धं—अविभागीकृत पुद्गल-द्रव्यस्थानदानयोग्यम् । अत्र पूर्वपक्षः—ननु अविभागीकृतपुद्गलद्रव्येण यावदवष्टब्धं रुद्धमाकाशं तत्प्रदेशमुक्तम् । कथं तावत्प्रदेशे सर्वपदार्थानामवगाहना । अत्रोच्यते, आकाशस्यार्थेवगाहनालक्षणत्वात्तादृशी शक्तिरस्ति, एकस्मिन् प्रदेशे जीवादीनां पञ्चानामपि समवायः समाहितं तथापि तस्य तत्परिणामित्वम् । अयमत्र दृष्टान्तः यथा गुह्यनागनिष्क्रमध्ये सुवर्णलक्षेऽपि प्रविष्टे नागस्य तन्मात्रता, तथाकाशप्रदेशस्याप्यवगाहने तादृशी शक्तिरस्ति ।

इदानीं जीवानां पुद्गलसम्बन्धे सति परिणामविशेषसंभवात् पदार्थानाह—

28) आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खो सपुण्णपावा जे ।

जीवाजीवविसेसा ते वि समासेण पभणामि ॥^१

ते वि समासेण पभणामि—तेऽपि संक्षेपेण प्रभणामि, ते के जे ये आसव-बंधणसंवरणिज्जरमोक्खो सपुण्णपावा जे—आस्रवबंधसंवरनिर्जरा मोक्षाः सपुण्य-पापाः कथंभूताः, एते जीवाजीवविसेसा अत्र जीवपुद्गलयोर्विशेषाः । यतो जीवस्य पुद्गलसंबन्धादशुभपरिणामाः तस्मात् पापम्, पापादास्रवस्तस्मात्कर्मबन्धः । कर्म-बन्धनिराकरणाय संवर-निर्जरा, संवरनिर्जराभ्यां पुण्यम्, पुण्यात् शुभपरिणतिः, शुभ-परिणतेः कर्मक्षयः, कर्मक्षयान्मोक्षः य इति । तत्र शुभाशुभकर्मागमद्वाररूप आस्रवः । आत्मकर्मणोरन्योन्यप्रवेशात् प्रदेशात्मको बन्धः । आस्रवनिरोधो संवरः, एकदेश-कर्मक्षयलक्षणा निर्जरा, सकलकर्मक्षयलक्षणो मोक्षः । अव्रतपरित्यागलक्षणं पुण्यम् । मिथ्यात्वप्रवर्त्तनलक्षणं पापम् ।

इदानीं आस्रवस्वरूपमाह—

29) आसवदि जेण कम्मं परिणामेणप्पणो स विण्णेओ ।

भावासओ जिणुत्तो दव्वासवणं परो होदि ॥

स विण्णेओ भावासओ जिणुत्तो—स विज्ञेयो भावासवो जिनोक्तः, कः संबन्धी, अप्पणो आत्मनः स कः । आसवदि जेण कम्मं परिणामेण—आस्रवति कर्म येन परिणामेण । दव्वासवणं परो होदि सः भावासवो द्रव्यास्रवणे हेतुर्भवति, परिणामेण शुभाशुभरूपेण यदुपार्जितशुभाशुभरूपस्रवः, स एव ज्ञानावरणादिस्वरूपेण परिणत एव द्रव्यास्रवो भवतीत्यर्थः ।

१. पभणामो, द्र० सं० वृ० ।

संकाय पत्रिका-२

इतद्वयोर्मध्ये भावास्त्रवस्वरूपमाह—

30) मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोहादयो स विण्णेया ।

पण पण पणदस तिय चदु कमसो भेदादु पुव्वस्स ॥

स विण्णेया सम्यक्प्रकारेण विज्ञेयाः, के ते भेदाः, कस्य, पुव्वस्स पूर्वस्य, भावास्त्रवस्य इत्यर्थः, किं नामानो भेदाः, मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोहादयो—मिथ्या-त्वाविरतिप्रमादयोगक्रोधादयः कुतः पण पण पणदस तिय चदु भेदा दु—पंच पंच पंचदश त्रय चत्वारो भेदात् । तत्र मिथ्यात्वं पंचप्रकारं, 'सर्व्वं क्षणिकम्', इत्येकान्तदर्शी बौद्धाः । 'सर्व्वं खल्विदं ब्रह्म' इत्येकान्तदर्शी ब्रह्माद्वैतवादी । विनयादेव मोक्ष इत्येकान्तदर्शी शैवाः । 'जिनस्य भोजनं कुर्वतः साभरणे मोक्षः, स्त्रीनिर्वाणं च' इत्येकान्तदर्शी श्वेतपटः । विकल्पसंकल्पकारकात् यथा ज्ञानात्मको मोक्षस्तथाज्ञानादेव इति मस्करपूर्णः, श्रीपाशर्वनाथशिष्योऽप्येकान्तदर्शी । अविरति पंचप्रकारी हिंसा । १। असत्यं । २। चौर्यम् । ३। मैथुनसेवा । ४। परिग्रहस्वीकाररूपाः । ५। प्रमादाः पंचदश-प्रकाराः, स्त्रीभक्तराजचौरकथाश्च त्वारः । क्रोधमानमायालोभाश्च त्वारः । इन्द्रिय-प्रवृत्तयः पंच । निद्रा स्नेहश्च । योगास्त्रिप्रकारः अशुभमनोवाक्कायरूपाः । क्रोधश्चतुः प्रकारः स च प्रमादमध्ये पतितो दृष्टव्याः ।

इदानीं द्रव्यास्त्रवस्य द्वितीयस्वरूपमाह—

31) णाणावरणादीणं जोगं जं पुग्गलं समासवदि ।

दव्वासओ स णेओ अणेयभेओ जिणक्खादो ॥^१

दव्वासओ स णेओ द्रव्यास्त्रवः सः ज्ञेयः, कतिभेदाः अणेयभेदाः, केन कथितः, जिणक्खादो जिनेन प्रतिपादितः स कः, जोगं जं पुग्गलं समासवदि—योग्यं यत्पुद्गलं समास्त्रवति, केषां योग्यं, णाणावरणादीणं—ज्ञानावरणादीनां, कर्मणामष्टानां, अष्टभावास्त्रवो हि द्रव्यास्त्रवस्य हेतुः ।

इदानीं भावबन्धद्रव्यबंधयोः स्वरूपमाह—

32) बज्झदि कम्मं जेण दु चेदणभावेण भावबंधो सो ।

कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो ॥

भावबंधो सो स भावबंधो भवति, स कः, जेण दु चेदणभावेण येन पुनश्च-तन्यभावेन, बज्झदि कम्मं, बध्यते कर्म, इदरो इतरः द्रव्यबंधः, स कथंभूतः,

१. दव्वासवो ।

संकाय पत्रिका-२

कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं, कर्मात्मप्रदेशानां परस्परप्रवेशनं, स च बंधश्चतु-
बिधो भवति ।

33) पयडिट्ठिदि अणुभागपदेशभेदाद्दु चदुविधो बंधो ।

जोगापयडिपदेसा ठिदि अणुभागा कसायदो हुंति ॥^१

चदुविधो बंधो चतुर्विधो बंधो भवति, कस्मात् स, पयडिट्ठिदिअणुभागपदेस-
भेदाद्दु प्रकृतिस्थितिअनुभागप्रदेशभेदात् । स कस्य, कस्मात् बंध इति । जोगा पयडि-
पदेसा अत्राशुभमनोवचनकायेभ्यः, प्रकृतिप्रदेशबंधौ भवतः । ठिदिअणुभागाकसायदो
होति स्थिति-अनुभागबंधौ कषायतो भवतः । तत्र ज्ञानावरणादिकर्मप्रकृतीनां बंधः ।
मिथ्यात्वासंयमकषाययोगवशात् कर्मत्वमुपगतानां ज्ञानावरणादिकर्मप्रदेशानां यावत्
कालेनान्यस्वरूपेण परिणतिं जाति^२ कालस्तस्य कालस्य स्थितिरिति संख्या, तत्र ज्ञाना-
वरणदर्शनावरणवेदनीयांतरायाणामुत्कृष्टस्थितिः । सागरोपमानां त्रिंशत्कोटीकोट्यः ।
मोहनीयस्य सप्ततिकोटीकोट्यः, नामगोत्रयोर्विंशतिकोट्यः । आयुष्कस्त्रयस्त्रिसत्सागरोपमा,
जघन्यस्थतिर्वेदनीयस्य द्वादशमुहूर्त्ताः, नामगोत्रयोरष्टौ । शेषाणामंतमुहूर्त्ताः, एतेषां-
स्थितिबंधः । अणुभागः कर्मणां रसशक्तिर्वा अनुभागस्तस्य भागोऽनुभागबन्धः । प्रदेश-
तोनुकर्मानुबन्धः कर्मप्रदेशास्तच्चैकस्मिन्जीवप्रदेशेऽनंतानंतास्तिष्ठति । तेषां बंधः
प्रदेशबंधः ।

इदानीं संवरस्य भेदद्वयमाह—

34) चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेद्दु ।

सो भावसंवरो खलु दब्बासवरोहणे अण्णो ॥

सो भावसंवरो खलु स भावसंवरो भवति, खलु स्फुटं स कः, चेदणपरिणामो
यश्चैतन्यपरिणामः स्वस्वरूपपरिणतिः किं विशिष्टः । जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेद्दु
समागच्छतः कर्मणः आस्रवनिरोधहेतुः, स एव चैतन्यपरिणामः; दब्बासवरोहणे अण्णो
द्रव्यास्रवरोधनेऽन्यो द्वितीयः ।

तस्यैव निरोधने विशेषमाह—

35) वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपेहापरोसहजओ य ।

चारित्तं बहुभेया णादब्बा दब्बसंवरविसेसा ॥^३

१. होति, द्र० सं० वृ० ।

२. याति ।

३. णायब्बा, भावसंवर विसेसा ।

णादब्बा दब्बसंवरविसेसा द्रव्यसंवरविशेषा ज्ञातव्याः, कतिसंख्योपेताः, बहुभेया बहुभेदाः के ते इत्याह—वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपेहा परीसहजओ य चारित्तं च तपः समितिगुप्तिः धर्मानुप्रेक्षापरीषहजयश्चारित्रं च । तत्र तपो द्वादशप्रकारं बाह्याभ्यंतर-भेदात्, अनशनं, अवमौदर्यं, वृत्तिपरिसंख्यानं, रसपरित्यागः, विविक्तशय्यासनं कायक्लेशो बाह्यं तपः षड्विधम्, प्रायश्चित्तं विनयं वैयावृत्यं स्वाध्यायः व्युत्सर्गं ध्यानं चाभ्यंतरतपः षड्विधं, समितयः पंचप्रकाराः ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण व्युत्सर्गश्चेति । गुप्तयस्त्रिप्रकाराः मनोवचनकायरूपाः । धर्मो दशप्रकाराः उत्तमक्षमा-मार्हवाज्ज्वसत्यशौचसंयमस्तपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्माः, अनुप्रेक्षा द्वादशप्रकारा ज्ञातव्याः । अनित्य-अशरण-संसार-एकत्व-अन्यत्व-अशुचित्व-आस्रव-संवर-निज्जरा-लोक-बोधिदुर्लभ-धर्मश्चेति । परीषहजयः द्वाविंशतिप्रकाराः, क्षुधापिपासा-शीत-उष्ण-दंशम-शक-नाग्न्य-अरति-स्त्री-चर्या-निषद्या-शय्या-आक्रोश-वध-याचना-अलाभ-रोग-तृणस्पर्शमल-सत्कारपुरस्कार-प्रज्ञा-अज्ञान-अदर्शनानि, चारित्रत्रयोदशप्रकारं हिंसाऽनृतस्तेया-ब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिः पंचप्रकाराः, समतास्तुतिवंदनाप्रतिक्रमणस्वाध्यायप्रत्या-ख्यानानि षट्, असही निसही चेति चारित्रम् ।

साम्प्रतं निर्जराभेदद्वयमाह—

36) जह कालेण तवेण य भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण ।

भावेण सडदि णेया तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥

जेण भावेण सडदि येन परिणामेण सडति गलति, किं तत्, कम्मपुग्गलं कर्मरूपं पुद्गलं, कथंभूतं, भुत्तरसं भुत्तो रसः शक्तिर्यस्य तद्भुत्तरसं केन कृत्वा, जह कालेण तवेण य, यथा कालेन सविपाकरूपेण तपसा च, हठादविपाकरूपेण इत्येवं द्विविधा-निर्जरा ज्ञातव्या । तस्सडणं च, तत्कर्मणो गलनं च एषा द्रव्यनिर्जरा इति द्विप्रकारा ज्ञातव्या ।

इदानीं मोक्षस्वरूपमाह—

37) सव्वस्स कम्मणो जो खयहेद्दु अप्पणो हु परिणामो ।

णेओ स भावमुक्खो दब्बविमुक्खो य कम्मपुहभावो ॥'

णेओ स भावमुक्खो स भावमोक्षो ज्ञेयः । परिणाममोक्षः, सः कः, जो अप्पणो हु परिणामो आत्मनश्चारित्रावरणीयक्षयात् यः समुत्पद्यते निमलपरिणामः, स भाव-

१. णेयो ।

संकाय पत्रिका-२

मोक्ष इति । दव्वविमुक्खो कम्मपुहभावो द्रव्यमोक्षस्य, पुनः कर्मभावसकाशादात्मनः पृथग्भावः शुद्धचैतन्यरूपावस्थितिरित्यर्थः ।

इदानीं पुण्यपापस्वरूपमाह—

38) सुहअसुहभावजुत्ता पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा ।

सादं सुहाउ णामं गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥

पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा पुण्यं पापं चानुभवति, खलु स्फुटं, के ते जीवाः, कथंभूतः संतः सुह-असुहभावजुत्ता शुभाशुभपरिणामयुक्ताः शुभपरिणामात्पुण्यं अशुभपरिणामात्पापमनुभवति । पुण्यस्य कानिचित्कारणानीत्याह । सादं सुहाउणामं गोदं सातावेदनीयं शुभायुनामिगोत्रम्, एतैर्विह्वैर्युक्तं पुण्यम् । पापस्य कानि पराणि पावं च, असाताशुभायुनामिगोत्राणि पापं च स्फुटम् ।

सम्प्रति पूर्वोक्तस्य मोक्षस्य कारणमाह—

9) सम्मदंसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं हवदि ।

ववहारा णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा ॥^१

हवदि भवति, किं तत् कारणं हेतुः कस्य, मोक्षस्य कारणं, सम्मदंसणणाणं चरणं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्यम्, कदा ववहारा व्यवहारनयापेक्षया, णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा निश्चयनयापेक्षया तत्त्रियात्मको निजात्मा दर्शन-ज्ञान-चरित्रस्वरूपो यदेव रत्नत्रयम् स एवात्मा तदेव रत्नत्रयमित्यर्थः ।

अयमर्थं दृढयन्नाह—

40) रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाण मुइत्तु अण्णदवियम्मिह ।

तम्हा तत्तियमइओ हवदि हु मोक्खस्स कारणं आदा ॥^१

तम्हा तत्तियमइओ हवदि हु मोक्खस्स कारणं आदा तस्मात् तत्त्रियात्मको दर्शनज्ञानचारित्र्यरूपो भवति, हि स्फुटं मोक्षस्य हेतुरात्मा, तस्मात् कस्माद्यस्मात्, रयणत्तयं ण वट्टइ, रत्नत्रयं न वर्तते, क, अण्णदवियम्मिह, अन्यस्मिन्शरीरादिद्रव्ये किं कृत्वा, अप्पाण मुइत्तु आत्मानं मुक्त्वा त्यक्त्वा आत्मनो रत्नत्रयं वर्तते न परद्रव्ये ।

रत्नत्रयस्वरूपमाह—

41) जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं ख्वमप्पणो तं तु ।

दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्मिह ॥

१. होदि, मुक्खस्स ।

संकाय पत्रिका-२

सम्मत्तं सम्यक्त्वं भवति, किं तत्, जीवादीसद्गृहणं जीवादीनां श्रद्धानश्चिः, रूढमप्पणो तं तु तत् सम्यक्त्वं पुनरात्मनो रूपं नान्यस्य । णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि—स्वपरपरिच्छेदकं ज्ञानं नियमेन भवति यस्मिन्सम्यक्त्वे सति, किं विशिष्टं ज्ञानं, दुरभिणिवेसविमुक्कं, संशयविमोहविभ्रमविवर्जितं दर्शने सति यज्ज्ञानमुत्पद्यते ।

तत्कथंभूतमित्याह—

42) संसय-विमोह विब्भम-विवज्जियं अप्परसरूवस्स ।

गहणं सम्मण्णाणं सायारमण्येभ्यं तु ॥

सम्मण्णाणं सम्यग्ज्ञानं भवति, किं तत् गहणं ग्रहणम् कस्य अप्परसरूवस्स आत्मनः स्वरूपस्य परवस्तुनः स्वरूपस्य, कथंभूतं ग्रहणम्, संसयविमोहविब्भम-विवज्जियं, संशयः हरिहरादिज्ञानं प्रमाणं जैनं वा, विमोह अनध्यवसायो गच्छत्तृण-स्पर्शपरिज्ञानं, विभ्रमः शुक्तिकारजतशकलं यद्विज्ञानमिति । तद् ग्रहणं किं विशिष्टम्, सायारमण्येभ्यं तु, साकारं सविकल्पं अवग्रहेहावायधारणारूपकमनेकभेदम् च ।

मत्यादिभेदादर्शनज्ञानयोः को भेद इत्याह—

43) जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्ठुमायारं ।

अविसेसऊण अट्ठे दंसणमिदि भण्णए समए ॥'

दंसणमिदि भण्णये समए तद्दर्शनमितिहेतोर्भण्यते, क्व समये जिनागमे, तत्किं, जं सामण्णं गहणं, यत् सामान्यग्रहणं वस्तुसत्तावलोकनं करोति, केषां भावाणं पदार्थानां किं त्यक्त्वा, अविसेसऊण अट्ठे—अविशेष्यार्थान् भेदमकृत्वा इदं कृष्णमिदं नीलमित्यादिपरिच्छिन्ति । अत्राह परा ननु दर्शनं तावत्स्वभावभासकं ज्ञानं च परार्था-वभासकं भिन्नानां भावानां सामान्यग्रहणमिति, दर्शनस्य कथं घटते, यतस्तदवलोकने-ज्ञानस्य प्रयोजनम् अत्र निराकरणार्थमिदमाह, णेव कट्ठुमायारं यतो दर्शनम्, प्रथमसमये नैव कर्तुं शक्नोति, भेदमित्यभूतमिति, जलस्नानोत्थितपुरुषसम्मुखवस्त्वव-लोकनवत् । अतो दर्शनं भण्यते किंचिदन्ये तत्प्रयोजनं ज्ञानस्य न पुनः वस्तुसंज्ञाव-लोकनं, तस्मात्स्वपरावभासकं दर्शनं किन्तु निर्विकल्पं ज्ञानं पुनः स्वपरावभासकं यतः अवग्रहेहावायधारणा अग्रे समुत्पद्यन्ते ।

इदानीं दर्शनपूर्वकं ज्ञानमाह—

44) दंसणपुव्वं णाणं छदमत्थाणं ण दोण्णि उवओगा ।

जुगवं जम्हा केवलिणाहे जुगवं तु ते दो वि ॥

१. अविसेसऊण ।

संकाय पत्रिका-२

दंसणपुव्वं णाणं दर्शनपूर्वकं विषयविषयिणोः सन्निपातो दर्शनं तदनन्तरमर्थग्रहणं किंचिदिति ज्ञानं यथा बीजांकुरौ । केषां, छदमत्थाणं—छदमस्थानां किंचिद्दर्शनज्ञाना-
वरणीययुक्तानां, तेषां च ण दोण्णि उवओगा जुगवं जम्हा दर्शनज्ञानोपयोगद्वयं
युगपत् यस्मान्न तेषां अतो दर्शनपूर्वकं ज्ञानं बीजांकुरवत् । केवल्लिनाहे तु केवलज्ञान-
युक्ते पुनः जुगवं तु ते दो वि युगपत्तौ द्वौ भास्करप्रकाशप्रतापवत् ।

इदानीं चारित्रमाह—

45) असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ति य जाण चारित्तं ।

वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणया दु जिण भणियं ॥^१

जाण चारित्तं जानीहि चारित्रं किं तत् असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य
अशुभात्पापास्त्ररूपात् निवृत्तिः शुभपुण्यास्त्रद्वाररूपेण प्रवृत्तिश्च । एतत् वदसमिदि-
गुत्तिरूवं, व्रतसमितिगुप्तिरूपं, कस्मात् ववहारणया दु व्यवहारनयापेक्षया तु, किं विशिष्ट-
जिणभणिदं—व्रीतरागप्रतिपादितम्, भावचारित्रं पुनरहं ब्रवीमि परिणामः ।

इदानीं सम्यक् चारित्रमाह—

46) बहिरब्भंतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठं ।

णाणिस्स जं जिणुत्तं तं सम्मं परमचारित्तं ॥^२

तं सम्मं परमचारित्तं तत्सम्यक्परमचारित्रं भवति, किं विशिष्टं, जिणुत्तं
जिनैः प्रतिपादितं चारित्रं, कस्स णाणिस्स ज्ञानिनो यथाख्यातमित्यर्थः । तत् किं जं
बहिरब्भंतरकिरियारोहो यद्बाह्याभ्यन्तरक्रियारोधः । तत्र बाह्यो व्रतचरणादयः,
आभ्यन्तरे व्रती शीलवानित्यादयः किमर्थं क्रियारोधः, भवकारणप्पणासट्ठं संसारो-
त्पत्तिविनाशार्थम् गाथा—

“णिज्जियसासो णिप्फंदलोयणो मुक्कसयलवावारो ।

जोण्हा वच्छगओ सो जोई णत्थि त्ति संदेहो ॥” इत्यर्थः ।

इदानीं द्विविधमपि चारित्रं मोक्षकारणं भवतीत्याह—

47) दुविहं पि मोक्खहेउं ज्ञाणे झाऊण जं मुणी णियमा ।

तम्हा पयत्तचित्ता जूयं ज्ञाणं समब्भसह ॥^३

तम्हा पयत्तचित्ता जूयं ज्ञाणं समब्भसह तस्मात्कारणात्प्रयत्नचेतसः संतो यूयं
समभ्यसत, तस्मात् कस्मात् यस्मात् पाउणदि प्राप्नोति कोऽसौ, मुणी मुनिः कथं,

१. वदसमिदि ।

२. परमं सम्मचारित्तं ।

३. मुक्खहेउं, ज्ञाणे पाउणदि ।

णियमा निश्चयेन क प्राप्नोति ज्ञाने ध्याने स्थित इत्यर्थः । किं प्राप्नोति, दुविहं पि द्विविधमपि चारित्रं कथंभूतं मोक्षहेतुं मोक्षकारणमिति ।

इदानीं आचार्यः शिष्यान् प्रति शिक्षामाह—

48) मा मुञ्जह मा रज्जह मा रूसह इट्टणिट्ठ अत्थेसु ।

थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्तज्ञानप्पसिद्धीए ॥'

अहो शिष्याः, थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्तज्ञानप्पसिद्धीए स्थिरमिच्छत यदि चित्तं किमर्थं विचित्रध्यानप्रसिध्यर्थं, तदा मा मुञ्जह मा मोहं गच्छत, मा रज्जह मा रागं कुस्त, मा रूसह मा रोषं कुस्त, केषु विषयेषु, इट्टणिट्ठमत्थेसु इष्टा-निष्टार्थेषु ।

साम्प्रतं जपध्यानयोः क्रममाह—

49) पणतीससोलच्छप्पण चट्ठु दुग्मेगं च जबह ज्ञाएह ।

परमेट्ठिवाचयाणं अण्णं च गुरुवएसेण ॥

भो शिष्याः, जबह ज्ञाएह जपत ध्यायत च यूयं कानि अक्षराणि केषां सम्बन्धीनि, परमेट्ठिवाचयाणं परमेष्टिवाचकानां, केन प्रकारेण इत्याह—पणतीससोल-च्छप्पण चट्ठुदुग्मेगं च पंचत्रिंशत्—“णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरि-याणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं ।” षोडश “अरिहंतसिद्ध आयरिय-उवज्झायसाहू” । षट् “अरिहंतसिद्ध” । पंच “असिआउसा” । चत्वारः—“अरिहंत” । द्वय—“सिद्धा” । एकं—हं । अण्णं च गुरुवएसेण अन्यं च गुरु उपदेशेन । सिद्धचक्रे उदिताम् ।

इदानीं कः, कथंभूतो ध्येय इत्याह—

50) णट्टुचट्ठुघाइकम्मो दंसणसुहणाणवीरियमईओ ।

सुहदेहत्यो अप्पा सुद्धो अरिहो विचित्तज्जो ॥

विचित्तज्जो विशेषेण चित्तनीयो भवति, भवतां भो शिष्याः कोऽसौ, अप्पा स्वात्मा कथंभूतोः, अरिहो अर्हत्स्वरूपः पुनः कथंभूतोः, सुद्धो शुद्धात्मस्वरूपो द्रव्य-भावकर्मरहितः । पुनः किं विशिष्टः, सुहदेहत्यो सप्तधातुरहितः पुनः किं विशिष्टः, णट्टुचट्ठुघाइकम्मो नष्टचतुर्धातिकर्माः, पुनः किं विशिष्टः, दंसणसुहणाणवीरियमईओ, अनंतदर्शनसुखज्ञानवीर्यमयः, समवशरणविभूतियुक्तो ह्यात्मा ध्येय इत्यर्थः ।

संकाय पत्रिका-२

इदानीं सिद्धो ध्येय इत्याह—

51) णट्टट्टकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दट्टा ।

पुरिसायारो अप्पा सिद्धो ज्ञाएह लोयसिहरत्थो ॥

ज्ञाएह ध्यायत यूयं कोऽसौ, अप्पा आत्मा, किं विशिष्टः सिद्धो अशरीरः, पुनः किं विशिष्टः लोयग्गसिहरत्थो लोकाग्रशिखरस्थितः, पुनः किं विशिष्टः, णट्टट्टकम्म-देहो नष्टाष्टकर्मस्वरूपः इत्थंभूतः, पुनः कथंभूतः, लोयालोयस्स जाणओ दट्टा लोकान्त-र्वीतिसमस्तवस्तुज्ञायको दृष्टा च युगपद् कीदृगाकारो ध्येयः, पुरिसायारो णियतसिद्ध-पुरुषप्रतिमानराकृतिरूपः ।

इदानीमाचार्यो ध्येय इत्याह—

52) दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे ।

अप्पं परं च जुंजइ सो आयरिओ मुणी ज्ञेओ ॥

अप्पा इति अध्याहार्यः ज्ञेओ ध्यातव्याः, कोऽसौ अप्पा स्वात्मा कथंभूतः किमिति-भणित्वा, सो आइरिओ मुणी स आचार्यो मुनिरहं एकः, जो, अप्पं परं च जुंजइ य आत्मा परं च संबंधं करोति । वत्र, वीरियचारित्तवरतवायारे वीर्याचारचरित्राचारवर-तपश्चरणाचारो, किं विशिष्टः दंसणणाणपहाणे दर्शनज्ञानप्रधाने, यत्र तस्मिन् दर्शनज्ञान-प्रधाने दर्शनपूर्वकेषु सिद्धिरिति भावः ।

इदानीमुपाध्यायो ध्येय इत्याह—

53) जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो ।

सो उवज्झाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ॥

ज्ञेओ इत्यध्याहार्यं सो उवज्झाओ अप्पा स उपाध्यायः स्वात्मा ध्येयः, किं विशिष्टः, जदिवरवसहो यतिवरवृषभः प्रधानः, णमो तस्स नमस्कारोऽस्तु तस्मै सः कः, जो रयणत्तयजुत्तो यो रत्नत्रययुक्तः, पुनः किं विशिष्टः, णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो नित्यं धर्मोपदेशने निरतः ।

साधुर्ध्येय इत्याह—

54) दंसणणाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं ।

साधयदि णिच्च सुद्धं साहू स मुणी णमो तस्स ॥

ज्ञेओ अप्पा इत्यध्याहार्यं, ज्ञेओ ध्यातव्यः, कोऽसौ स्वात्मा किं स्वरूपो भणित्वा, साहू स मुणी साधुः सः मुनिः णमो तस्स नमस्कारोऽस्तु तस्मैः सः कः, जो हु

संकाय पत्रिका-२

साधयदि यः स्फुटं साधयति, किं चारित्तं चारित्रं, कथंभूतं यथाख्यातं, कदा णिच्चं सर्वकालं, पुनः कथंभूतं, दंसणणाणसमगं दर्शनज्ञानसंयुक्तं, पुनरपि कथंभूतं, मगं मार्गं कस्य मोक्खस्स मोक्षस्य ।

शुद्धनिश्चयनयमासृत्य कीदृशं ध्यानं इत्याह—

55) जं किंचि वि चिंतंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साह ।

लद्धूणय एयत्तं तदाहु तं तस्स णिच्छया ज्ञाणं ॥^१

तदाहु तं तस्स णिच्छया ज्ञाणं तस्मिन् प्रस्तावे हि स्फुटं, तत्प्रसिद्धिमसहायं, तस्स तस्य साधोः, णिच्छया ज्ञाणं, शुद्धनिश्चयनयेन ध्यानं तदा, जदा साह हवे, यदा साधुर्भवन्, कथंभूतः, णिरीहवित्ती बाह्याभ्यन्तरप्रसररहितः । “णिज्जियमासो णिप्फंदलोयणोमुक्कसयलवावारो” इत्यर्थः । किं कुर्वन्, जं किंचि वि चिंतंतो यत्किंचि-द्रव्यरूपं वा वस्तुचितयन् ध्यायन्, किं कृत्वा, लद्धूणय एयत्तं, लब्ध्वा च किमेकत्वं अयोगित्वम् ।

इदानीं ग्रन्थकारो ध्यानस्वरूपमुक्त्वा शिक्षाद्वारेण ध्यानमाह—

56) मा चिट्ठह मा जंपह मा चित्तह किंचि जेण होइ थिरो ।

अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवइ ज्ञाणं ॥^२

मा चिट्ठह मा जंपह मा चित्तह किंचि, अन्यत्किंचिन्मा चेष्टत यूयं, मा जल्पयत मा चित्तयत, तर्हि किं कुर्मः, तत्किं चेष्टत, तत्किं जल्पत, तत्किं चिन्तयत, जेण होइ थिरो, अप्पा अप्पम्मि रओ येन चेष्टितजल्पितचित्तनेन कृत्वा भवति स्थिरो ह्यात्मा आत्म-निरतः, उक्तं च—

‘तत् ब्रूयात्परान्पृच्छेत्तदिच्छेत्तत्परोभवेत् ।

येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं ब्रजेश ।’ इति । इणमेव परं हवइ ज्ञाणं यस्मा-देतदेव चेष्टितादिकमेव ध्यानं भवति ।

महात्मनामिदं, रत्नत्रयात्मका भवतां भव्या इत्याह—

57) तवसुदवदवं चेदा ज्ञाणरहधुरंधरो हवे जम्हा ।

तम्हा तत्तिदयरदा तल्लद्धीए सदा होह ॥^३

१. णच्चयं, ज्ञाणं ।

२. हवे, किंचि—द्र० सं० वृ० ।

३. तत्तियणिरदा ।

तम्हा तत्तिदयरदा, तस्मात् तत्त्रितयरता दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूपरताः, किमर्थं, तल्लद्धंए तस्य रत्नत्रयस्य लब्धिस्तस्यैव अथवा तस्य परमपदस्य लब्धिः । सदा होह सर्वकालं भवत यूयं कस्मात्, जम्हा यस्मात्, चेदा क्षाणरहधुरंधरो हवे, आत्माध्यानरथधुरंधरो भवेत्, कथंभूतः सन् तवमुदवदवं, तपः श्रुतव्रतवान् ।

ग्रंथकार औद्धत्यपरिहारं कुर्वन्नाह—

58) दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा दोससंचयचुदा मुदपुण्णा ।

सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचंदमुणिणा भणियं जं ॥

सोधयंतु शुद्धं कुर्वन्तु, के ते मुणिणाहा मुनिनाथाः, किं तत् दव्वसंगहमिणं द्रव्यसंग्रहमिमं, किं विशिष्टः, दोससंचयचुदा रागद्वेषादिदोषसंघातच्युता वचन गोचरा ।

अन्तिमप्रशस्ति

इति द्रव्यसंग्रहटीकावचूरि संपूर्णः । संवत् १७२१ वर्षे चैत्रमासे शुक्लपक्षे पंचमीदिवसे पुस्तिका लिखापितं सा० कल्याणदासेन ॥ इति ॥

— — —

उद्धृत पद्यानुक्रमणिका

- अंडेसु पवड्डंता गम्भत्या माणुसा य मुच्छगया ।
जारिसया तारिसया जीवा एगेंदिया णेया ॥
[गाथा 12]
- गइ इंदियेसु काये, जोगे वेदे कसायणाणे य ।
संजमदंसणलेस्सा भविया सम्मत्तसणि आहारे ॥
[गाथा 13]
- णिज्जियसासो णिप्फंदलोयणो मुक्क सयलवावारो ।
जोणहा वच्छगओ सो जोई णत्थित्ति संदेहो ॥
[गाथा 46, 55]
- तद्ब्रूयात्परान्पुच्छेत्तदिच्छेत्तपरो भवेत् ।
येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेश ॥
[गाथा 56]
- दाणे लाहे भोए उवभोए वीरिए य सम्मत्ते ।
दंसणणाणचरित्ते एदे णव जीव सव्भावा ॥
[गाथा 13]
- पंचवि इंदियपाणा मणवच्चिकायेण तिण्णि बलपाणा ।
आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण हुंति दह पाणा ॥
[गाथा 1]
- मूलसरीरमच्छंडिय उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स ।
णिग्गमणं देहादो हवदि समुग्घाद यं णाम ॥
वेयणकसायविउव्वण तह मारणंतिओ समुग्घाओ ।
तेजाहारो छट्टो सत्तमओ केवलीणं तु ॥
[गाथा 10]
- सम्मत्तणाणदंसण-वीरिय-सुहमं तहेव अवगहणं ।
अगुहलहुमव्वावाहं अट्ट गुणा हुंति सिद्धाणं ॥
[गाथा 14]
- सूक्ष्मद्रव्यादभिन्नाश्च व्यावृत्ताश्च परस्परम् ।
उत्पद्यन्ते विपद्यन्ते जलकल्लोलवज्जले ॥
[गाथा 14]
- णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं ।
णमो उवज्जायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं ॥
[गाथा 49]

परिशिष्ट-2

द्रव्यसंग्रह की अकारादि क्रम से गाथासूची

गाथा	गाथा संख्या
अज्जीवो पुण णओ	15
अट्टुचट्टुणाणदंसण	6
अणुगुरुदेहपमाणो	10
अवगासदाणजोग्गं	19
अमुहादो विणिवित्ती	45
आसवदि जेण कम्मं	29
आसव-बंधण-संवर	28
उवओगो दुवियप्पो	4
एयपदेसो वि अणू	26
एवं छब्भेयमिदं	22
गड्ढपरिणयाण धम्मो	17
चेदणपरिणामो सो	34
जह कालेण तवेण य	36
जावदियं आयासं	27
जीवमजीवं दव्वं	1
जीवादी सद्दहणं	41
जीवो उवओगमओ	2
जो रयणत्तयजुत्तो	53
जं किच्चिवि चित्तंतो	55
जं सामण्णं गहणं	43
ठाणजुदाण अवम्मो	18
णट्टु चट्टुवाइकम्मो	50
णट्टुट्टुकम्मदेहो	51
णाणावरणादीणं	31
णाणं अट्टुवियप्पं	5
णिक्कम्मो अट्टुगुणा	14
तवमुदवदवं चेदा	57

संकाय पत्रिका-२

तिक्काले चदुपाणा	3
दव्वपरिवट्टरूवो	21
दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा	58
दुविहं पि मोक्खहेउं	47
दंसणणाणपहाणे	52
दंसणणाणसमग्गं	54
दंसणपुव्वं णाणं	44
धम्माधम्मा कालो	20
पणतीससोलच्छप्पण	49
पयडिट्ठिदि अणुभाग	33
पुग्गलकम्मादीणं	8
पुढविजलतेउवाऊ	11
बज्झदि कम्मं जेण दु	32
बहिरब्भंतरकिरिया	46
मग्गणगुणठाणेहि य	13
मा चिट्ठह मा जंपह	56
मा मुज्जह मा रज्जह	48
मिच्छत्ताविरदिपमाद	30
रयणत्तयं ण वट्टइ	40
लोयायासपदेसे	22
वण्णरस पंच गंधा	7
वदसमिदीगुत्तीओ	35
ववहारा सुहदुक्खं	9
सद्दो बंधो सुहमो	16
समणा अमणा णेया	12
सव्वस्स कम्मणो जो	37
सुहअसुहभावजुत्ता	38
सति जदो तेणेदे	24
संमहंसण णाणं	39
संसयविमोहविब्भम	42
होति असंखा जीवे	25

द्रव्यसंग्रह शब्द कोश

[अ]

अचक्खू—अचक्षु	4	अमुत्ति—अमूर्त	2, 7, 15
अच्छता—अगतिशील, (नहीं चलते हुए)	17	अरिहो—अरिहन्त	50
अज्जीवो अजीव	15	अलोगुत्तो—अलोक कहा है	20
अत्थिकाया—अस्तिकाय	23, 24	अल्लोगागासं—अलोकाकाश	7
अत्थि—है	24	अवगासदाणजोग्गं—स्थान देने में	
अथ—इसके बाद	30	समर्थ	19
अथ—अथ (और) इसके बाद	4	अविभागीपुग्गलणुवट्टद्धं—अविभागी	
अधम्मो—अधर्म	15, 18	पुद्गल परमाणु स्थित रहे	27
अट्टु—आठ	6, 7	अविसेसिदूण—अविशेष करके	43
अट्टुगुणा—आठ गुणों वाले	14	असंखदब्बाणि—असंख्य द्रव्य	22
अट्टुवियप्पं—आठ प्रकार का	5	असंखदेसो—असंख्य प्रदेश	10
अट्टे—अर्थों को	43	असंखा—असंख्य	25
अणंत—अनन्त	25	असमुहदो—समुद्घात के विना	10
अण्णं—अन्य	49	असुद्धणया—अशुद्धनय से	13
अण्णदवियम्हि—अन्य द्रव्य में	40	असुहादो—अशुभ से	45
अण्णो—अन्य, दूसरा	34	[आ]	
अण्णोण्णपवेसणं—एक-दूसरे में प्रवेश	32	आइरिओ—आचार्य	52
अणाण-णाणाणि—अज्ञान और ज्ञान	5	आउ—आयु	3
अणुगुरुदेहपमाणो—छोटे-बड़े शरीर के		आदस्स—आत्मा का	9
बराबर	10	आदा—आत्मा	8, 9, 40
अणू—अणु	26	आणपाणो—स्वासोच्छ्वास	3
अण्यभेओ—अनेक भेदवाला	31	आयासं—आकाश	15, 19, 27
अप्पं—स्वयं	52	आयासे—आकाश में	20, 25
अप्पपरस्सुवस्स—अपने और पर के		आसवदि—आता है	29
स्वरूप का	42	आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खा—	
अप्पणो—(आत्मा का), अपना	37	आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा और मोक्ष	28
अप्पम्मि—आत्मा में (स्वयं में)	56	[इ]	
अप्पा—आत्मा	39, 50, 51, 53, 56	इदिय—इन्द्रिय	3
अप्पाणं—आत्मा को (अपने को)	40	इच्छइ—चाहता है	48
अमणा—मन रहित	12	इदरा—इतर (अपर्याप्त)	12
		इदरो—दूसरा, अन्य	32

संकाय पत्रिका—२

इणमेव—यही, यह ही
इट्टणिट्ठअत्थेसु—इष्ट और अनिष्ट
अर्थों में

इव—तरह

[उ]

उज्जोदादवसहिया—उद्योत और
आतप सहित

उप्पादवयेहि—उत्पाद और व्यय से

उवयोगमओ—उपयोगमय

उवओगा—उपयोग

उवओगो—उपयोग

उवझाओ—उपाध्याय

उत्तं—कहा

उवयारा—उपचार से

उवसंहारप्पसप्पदो—संकोच और
विस्तार से

[ए]

एक्केवका—एक-एक

एक्केक्के—एक-एक पर

एगं—एक

एयत्तं—एकत्व

एयपदेशो—एक प्रदेश

एवं—इस प्रकार

[ओ]

ओही—अवधि

[क]

कत्ता—कर्ता

कट्टुमायारं—आकार करके

कमसो—क्रम से

कम्मं—कर्म

कम्मपुधभावो—कर्मों का अलग होना

कम्मणो—कर्मों का

कम्मपुग्गलं—कर्मपुद्गल

संकाय पत्रिका—२

56	कम्मस्सासवणिरोहणे—कर्मस्त्रव के रोकने में	34
48	कम्मादपदेशाणं—कर्म और आत्मा के प्रदेशों का	32
24	कम्मासवणं—कर्मस्त्रव	29
	कसायदो—कषाय से	33
16	काओ—काय	25, 26
14	काया—काय (शरीर)	24
2	कारणं—कारण	32, 40
44	कालविजुत्तं—काल को छोड़कर	23
4	कालस्सेगो—काल का एक	25
53	कालाणू—कालाणु	22
23	कालो—काल	15, 20, 21
26	किचि—कुछ	55, 56
	किचूणा—कुछ कम, (किचित् ऊन)	14
10	केवलं—केवल	
	केवलमवि—केवल भी	5
22	केवलिणाहे—केवली नाथ में	44
22	[ख]	
49	खयहेडू—क्षय का कारण	37
55	खलु—निश्चय से	38
26	खु—निश्चय से	2, 27, 41
23	[ग]	
	गंधा—गंध	7
4	गइपरिणयाण—चलते हुए, (गति रूप परिणमित)	17
2, 8	गच्छंता—गतिशील, (जाते हुए)	18
43	गमणसह्यारी—चलने में सहायक	17
30	गहणं—ग्रहण	42, 43
29, 32	गुरूवएसेण—गुरु के उपदेश से	49
37	गोदं—गोत्र	38
37	[च]	
36	च—और	4, 5, 38, 49, 52

चउपाणा—चार प्राण	3	जम्हि -- जिसमें	41
चउदसहि—चौदह	13	जवह—जपो	49
चवखु—चक्षु	4	जस्स—जिसके	3
चदु—चार	6, 30, 49	जह—जैसे	17, 18
चदुधा—चार प्रकार का	4	जहकालेण—जिस समय से	36
चदुविधो—चार प्रकार का	33	जाण—जानो	45
चरणं—चारित्र	39	जाणओ—जानने वाले (ज्ञायक)	51
चरमदेहदो—अन्तिम शरीर से	14	जाणे—जानो	27, 39
चारित्तं—चारित्र	35, 45, 54	जावदियं—जितने	27
चित्तह—चिन्तन करो	56	जावदिये—जितने में	20
चित्तंतो—विचार करता हुआ	55	जिणकहियं—जिनकथित	45
चित्तं—चित्त को (हृदय को)	48	जिणक्खादो—जिन द्वारा कथित	31
चिट्ठह—चेष्टा करो	56	जिणवरवसहेण—जिन श्रेष्ठ वृषभ द्वारा	1
चेदणकम्माण—चेतन कर्मों का	8	जिणवरा—जिन श्रेष्ठ	24
चेदणपरिणामो—चेतन का परिणाम	34	जिणुत्तं—जिन कथित	46
चेदणभावं—चेतनभाव को	9	जिणुत्तो—जिन के द्वारा कहा गया	29
चेदणभावेण—चेतनभाव से	32	जीवमजीवं—जीव और अजीव	1
चेदणा—चेतना	3	जीवलक्खणं—जीव-स्वरूप	6
चेदा—आत्मा	10, 57	जीवा—जीव	38
चेदि—और इस प्रकार	36	जीवाजीवविसेसा—जीव और अजीव	
[छ]		के विशेष	28
छदमत्थाणं—छद्मस्थों के	44	जीवाजीवप्पभेददो—जीव और	
छप्पण—छह, पाँच	49	अजीव के भेद से	23
छब्भेयं -- छह प्रकार का	23	जीवादिसद्दहणं—जीवादि का श्रद्धान	41
छाया—छाया	18	जीवादीणं—जीवादि को	19
[ज]		जीवे—जीव में	7, 25
जं—जो	31, 43, 46, 47, 55, 58	जीवो—जीव	2, 3
जंपह—जल्पन करो,	56	जुंजइ—लगाता है	52
जइ—यदि	48	जुगवं—एक साथ	44
जदा—जब	55	जूयं—तुमलोग (तुम सब)	47
जदिवरवसहो—सब मुनियों में श्रेष्ठ	53	जे—ये, जो	22, 28
जदो—जिस कारण से	24	जेण—जिसके द्वारा	1, 29, 32, 36, 56
जम्हा—जिससे	24, 44, 57	जेण्हं—जैनमत में	19

जो—जो	21, 34, 37, 53, 54	गिञ्चा—नित्य	14
जोगं—योग	31	गिञ्छयं—निश्चय	55
जोगा—योग से	33	गिञ्छयदो—निश्चय से	8
[क्ष]		गिञ्छयणयदो—निश्चय नय से	3, 9, 10
क्षाएह—ध्याओ	49, 51	गिञ्जरा—निर्जरा	36
क्षाणं—ध्यान	47, 55, 56	गिम्मणा—मन रहित	12
क्षाणप्पसिद्धोए—ध्यान की सिद्धि		गिहिट्टं—निदिष्ट किया	1
के लिए	48	गियमा—नियम से	47
क्षाणरहधुरंधरो—ध्यान रूपी रथ का		गिरदो—लगे रहते हैं	53
धुरन्धर	57	गिरीहवित्ती—इच्छाओं से रहित	55
क्षाणे—ध्यान में,	47	गेई—ले जाता है	17
क्षेओ—ध्यान करो	52	गेओ—जानना चाहिए	15, 37
[ण]		गेमिचंदमुणिणा—नेमिचन्द्र मुनि के द्वारा	58
ण—नहीं	25, 40, 44	गेयं—जानना चाहिए	4
णट्टुकम्मदेहो—आठ कर्मरूपी शरीर		गेया—जानना चाहिए	12, 36
को नष्ट कर दिया	51	गेयो—जानो	31
णट्टुचडुघाडकम्मो—चार घाति कर्मों		गेव—नहीं	17, 18, 43
को नष्ट करने वाला	50	णो—नहीं	7
णमो—नमस्कार	53, 54	[त]	
णाणं—ज्ञान	4, 5, 6, 41, 42, 44	तं—उसको	1, 27, 41, 46, 55
णाण-दंसण—ज्ञान और दर्शन	6	तत्तियणिरदा—उन तीनों में लीन	57
णाणाखंधप्पदेसदो—नाना स्कन्ध		तत्तियमइओ—उन तीनों सहित	39, 40
प्रदेश वाला	26	तत्तो—उसके बाद	20
णाणावरणादीणं—ज्ञानावरण आदि का	31	तणुसुत्तधरेण—अल्पश्रुत के धारक	58
णाणिस्स—ज्ञानी के	46	तदा—तब	55
णामं—नाम	38	तदो—इसलिए	7
णादव्वा—जानना चाहिए	23	तम्हा—उससे	24, 40, 47, 57
णायव्वा—जानना चाहिए	35	तल्लद्धोए—उसे पाने के लिए	57
णिओ—अपना	39	तवसुदवदवं—तप, श्रुत और व्रत वाले	57
णिवकम्मा—कर्म रहित	14	तवेण—तप के द्वारा	36
णिच्चं—नित्य	53	तस्स—उसके	53, 54, 55
णिच्चयदो—निश्चय से	39	तस्सडणं—उनका क्षरणा	36
णिच्चया—निश्चय से	7	तसजीवा—व्रस जीव	11
संकाय पत्रिका—२			

तह—तथा	13	दुवियप्पो—दो प्रकार का	4
तिक्काले—तीनों कालों में	3	दुविहं	19, 47
तिय—तीन	30	दुविहा—दो प्रकार की	36
तिविह—तीन प्रकार के	25	दुस्सह—द्वेष करो	48
तु—और	41, 42, 44	देविदविदवदं—देवेन्द्र समूह से वन्दनीय	1
तेण—उससे	25, 26	दो—दो	7, 44
तेणेदे—उससे यह, ये	24	दोस-संचयचुदा—दोष समूह से रहित	58
ते—वे	22, 28, 44	[घ]	
तोयं—जल	17	धम्माधम्मा—धर्म-अधर्म	20
[थ]		धम्माधम्मे—धर्म और अधर्म में	25
थिरं—स्थिर	48	धम्माणुपेहापरीसहजओ—धर्म-अनुप्रेक्षा	
थिरो—स्थिर	56	और परीषह जय	35
थूलो—स्थूल	16	धम्मो—धर्म	15, 17
[द]		धम्मोवदेसणे—धर्मोपदेश में	53
दंसणं—दर्शन	4, 6, 43	धरई	18
दंसणणाणपहाणे—दर्शन और ज्ञान		[ठ]	
में प्रधान	52	ठाणजुदाण—स्थान युक्तों को	18
दंसण-णाण-समग्गं—पूर्ण दर्शन-ज्ञानी	54	ठाणसह्यारी—स्थिति देने में सहकारी	18
दंसणपुब्बं—दर्शनपूर्वक	44	ठिदिअणुमागा—स्थिति और अनुभाग	33
दंसणसुहणाणवीरियमइओ — दर्शन		ठिया—स्थित हैं	22
सुख, ज्ञान और वीर्य युक्त	50	[प]	
दट्टा—(दृष्टा) देखने वाले	51	पंच—पाँच	7, 23
दव्वं—द्रव्य	1, 23	पंचेदिय—पाँच इन्द्रियों वाले	12
दव्वपरिवट्टरूवो—द्रव्य परिवर्तन रूप	21	पच्चक्ख-परोक्ख—प्रत्यक्ष और परोक्ष	5
दव्वविमोक्खो—द्रव्यमोक्ष	37	पज्जत्त—पर्याप्तक	12
दव्वसंगहमिणं—यह द्रव्य संग्रह	58	पज्जाया—पर्यायों	16
दव्वासवरोहणे—द्रव्यास्रव रोकने में	34	पण—पाँच	30
दव्वासवो—द्रव्यास्रव	31	पणतीस—पैंतीस	49
दु—भी, और	3, 8, 15, 23, 30, 32, 33, 34	पणदस—पन्द्रह	30
दुगं—दो,	49	पदेसा - प्रदेश	25
दुष्णिण—दो	44	पभणामो—कहते हैं	28
दुरभिणिवेसविमुक्कं—दुरभिनिवेश रहित	41	पभुंजेदि—भोगता है	9
		पयत्तचित्ता—प्रयत्न चित्त होकर	47

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा—प्रकृति-

स्थिति-अनुभाग-प्रदेश के भेद से 33

पयडिपदेशा—प्रकृति-प्रदेश 33

परं—दूसरों को, उत्कृष्ट 52, 56

परदो—चारों ओर 20

परमं—परम, (उत्कृष्ट) 46

परमट्ठो—निश्चय 21

परमेट्ठिवाचयाणं—परमेष्ठियों के वाचक 49

पराणि—अन्य, दूसरे 38

परिणामादीलक्खो—परिणामादि लक्ष्य 21

परिणामेणप्पणो—आत्मा के परिणामों से 29

परिणामो—परिणाम 37

परे—शेष 12

परो—अन्य, द्वितीय 29

पवित्ती—प्रवृत्ति (लगना) 45

पहियाणं—पथिकों को 18

पाउणदि—पाता है 47

पावं—पाप 38

पि—भी 47

पुग्गलं—पुद्गल को 31

पुग्गल—पुद्गल 15

पुग्गलकम्मप्फलं पुद्गल कर्मों के फल 9

पुग्गलकम्मादीणं—पुद्गल कर्म आदि का 8

पुग्गलजीवा—पुद्गल-जीव 20

पुग्गलजीवाणं—पुद्गल और जीवों को 17, 18

पुग्गलदम्बस्स—पुद्गल द्रव्य की 16

पुहविजलतेउवाउवणफदी—पृथ्वी-जल-तेज-वायु और वनस्पति 11

पुण्णं—पुण्य 38

पुण—फिर से 6, 15

पुरिसायारो—पुरुषाकार 51

पुव्वस्स—पूर्व के 30

फासा—स्पर्श 7

संकाय पत्रिका—२

[ब]

बज्झदि—बाँधता है 32

बंधादो—बंध से 7

बंधो—बन्ध 16, 33

बलं—बल 3

बहिरब्भंतरकिरियारोधो—बाह्य और आभ्यन्तर क्रियाओं को रोकना 46

बहुदेसा—बहुत प्रदेश वाला 24

बहुदेसो—बहुप्रदेश वाला 26

बहुभेदा—अनेक भेद 35

[भ]

भणति—कहते हैं 24, 26

भण्णए—कहलाता है 43

भणियं—कहा गया 6, 58

भवकारणप्पणासट्ठं—संसार के कारण के नाश के लिए 46

भावबंधो—भावबन्ध 32

भावमोक्खो—भावमोक्ष 37

भावसंवरो—भावसंवर 34

भावाणं—भावों का 43

भावासवो—भावास्रव 29

भावेण—भाव से 36

भुत्तरसं—फल देकर (भुत्तरस होकर) 36

भावसंवरविसेसा—भावसंवर के विशेष 35

भेदा—भेद 30

भेयं—भेद 5

भोत्ता—(भोक्ता) भोगने वाला 2

[म]

मग्गं—मार्ग (पथ) 54

मग्गणगुणठाणेहि—मार्गणा और गुणस्थानों से 13

मच्छाणं—मछलियों को 17

मदि सुद-ओही—मति-श्रुत-अवधि 5

मणपज्जय—मनःपर्यय	5
मा—नहीं	48, 56
मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोधादओ—	
मिथ्यात्व-अविरति, प्रमाद, योग, क्रोधादि	30
मुज्झह—मोह करो	48
मुत्ति—मूर्त्तिक	7
मुत्ते—मूर्त्त में	25
मुत्तो—मूर्त्त	15
मुणिगाहा—मुनि श्रेष्ठ	58
मुणी—मुनि	47, 52, 54
मुयत्तु—छोड़कर	40
मोक्खस्स—मोक्ष का	39, 40, 54
मोक्खहेउं—मोक्ष का कारण	47

[य]

य—और	3, 12, 13, 20, 21, 24, 26, 35, 36, 37, 45, 55
------	--

[र]

रओ—लीन, रत	56
रज्जह—राग करो	48
रयणत्तयं—रत्नत्रय	40
रयणत्तयजुत्तो—रत्नत्रय से युक्त	53
रयणाणं—रत्नों की	22
रस—रस (स्वाद)	7
रासीमिव—राशि के समान	22

[ल]

रूवमप्पणो—आत्मरूप	41
रूवादिगुो—रूपादि गुण वाला	15
लद्धूण—पाकर	55
लोगागासं—लोकाकाश	19
लोगो—लोक	20
लोग्गठिदा—लोकान्न स्थित	14
लोग्गसिहरत्थो—लोक के शिखर पर स्थित	51

लोयालयस्स—लोकालोक के	51
लोयायासपदेसे—लोकाकाश के प्रदेश में	22

[व]

वंदे—वन्दना करता हूँ	1
वदसमिदीगुत्तीओ—व्रत-समिति-गुत्तियाँ	35
वदसमिदिगुत्तिरूवं—व्रत, समिति और गुत्ति रूप	45
वट्टइ—है	40
वट्टणलक्खो—वर्तना लक्षण वाला	21
वण्ण—वर्ण (रंग)	7
ववहारणया—व्यवहारनय से	45
ववहारा—व्यवहार से	3, 6, 7, 9, 10, 39
ववहारो—व्यवहार	21
वादरसुहमेइदिय—वादर और सूक्ष्म एकेन्द्रिय	12
वा—अथवा	10
वि—भी	26, 28, 55
विगतिगच्चदुपंचक्खवादो—तीन, चार, पाँच इन्द्रिय	11
विचित्त—विचित्र	48
विचित्तज्जो—ध्यान करना चाहिए	50
विणिवित्ती—निवृत्ति (अलग होना)	45
विण्णेओ—जानना चाहिए	29
विण्णया—जानना चाहिए	13 30
वियाण—जानो	19
विविहयावरेइदी—विविध स्थावर एकेन्द्रिय	11
विस्ससोइहगई—स्वभाव से ऊर्ध्वगति	2
वीरियचारित्तवरतवायारे—वीर्य, चरित्र और श्रेष्ठ तपाचार में	52

[स]

संखादि—शंख आदि	11
संजुत्ता—संयुक्त	14

संठाणभेदतमच्छाया—संस्थान- भेद-तम-छाया	16	साहू—साधु, मुनी	54, 55
संति—हैं	7, 20, 24	सिद्धा—सिद्ध	14
संशयविमोहविभ्रमविवर्जित्यं—संशय, विमोह और विभ्रम रहित,	42	सिद्धो—सिद्ध	2, 51
संसारत्थो—संसारी	2	सिरसा—शिर से	1
संसारी—संसार में रहने वाले	13	सुद-पुण्णा—श्रुतपूर्ण	58
स—वह	29, 31, 37, 54	सुद्धं—शुद्ध	6
सड्दि—झरते हैं	36	सुद्धणया—शुद्धनय से	6, 8, 13
सदा—हमेशा	57	सुद्धभावाणं—शुद्धभावों का	8
सदि—होने पर	41	सुद्धा—शुद्ध	13
सदेहपरिमाणो—स्वदेह परिमाण	2	सुद्धो—सुद्ध	50
सद्दो—शब्द	16	सुहअसुहभावजुत्ता—शुभ और अशुभ भावों से युक्त	38
सपुण्णपावा—पुण्य-पाप सहित	28	सुहदेहत्यो—शुभ शरीर में स्थित	50
सम्म—सम्यक्	41, 42	सुहदुक्खं—सुख और दुःख को	9
सम्मचारित्तं—सम्यक् चरित्र	46	सुहाउ—शुभ भायु	38
सम्मत्तं—सम्यक्त्व	41	सुहुमो—सूक्ष्म	16
सम्मदंसणणाणं—सम्यक्दर्शन-ज्ञान	39	सुहे—शुभ में	45
समणा—मन सहित	12	सेसा—शेष	15
समब्भसह—अभ्यास करो	47	सो—वह	2, 3, 17, 18, 20, 21, 25, 32, 34, 52, 53
समये—आगम में	43	सोधयंतु—शुद्ध करें	58
समासवदि—पूर्णरूप से आता है	31	सोल—सोलह	43
समासेण—संक्षेप में	28		
सव्वदा—सर्वदा	1	[ह]	
सव्वणहु—सर्वज्ञ	26	हवति—होते हैं	13, 34
सव्वस्स—सब, सभी	37	हवे—होवे, हो	55, 56, 57
सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं—सभी अणुओं को स्थान देने में समर्थ	27	हवेइ—है, होता है	21
सव्वे—सब	12, 13	हु—निश्चय से	13, 22, 37, 40, 54
सादं—साता	38	हेऊ—कारण	34
साधयदि—साधते हैं	54	होति—होते हैं	11, 25, 33
सामण्णं—सामान्य	6, 43	होइ—होता है	56
सायारमणेयभेयं—साकार और अनेक भेदों वाला	42	होदि—होता है	26, 29, 40, 41
		होह—होओ	57

संकाय पत्रिका-२ : श्रमणविद्या भाग दो

सम्पादक मंडल तथा लेखक-सम्पादक

प्रो० रामशङ्कर त्रिपाठी

अध्यक्ष, बौद्धदर्शन विभाग

प्रो० लक्ष्मीनारायण तिवारी

अध्यक्ष, पालि एवं थेरवाद विभाग

डॉ० फूलचन्द्र जैन

अध्यक्ष, जैनदर्शन विभाग

डॉ० गोकुलचन्द्र जैन

अध्यक्ष, प्राकृत एवं जैनागम विभाग

डॉ० पुरुषोत्तम पाठक

अध्यक्ष, भारतीयविद्या, संस्कृति एवं संस्कृत प्रमाणपत्रीय विभाग

डॉ० ब्रह्मदेव नारायण शर्मा

प्राध्यापक, पालि एवं थेरवाद विभाग

भदन्त डी० सोमरतन थेरो

पूर्व प्राध्यापक, पालि एवं थेरवाद विभाग

डॉ० कमलेश जैन

श्री कुन्दकुन्द भारती

नई दिल्ली

डॉ० श्रीमती सुनीता जैन

जैन बाला विश्राम

आरा

श्री ऋषभचन्द्र जैन

देवकुमार जैन प्राच्य शोध संस्थान

आरा

PARISAMVĀDA : A NEW PUBLICATION SERIES

Parisamvāda forms a series of Research Journals published with the particular aim for bringing to light the important research papers presented and deliberations made in Seminars, Symposia, Conferences etc. organised at the University and attended by eminent scholars and experts of different branches of ancient learning for exploring and analysing the main theme in relevance to recent researches in Humanities and Social Sciences.

Vol. 1 बौद्ध एवं अन्य भारतीय योग-साधना

Bauddha evaṃ anya Bhāratiya Yoga-Sādhanā

The volume consists of research papers read at a U. G. C. Seminar. They deal with the *Yoga* traditions of India in general and Buddhist *Yoga* in particular. Beginning from the *Sādhanā* of Gautama the Buddha, the papers cover a wide area of *Mahāyāna*, *Vajrayāna* and other schools of Buddhist *Yoga* developed in India and abroad, and also various *Yoga* systems of Indian traditions including Psychology and Physical Sciences. Edited by Ramshankar Tripathi, First edition 1981, Royal size pp. 376.

Price Rs. 32.00

Vol. 2-3 भारतीय चिन्तन की परम्परा में नवीन सम्भावनाएँ

Bhāratiya Cintana ki Paramparā meṃ Navīna Saṃbhāvanāen

Parisamvāda 2 and 3 entitled as above are divided into two volumes Vol. 2 consists of research papers presented at a U. G. C. Seminar on 'Individual, Society and their relations' and also papers of a local Seminar on 'Social equality in Indian Thought.'

Vol. 3 consists of papers presented at and deliberations of three local Seminars viz. 1) Philosophy of Gandhi, 2) New divisions of Indian Philosophies, and 3) Possibilities of new Philosophies in Indian Thoughts. Edited by Radheshyamdhar Divedi.

Vol. 2, First edition 1981, pp. 360.

Price Rs. 23.00

Vol. 3, First edition 1983, pp. 339.

Price Rs. 46.00

Vol. 4 जैनविद्या एवं प्राकृत

Jainavidyā evaṃ Prakrita

This volume of the *Prisamvāda* consists of thirty seven research papers presented at a U. G. C. Seminar organised by the Department of Prakrit and Jaināgama, Faculty of Śramaṇavidyā. The papers, both in Hindi and English have been classified into four sections viz. 1. Jaina Śramaṇa tradition : History, Art and Culture, 2. Jaina thoughts and Social Sciences, 3. Jaina Religion, Philosophy and Sciences, 4. Prakrits, Indian languages and literature, Edited by Dr. Gokul Chandra Jain.

First edition 1987, pp. 336 + 16.

Price Rs. 50.00

Available at

SALES DEPARTMENT

SAMPURNANAND SANSKRIT VISHVAVIDYALAYA

VARANASI 221002